महर्षि दयानन्द : जीवन और दर्शन

महर्षि दयानन्द : जीवन और दर्शन

(महर्षि दयानन्द का जीवन-वृत्त और उनके प्रचारित सिद्धान्तों और विचारों का परिचय)

वैद्य नारायणदत्त सिद्धान्तालंकार

नवभारती सहकार प्रकाशन प्रतिष्ठान (सी.)
एट।४२ राणाप्रताप बाग, दिल्ली-७
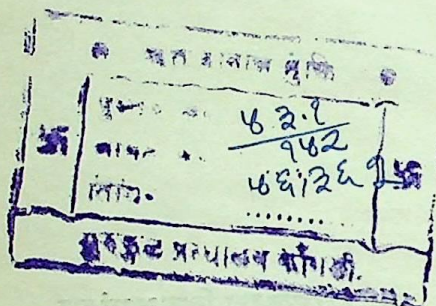
प्रथम संस्करण : अक्तूबर १९६७

मूल्य : लोक संस्करण चार रुपये

सजिल्द पांच रुपये

मुद्रक : डिलाइट प्रेस, चूड़ीवालान, दिल्ली ।
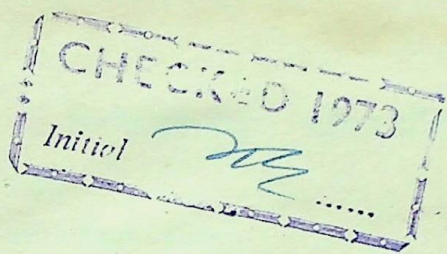
सहधर्मिणी विद्यादेवी

—जिनकी महर्षि दयानन्द के प्रति परम श्रद्धा रही है—

को

सस्नेह समर्पित

—नारायणदत्त

महर्षि दयानन्द : जीवन और दर्शन

जीवन खंड

१. **जन्म : शिक्षा : दीक्षा**

बाल्यकाल—प्रेरणा प्रसंग : शिवरात्रिपूजन, बहिन और चाचा की मृत्यु—गृहत्याग—संन्यास— गुरु खोज की यात्रा-गुरु-प्राप्ति : स्वामी विरजानन्द— गुरुदक्षिणा.

२. **कर्मक्षेत्र**

खंडन-मंडन—पाखंडखंडिनीपताका—मूर्त्तिपूजा का विरोध—एकेश्वरवाद की स्थापना—शास्त्रार्थ—आक्रमण और क्षमा—गप्पाष्टक (मिथ्यावाद) और सत्याष्टक—काशी का सुप्रसिद्ध शास्त्रार्थ— हत्या का प्रयत्न : 'कैद कराने नहीं कैद से छुड़ाने आया हूँ'—वंग-दर्शन : ब्रह्म समाज से परिचय और केशवचन्द्र सेन द्वारा हिन्दी में बोलने की प्रेरणा.

३. **मूर्त्तकार्य**

'सत्यार्थप्रकाश' रचना—विषमिश्रित मिष्ठान्न—वल्लभ संप्रदाय: आलोचना और हत्या का षडयंत्र—बंबई में प्रारंभिक आर्यसमाज की स्थापना : प्रारंभिक २८ नियम—दिल्ली दरबार : सार्वभौम धर्म की स्थापना का आवाहन वेद को ईश्वरीय ज्ञान स्वीकार करने पर असहमति—ब्रह्म विचार मेला—पंजाब की ओर : डा. रहीमखां की कोठी में आर्यसमाज की स्थापना, संशोधित दस नियम—उत्तर

प्रदेश विहार : थियोसाफिकल सोसायटी, नास्तिक मुंशी-राम, गोकृष्यादि रक्षिणी सभा.

४. **वीरभूमि राजस्थान में निर्वाण**

राजस्थान प्रचार यात्रा—अजमेर में पं० लेखराम—मेवाड़ के महाराणा सज्जनसिंह : एकलिंग मंदिर की महन्ती—वेदभाष्य—परोपकारिणी सभा की स्थापना—जोधपुर का निमंत्रण और वहां न जाने का पुनः पुनः अनुरोध— जोधपुर में राजधर्म पर प्रकाश : स्वदेश प्रेम, प्रजापालन, न्याय व्यवस्था के लिए परामर्श—आचरण शुद्धता पर बल और वेश्यावृत्ति का विरोध, मृत्यु को निमंत्रण—विष प्रयोग, संन्यासी का धर्म क्षमा, विपरीत चिकित्सा—ईश्वर ! तेरी इच्छा पूर्ण हो.

विचार और दर्शन खंड

१. **सत्य**

सत्य भावना—सत्यासत्य परीक्षा—ईश्वरीय ज्ञान वेद.

२. **तीन अनादि**

ईश्वर—जीव : आत्मा—प्रकृति : सृष्टि का मूल कारण.

३, **जगत् और मुक्ति**

सृष्टि—प्रलय—मुक्ति—पुनर्जन्म

४. **समाज व्यवस्था**

वर्ण व्यवस्था—आश्रम व्यवस्था—राज्य व्यवस्था—आचार व्यवस्था.

पूर्व शब्द

महर्षि दयानन्द के जीवन तथा विचारों पर आर्य विद्वानों ने बहुत कुछ लिखा और प्रकाशित किया हैं। जीवन का विचारों के साथ अटूट सम्बन्ध रहता है। महापुरुषों की जीवनचर्या ही उनका विचार-दर्शन होता है। सत्यपरायण निर्भीक पुरुषों की जीवनचर्या और विचारों में भेद नहीं रहता। उनके उपदेश तो उनके जीवन के प्रकाशमात्र होते हैं।

महर्षि का जीवन और विचार-दर्शन एक साथ लिखने और प्रकाशित करने का उद्देश्य यही है कि पाठक उनके जीवन-चरित्र के साथ विचारों का अध्ययन करते हुए महर्षि का अन्तर्दर्शन कर सकें।

महर्षि दयानन्द ने अपने विचारों का प्रकाशन करने के लिए मुख्य ग्रन्थ 'सत्यार्थप्रकाश' की रचना की। यह धर्म-संबन्धी ज्ञान के लिए एक प्रकार का विश्वकोष है। इसके अतिरिक्त संस्कारविधि, पंच-महायज्ञविधि, आर्याभिविनय, आर्योद्देश्यरत्नमाला, स्वमन्तव्यामन्तव्य प्रकाश, व्यवहारभानु, गोकरुणानिधि, वेदान्त ध्वान्तनिवारण आदि अनेक छोटे, बड़े ग्रन्थों की महर्षि ने रचना की है। उनके भिन्न मतों के विद्वानों के साथ शास्त्रार्थ भी प्रकाशित हुए हैं।

महर्षि की इच्छा थी कि अपने जीवन-काल में चारों वेदों का एक आदर्श भाष्य भी रचकर प्रकाशित करें। इसी निमित्त उन्होंने ऋग्वेदादिभाष्यभूमिका नाम से एक ग्रन्थ रचा। इसमें वेदों के विषयों का साधारण दिग्दर्शन कराया। सायण,महीधर आदि के भाष्यों की आलोचना भी की। महीधर ने किस प्रकार वेदमन्त्रों की दूषित व्याख्या

करके वेदों को कलंकित करने का प्रयत्न किया है इसके भी कुछ उदाहरण दिये ।

यजुर्वेद का सम्पूर्ण तथा ऋग्वेद के कुछ मण्डलों का भाष्य भी महर्षि ने किया । दुर्भाग्यवश इनका यह कार्य अधूरा ही रहा और वे इस संसार से विदा हो गये ।

महर्षि के विचारों को मैंने महर्षि के ही शब्दों में प्रस्तुत करने का प्रयत्न किया है । महर्षि के ग्रन्थों का उद्धरण देते हुए उनके विचारों का प्रदर्शन किया है । इसमें मेरा कुछ नहीं ।

इससे पूर्व मेरी 'शंकराचार्य : जीवन और दर्शन'' पुस्तक इसी सहकारी संस्था की ओर से प्रकाशित हुई थी । इस पुस्तक का पाठकों ने अच्छा स्वागत किया । इससे मुझे प्रोत्साहन मिला । यह इस 'जीवन और दर्शन' ग्रन्थमाला का द्वितीय ग्रन्थ है ।

मेरा विचार भारत के पाँच प्रमुख धर्माचार्यों—महात्मा बुद्ध, मुनिवर महावीर स्वामी, स्वामी शंकराचार्य, गुरु नानक और महर्षि दयानन्द के जीवन और दर्शन लिखने का रहा है । इन ग्रन्थों में उन धर्माचार्यों के दृष्टिकोण को ही प्रस्तुत किया जाये, यह मेरी इच्छा है ।

—नारायणदत्त सिद्धान्तालंकार

महर्षि दयानन्द

जीवन खंड

१. जन्म : शिक्षा : दीक्षा

बाल्यकाल—प्रेरणा-प्रसंग : शिवरात्रि पूजन, बहिन और चाचा की मृत्यु—गृह-त्याग—संन्यास—गुरु-खोज की यात्रा—गुरु-प्राप्ति: स्वामी विरजानन्द—गुरु दक्षिणा ।

भारत के सौराष्ट्र प्रदेश में अंग्रेजी राज्य के समय मौरवी नाम की एक छोटी-सी रियासत थी । इस रियासत के टंकारा नामक नगर में जीवापुर मुहल्ले में कर्षणजी लालजी तिवाड़ी रहते थे । वे सामवेदी औदीच्य ब्राह्मण थे । इनके पूर्वज उत्तर भारत के रहने वाले थे । उत्तर भारत से आने के कारण वे औदीच्य ब्राह्मण कहलाते थे । कर्षणजी की प्रथम सन्तान मूलजी (मूलशंकर) थे, इन्हें दयाराम नाम से भी पुकारते थे । यही मूलजी बाद में दयानन्द सरस्वती बने ।

मूलजी का जन्म सं० १८८१ विक्रमी में हुआ । मूलजी के बाद कर्षणजी के घर में दो पुत्र और पुत्रियों ने जन्म लिया ।

कर्षणजी नगर के सम्पत्तिशाली पुरुष थे । इनका व्यवसाय रुपयों का देन-लेन था । इनके पास अपनी जमींदारी भी थी । अपने नगर के जमादार थे । जमादार का पद उन दिनों मौरवी रियासत में अंग्रेजी राज्य के तहसीलदार के समान था । इनके अधीन नगर रक्षा के लिए कुछ सिपाही भी रहते थे । धनी और पदाधिकारी होते हुए भी धार्मिक विचारों के व्यक्ति थे । इनके चरित्र में दृढ़ता तथा स्वभाव में कठोरता थी । मूलजी

की माता मृदु स्वभाव की थी। उसमें दया की भावना अधिक थी।

बालक मूलजी की स्मरणशक्ति अच्छी थी। बुद्धि तीव्र थी। पाँच वर्ष की अवस्था में इनके पिता तथा अन्य वयोवृद्ध सम्बन्धियों ने इन्हें संस्कृत के श्लोक कंठस्थ कराने शुरू कर दिये। आठ वर्ष की अवस्था में इनका शास्त्र विधि के अनुसार उपनयन संस्कार हुआ। उपनयन संस्कार के अनुसार इन्हें गायत्री मन्त्र तथा संध्याविधि का शिक्षण दिया गया। रुद्राध्याय कण्ठ करवाया गया। यजुर्वेद पढ़ाना प्रारम्भ किया।

मूलजी के पिता तथा अन्य सम्बन्धी शैव सम्प्रदाय के थे। शिव की उपासना में उनकी विशेष आस्था थी। मूलजी के अन्त:करण में भी इन्हीं संस्कारों का बीजारोपण किया गया। इनके पिता इन्हें शैव सम्प्रदाय के अनुसार ब्रह्म उपासना आदि का उपदेश देने लगे। मिट्टी की शिवपिण्डी बनाकर उसके पूजन का आदेश देने लगे। मूलजी अभी दस वर्ष के ही थे कि इनके पिता कर्षणजी चाहते थे कि शिवरात्रि के दिन मूलजी विधिवत् उपासना करते हुए रात्रि जागरण करें, कथा का श्रवण करें।

माता के हृदय में पुत्र के प्रति मोह था। वह नहीं चाहती थी कि मेरा पुत्र एक दिन भी भूखा रहकर कष्ट सहन करे, कृश हो जाए। वह अपने पति से सविनय निवेदन करती थी कि यह बालक सुकोमल है, प्रात: उठते ही भूख-भूख करके मुझसे कलेवा माँगता है। यह भूखा कैसे रह सकेगा?

इसी प्रकार माता-पिता के परस्पर विधि-निषेध की बातचीत में चार वर्ष बीत गए। सं० १८९४ विक्रमी में मूलजी चौदह वर्ष के हो गए। इस समय तक मूलजी ने सम्पूर्ण यजुर्वेद कण्ठस्थ कर लिया था। अन्य वेदों के कुछ मन्त्र भी याद कर

लिये थे। व्याकरण में शब्द-रूपावली तथा कुछ लघु ग्रन्थ पढ़ लिये थे।

शिवरात्रि पूजन

पिता की दृष्टि में मूलजी समझदार बच्चों की गणना में आगए। मूलजी मेधावी बच्चे थे। धर्म के प्रति निष्ठा थी। पिता ने शिवरात्रि के दिन व्रत तथा रात्रि जागरण के माहात्म्य की कथा पुत्र को सुनाई। पुत्र को शिवरात्रि के दिन उपवास रखने का आदेश दिया। कोमल मातृहृदय इस आदेश से विक्षुब्ध हुआ। माता ने पुनः अपने पतिदेव से विनयपूर्वक इस आदेश को वापिस लेने की प्रार्थना की, पर कर्षणजी अपने निश्चय से विचलित न हुए। वे कठोर प्रकृति के पुरुष थे। उनके आदेश में कोई परिवर्तन न हुआ। मूलजी के मन में भी पिता के उपदेश से श्रद्धा की भावना थी। अतः वे भी उपवास के लिए अनिच्छुक न थे।

काठियावाड़ में भारत के अन्य प्रान्तों की भाँति शिवरात्रि का व्रत फाल्गुन में न मनाकर उसके स्थान पर माघ वदी चौदह को मनाया जाता है। मूलजी श्रद्धाभरे भाव से उस दिन निराहार रहे। रात्रि के समय अपने पिता के साथ शहर से कुछ दूर एक बड़ शिवालय में पूजा के निमित्त गए। यह शिवालय 'जड़ेश्वर का मन्दिर' नाम से प्रसिद्ध है। शिवरात्रि के समय चार प्रहरों में चार बार पूजा का विधान है। मूलजी प्रथम बार विधिवत् शिवरात्रि का व्रत रखकर पूजा के निमित्त दीक्षित होकर शिवालय में आए थे। शिवालय में अपूर्व समारोह था। मन्दिर के अन्दर और बाहर दीपक जगमगा रहे थे। सुगन्धित धूप बत्तियों के धूम्र से वायुमण्डल सुवासित था। भक्तजन स्नान करके रेशमी शाटिका धारण कर, हाथ में धूप सामग्री और कलश लिये, मस्तक पर विभूति रमाए मन्दिर में आ रहे थे।

मन्दिर-द्वार पर घण्टावादन के साथ "हर-हर महादेव" के उच्च स्वर से सम्मिलित नाद से समीपवर्ती प्रदेश गुंजायमान था। सभी के हृदयों में श्रद्धाभरी उमंग थी।

प्रथम प्रहर की पूजा प्रारम्भ हुई। पुजारी ने मधुर स्वर के साथ शिवजी का अर्चन किया। मूर्ति पर भोग चढ़ाया। उपस्थितजनों ने नतमस्तक होकर शिवलिङ्ग की मूर्ति के प्रति भक्तिभाव का प्रदर्शन किया। दूसरे प्रहर की पूजा भी इसी प्रकार सम्पन्न हुई।

अर्धरात्रि का समय था। निद्रादेवी सभी भक्तजनों को मूर्च्छित करने लगी। नेत्र निमीलित होने लगे। शरीर शिथिल होने लगा। एक-एक करके सभी उपस्थितजन झूमते हुए सोने लगे। मूलजी के पिता और स्वयं पुजारी भी गाढ़ निद्रा में मग्न हो गए।

मूलजी अकेले आँखों पर पानी डालते हुए जागृत रहने का प्रयत्न करते रहे। उनके मन में श्रद्धा और उत्साह था। वे नहीं चाहते थे कि निद्रादेवी के वशीभूत होकर शिव पूजा के माहात्म्य से वंचित रह जावें। शिवलिंग की मूर्ति की ओर ध्यान लगाए सुखासन पर बैठे थे। सब ओर शान्ति छायी हुई थी। इसी समय कुछ मूषक मन्दिर की मूर्ति पर आए। भक्तजनों द्वारा श्रद्धाभरी भावना से चढ़ाए हुए भोग (मिष्टान्) को निर्भय मन उछल-उछल कर खाने लगे। मूलजी की दृष्टि इस घटना पर पड़ी। वे आश्चर्यचकित होकर देखने लगे। पूज्य पिता से शिवजी का माहात्म्य सुना था। उनकी अनन्त शक्ति का वर्णन सुना था। आज उन्हीं शिवजी के ऊपर निरकुंश मूषकों का नृत्य देख रहे हैं। शिव भगवान् के निमित्त भक्तजनों ने परम आस्था के साथ जो भोग सामग्री लाकर विनम्रभाव से उनके प्रति अर्पण की है, उसे ये मूषक खाते जा रहे हैं। भगवान् इन

मूषकों के उच्छृंखल नृत्य को निष्क्रिय भाव से सहन कर रहे हैं। इन मूषकों को हटाने में वे शक्तिहीन हैं।

मूलजी का मन शङ्काकुल हो उठा। किसी प्रकार का समाधान सामने न आया। उसी समय पिता के समीप गए। उन्हें जगाकर घटना का वर्णन किया। उनसे नम्र निवेदन किया—तात् ! आपने शिव भगवान् की अनन्त शक्ति का वर्णन मेरे सम्मुख किया था और कहा था कि यह शिवमूर्ति भी उसी के समान है। इसमें उनकी प्राणप्रतिष्ठा की गई है। यह मूर्ति अपनी रक्षा इन क्षुद्र जीवों से भी नहीं कर सकती। क्या यही सच्चे शिव हैं ? मेरा चित्त शङ्काओं से व्याकुल हो रहा है। कृपया इसका समाधान कर मुझे शान्ति प्रदान कीजिये।

पिता निद्रा के नशे में थे। पुत्र के इस प्रकार वचन सुनकर सचेत हुए। पहले तो कुछ आवेश में आए। उसे इस प्रकार की शंकाएं करने के लिए भर्त्सना दी। मूलजी के मन में तरंगें उठ रही थीं। जब तक उनकी शंकाओं का समाधान न हो वहाँ शान्ति न थी। वे पुनः-पुनः पिता से नम्रतापूर्वक आग्रह करने लगे—हे पितृ देव ! मुझे सच्चे शिव के दर्शन का मार्ग बतलाओ। मेरे अशान्त मन को शान्ति प्रदान करो।

पिता ने पुत्र की व्याकुलता देखकर प्रेमपूर्वक कहा—वत्स ! यह कलिकाल है। हम लोग धर्म मार्ग से परे होकर स्वार्थ में मग्न हैं। ऐसे समय में देवों के देव शिव हमें दर्शन नहीं देते। वे कैलाश पर्वत पर वास करते हैं। उनकी मूर्ति का निर्माण कर उसमें मन्त्रों द्वारा प्राण प्रतिष्ठा कर हम इसकी आराधना करते हैं। मूर्ति की आराधना से वे सर्वान्तर्यामी महादेव प्रसन्न होते हैं। इसमें कोई सन्देह नहीं कि यह पाषाण मूर्ति है, साक्षात् देवता नहीं। तुम तर्क का परित्याग कर अपनी विचार तरंगों

को शान्त करो। श्रद्धामयी भावना से इस मूर्ति की आराधना करो। इसी में तुम्हारा कल्याण है।

पिता के वचनों से मूलजी को सन्तोष न हुआ। प्रतिमा पूजन से उनकी आस्था उठ गई। अब मन्दिर में बैठना दुःसह हो गया। पिता से विनयपूर्वक घर जाने की आज्ञा माँगी। पिता ने एक सिपाही साथ देकर घर जाने की आज्ञा प्रदान की। घर पहुँचते ही मूलजी माता के पास गए। माता से कहा—मुझे भूख लगी है। कुछ खाने के लिए दीजिए। माता ने पुत्र को वात्सल्य भाव से छाती से लगाकर कहा—पुत्र! मैंने तो पहले ही तेरे पिता और तुझसे कहा था कि तू निराहार न रह सकेगा। तुम दोनों नहीं माने। अच्छा, बैठ, यह मिष्ठान्न ले, पर पिता को न बतलाना कि तूने कुछ खा लिया है। वे कट्टर शैवपन्थी हैं। उन्हें यदि यह सूचना मिल गई कि तूने कुछ खा लिया है तो वे तुझ पर बहुत क्रोध करेंगे। मुझे भी बुरी-भली कहेंगे। वे धार्मिक व कठोर प्रकृति के व्यक्ति हैं।

शिवरात्रि समारोह की समाप्ति के दूसरे दिन कर्षणजी घर आए। आते ही उन्हें किसी सूत्र से सूचना मिल गई कि मूलजी ने घर आकर व्रत भङ्ग कर दिया है। उन्होंने पुत्र की इस कार्य के लिए भर्त्सना की और भविष्य में इस प्रकार का भंग न करने का आदेश दिया।

मूलजी का अपने चाचा से विशेष स्नेह था। चाचा को भी मूलजी बहुत प्रिय थे। मूलजी ने चाचा से निवेदन किया कि मैं विद्याध्ययन में विशेष ध्यान देना चाहता हूं। ये व्रत आदि कर्म तथा पूजा-पाठ मेरे अध्ययन में बाधक हैं। अतः आप पिताजी को समझायें कि वे मुझे इसके लिए बाधित न करें।

मूलजी के चाचा और माता दोनों ने कर्षणजी को समझाया और मूलजी को स्वाध्याय में विशेष रूप से प्रयत्नशील रहने के लिए सहमत कर लिया। पिताजी की अध्ययन के लिए सहमति प्राप्त कर मूलजी ने समीपस्थ एक विद्वान् पण्डित से निघण्टु, निरुक्त, मीमांसा आदि ग्रन्थ पढ़ने शुरू किये।

बहिन तथा चाचा की मृत्यु

सं० १८९६ विक्रमी में मूलजी ने १६ वें वर्ष में पदार्पण किया। इन दिनों एक रात्रि के अवसर पर मूलजी इष्ट मित्रों समेत अपने एक बन्धु के घर पर नृत्योत्सव देखने गए हुए थे। वहीं एक भृत्य ने आकर समाचार दिया कि आपकी चौदह वर्ष की बहिन विषूचिका रोग से ग्रस्त हैं। उसकी अवस्था गम्भीर है। आप शीघ्र चलें। मूलजी तुरन्त वहाँ से उठकर घर आए। बहिन की अवस्था शोचनीय थी। सभी परिजन उसकी सेवा में व्यग्र थे। वैद्यजी चिन्तित मुख मुद्रा में उसे औषधि दे रहे थे। सब प्रकार के उपचार करने पर भी दशा में कोई सुधार न हुआ। अन्त में मूलजी के आने के दो घण्टे बाद सुकुमार बालिका प्राण-विसर्जन कर सब परिवारजनों को शोक सागर में निमग्न कर गई। सारे घर में करुण क्रन्दन होने लगा। सुन्दर अधखिली कली अभी खिलने भी न पाई कि विकराल काल ने अकाल में ही उसे वंशतरु से विछिन्न कर दिया। पिता व्याकुल होकर हाहाकार कर रहे थे। माँ अश्रुधारा के साथ विलाप करती हुई तड़फ रही थी। सभी बन्धुबांधव शोक-विह्वल थे। मूलजी एक ओर पाषाण मूर्ति के समान अविचल खड़े हुए विचारमग्न मनुष्य-जीवन की क्षण-भंगुरता विचार पर कर रहे थे। सभी प्राणियों का यही अवश्यम्भावी भविष्य है। मुझे भी इसी प्रकार अपने जीवन का अन्त देखना पड़ेगा। यह असह्य वेदना सहनी पड़ेगी।

इसी समय मूलजी ने संकल्प किया कि मैं इस मृत्यु पर विजय पाने के साधनों की खोज करूंगा। अमर पद को प्राप्त करने का प्रयत्न करूंगा।

इसी प्रकार विचारमग्न अवस्था में दिन बीतते गए। मूलजी विद्याध्ययन के साथ आत्मचिन्तन करते रहे। सांसारिक व्यवहार से उनका चित विरक्त होने लगा। सं० १८९९ विक्रमी में वे उन्नीस वर्ष के हुए।

इस वर्ष मूलजी के चाचा भी विषूचिका रोग से ग्रस्त हुए। मूलजी के चाचा अच्छे विद्वान् तथा साधु चरित्र के व्यक्ति थे। मूलजी को जन्म से ही बहुत स्नेह करते थे। बहुविध उपचार करने पर भी चाचा की अवस्था में सुधार न हुआ। मूलजी को संकेत कर उन्होंने अपने पास बिठा लिया। जिस भ्रातृ पुत्र को सदा वात्सल्य भाव से पाला पोसा, आज उससे विदाई का समय आ गया। चाचा की अश्रुधारा बहने लगी। भ्रातृ-पुत्र (मूलजी) से भी न रहा गया। वह भी फूट-फूट कर रोने लगा।

यमराज का शासन बहुत कठोर है। उसके हृदय में करुणा का कोई स्थान नहीं। उसके सामने क्रन्दन और विलाप का कोई मूल्य नहीं। उसे कर्तव्यपालन करना है। उसमें किसी प्रकार की ढील नहीं हो सकती। मूलजी के रोने-धोने का कोई परिणाम न निकला, यमराज जीवन-ज्योति को लेकर चला गया। शरीर अचेतन अवस्था में वहीं पड़ा रह गया। कुछ समय विलाप कर बन्धुवर्ग शरीर को अर्थी पर रखकर श्मशानघाट ले गए। मन्त्रोच्चारण के साथ उसकी दाह क्रिया कर दी गई।

मूलजी इस अवस्था पर विचार करने लगे। मेरे स्नेही चाचा आज इस संसार में नहीं रहे। जब कभी जीवन में कोई कठिनाई आती थी मैं उनके चरणों में उपस्थित हो जाता था।

वे ही मेरे माता-पिता को कहकर मेरा मार्ग सुगम कर देते थे। विधाता ने उनका मेरा साथ अधिक समय न चाहा। आज वे सदा के लिए मुझे छोड़कर चले गए। कठोरचित्त यमराज को मेरे फूट-फूट कर रोने पर किसी प्रकार दया न आई। वह उनके प्राणों का हरण कर चला गया। मैं उनके निकट बैठा हुआ देखता ही रह गया।

गृह-त्याग

शिवरात्रि की घटना से मूलजी के मन में सच्चे शिव के दर्शन की अभिलाषा का प्रादुर्भाव हुआ। बहिन की मृत्यु के बाद मृत्यु पर विजय पाने का संकल्प किया था। चाचा की मृत्यु से वह संकल्प दृढ़ हो गया। अब वे अनुभव करने लगे कि जो बन्धु आज मुझे स्नेह की भावना से देख रहे हैं, मेरे लिए सभी प्रकार के कष्ट सहन कर मुझे सुखी रखना चाहते हैं, उनका वियोग अवश्यम्भावी है। सभी को अवश्य मरना है। इस विकराल-काल का ग्रास बनना हैं। मुझे इस जन्ममरण के तत्व को जानना है। इससे सदा के लिए छुटकारा पाना है।

मूलजी ने अपनी भावनाओं को माता-पिता पर प्रकट नहीं किया। पर पुत्र के आचरण से उन्हें उसका वैराग्य की ओर झुकाव स्पष्ट दीखने लगा। वैराग्य की प्रवृत्ति के शमन का एकमात्र उपाय कामवासना को प्रदीप्त करना है। पुत्र का शीघ्र विवाह करना ही इसका श्रेष्ठ मार्ग हैं। यह सोचकर कर्षणजी ने पुत्र का विवाह करने का निश्चय कर लिया। अपनी कुल मर्यादा के अनुकूल सुन्दर सुयोग्य कन्या को तलाश करना शुरू कर दिया।

मूलजी को ज्योंही पिता के निश्चय का पता लगा उन्होंने अपने माता-पिता से दृढ़ता के साथ निवेदन किया कि—मैं अभी

किसी प्रकार विवाह करने के लिए तैयार नहीं हूं। मुझे अभी अध्ययन करना है।

अपने अन्य बन्धुओं और मित्रों द्वारा भी माता-पिता पर दबाव डलवाया कि जिस अवस्था में आपका पुत्र अभी विद्या प्राप्ति के सिए प्रयत्नशील है, आप उसको विवाह बन्धन में डालने के विचार का परित्याग करें। पिता ने दो वर्ष तक विवाह न करने का आश्वासन दे दिया।

अब मूलजी ने पिता से अनुरोध किया कि वे उसे व्याकरण ज्योतिष आदि शास्त्रों का अध्ययन करने के लिए काशी जाने की आज्ञा दें। पुत्र की वैराग्य की ओर प्रवृत्ति देखकर पिता ने काशी जाने की आज्ञा नहीं दी। माता भी अपने पुत्र को अपनी आँखों से परे दूर देश में नहीं जाने देना चाहती थी।

टंकारा से तीन कोस परे कर्षणजी की ज़मींदारी में एक विद्वान् पण्डित निवास करते थे। मूलजी ने उन के पास रह कर विद्याध्ययन की आज्ञा चाही। माता पिता ने इस की स्वीकृति प्रदान की। वे वहाँ जाकर पढ़ने लगे। विद्याध्ययन करते हुए भी उन्हें यही धुन रहती कि किस प्रकार मैं सच्चे शिव के दर्शन करूँ, इस जीवन-मृत्यु के चक्र से छुटकारा पाकर अमर पद को प्राप्त करूँ ? गुरु जी से तथा अपने मिलनेवालों से समय-समय पर यही प्रश्न करते। सभी का एक ही उत्तर था कि योग का अभ्यास ही इसका एकमात्र उपाय है। योगाभ्यास घर पर रह कर नहीं हो सकता। विवाह के बंधन में पड़कर काम मोह और परिग्रह के पाश में फंसकर योग का अभ्यास नहीं हो सकता। इस प्रकार अपने उद्देश्य में विवाह बन्धन को बाधक समझते हुए मूलजी ने विवाह न करने का निश्चय कर लिया।

कर्षणजी को पुत्र के विचारों की सूचना उसके गुरु द्वारा मिली। पिता ने तुरन्त पुत्र को घर पर बुलवा लिया। उसके विवाह की तैयारी करने लगे। आवश्य सामग्री का संग्रह करना प्रारम्भ कर दिया। बन्धु बान्धवों को सूचना भेज दी गई। इस समय मूलजी की आयु इक्कीस वर्ष की थी। वे विवाह न करने का दृढ़ निश्चय कर चुके थे। पिता और पुत्र के निश्चय परस्पर विरोधी थे। पिता पुत्र के निमित्त मदमाती सुन्दरी सुशील कन्या को घर में लाकर उसे आजीवन बन्धन में बांधना चाहते थे। पुत्र बहिन और चाचा की मृत्यु के दृश्य देख कर बन्धु वियोग की असह्य वेदना का अनुभव कर चुका था। वह अच्छी तरह जान चुका था कि आनन्दमय उत्सव के साथ आज का सांसारिक स्नेह संयोग कल वियोग की सन्तप्त ज्वाला के रूप में परिणत होना है। यह अवश्यम्भावी है। इसे कोई टाल नहीं सकता। इन्हीं विचारों के साथ वह चुपचाप घर से भाग निकलने का अवसर देख रहा था।

संवत् १९०२ वि० की घटना है। सभी बांधव सारा दिन विवाह की तैयारियों में व्यस्त रहने से थके हुए होने के कारण रात्रि के समय गाढ़ निद्रा में सोए हुए थे। मूलजी आँखें बन्द किए हुए पड़े थे। पर निद्रा में न थे। प्रहरी सब को सोया हुआ समझ कर निश्चिन्त हो कर सुषुप्ति का आनन्द लेने लगे। मूलजी चुपचाप उठे। घर से बाहर निकले। पुनः घर वापिस न आने का निश्चय कर लिया।

घर से निकल कर मूलजी ने अपने गांव से चार कोस परे प्रथम रात्रि बिताई। अभी रात्रि का एक प्रहर शेष था कि वे पुनः उठकर आगे चल पड़े। सायंकाल से पहले ही चौदह कोस और चल कर एक ग्राम में पहुँचे। वहाँ पहुँच कर पास ही एक हनुमान मन्दिर में रात्रि बिताई। इस यात्रा में मूलजी ने

चतुरता से काम लिया। टंकारा से मुख्य मार्ग से न चलकर विषम मार्ग से निकले जिससे मार्ग में कोई परिचित व्यक्ति न मिले।

अगले दिन माता पिता पुत्र को घर में न पाकर अत्यन्त चिन्तित हुए। कर्षणजी ने पुत्र की तलाश में सब ओर सिपाही भेजे पर वे निराश हो कर वापिस आ गए। विवाह की तैय्यारियाँ क्षोभ और खेद में परिणत हो गईं।

मूलजी योगियों की खोज में शैलाग्राम में पहुँचे। यहाँ एक लाला भक्त रहते थे। वे अपनी भक्ति और योग साधन के लिए प्रसिद्ध थे। मूलजी ने लाला भक्त से योग साधनों को सीखने की इच्छा प्रकट की। श्रद्धा से सीखना प्रारम्भ किया।

शैला में मूलजी का परिचय एक ब्रह्मचारी से हुआ। उसने विधिवत् ब्रह्मचर्य आश्रम ग्रहण करने का परामर्श दिया। मूल जी को ब्रह्मचर्य की दीक्षा देकर इन का नाम शुद्धचैतन्य रखा। इस समय से वे शुद्धचैतन्य कहलाने लगे। साधारण वस्त्र छोड़कर पीले और लाल वस्त्र धारण करने लगे।

लालाभक्त भक्त थे, त्यागी पुरुष थे। शैला में इन्होंने एक रामचन्द्र जी का मन्दिर बनवाया था। इस मन्दिर में बाहर से आनेवाले दर्शनार्थी साधुओं तथा पथिकों को सदाव्रत दिया जाता था। इन्हीं सेवाओं के कारण लालाभक्त की आस-पास के प्रदेश में प्रसिद्धि थी। शुद्धचैतन्य को जिस वस्तु की जिज्ञासा थी, वह यहाँ न मिली, अतः वे यहाँ से कोट भङ्गारा होते हुए सिद्धपुर की ओर चल दिए।

सिद्धपुर में कार्तिक का मेला समारोह के साथ हुआ करता था। उस में साधु संन्यासी एकत्रित होते थे। शुद्धचैतन्य अपने अभीष्ट की सिद्धि के लिए अच्छे योगी साधु की तलाश में थे। सिद्धपुर जाते हुए मार्ग में एक पुराने परिचित वैरागी से

साक्षात्कार हुआ। वैरागी ने शुद्धचैतन्य से सब हाल पूछ कर उसके पिता के पास सन्देश भेज दिया कि तुम्हारा पुत्र सिद्धपुर के मेले पर आया हुआ है।

शुद्धचैतन्य सिद्धपुर पहुँकर नीलकण्ठ के मन्दिर में एकत्रित संन्यासियों और ब्रह्मचारियों के साथ ठहर गए। सभी प्रकार के महात्मा वहां आए हुए थे। कुछ अच्छे शास्त्रों के व्याख्याता थे। कुछ मौन अवलम्बन कर दर्शनार्थियों को हाथ के इशारे से आशीर्वाद दे रहे थे। कुछ नाना प्रकार से शरीर को कष्ट देनेवाली तपस्याएँ कर रहे थे। साधुओं के चारों ओर भक्तजन मंडरा रहे थे। अपने अभीष्ट की प्राप्ति के लिए श्रद्धा से नमस्कार करते हुए आशीर्वाद की भिक्षा माँग रहे थे। शुद्धचैतन्य अपनी धुन में मस्त था। उसका इष्ट सभी भक्तजनों से भिन्न था। वह तो सच्चे शिव के दर्शन और मृत्यु पर विजय पाने के साधनों के ज्ञान की प्राप्ति के लिए योगी सन्त की तलाश में था।

कषणजी ने ज्यों ही यह समाचार सुना कि उनका पुत्र सिद्धपुर के कार्तिक मेले में आया हुआ है, वे कुछ सिपाहियों के साथ पुत्र की तलाश में वहाँ पहुँच गए। पुत्र की खोज करने लगे। सभी साधुओं के आवास स्थान पर घूमने लगे।

एक दिन प्रातः काल शुद्धचैतन्य नीलकण्ठ के मन्दिर में साधुसन्तों के बीच मैं बैठे हुए थे। पिता भी अपने सिपाहियों के साथ वहाँ पहुँचे। पुत्र को लाल पीले कपड़ों में देखकर अत्यन्त विक्षुब्ध हुए। उसे पकड़ कर उसके कपड़ों को फाड़कर टुकड़ें-टुकड़े कर डाला। तूम्बी छीनकर फेंक दी। क्रोधभरे वचनों से ताड़ना करने लगे।

शुद्धचैतन्य ने विनयपूर्वक क्षमायाचना की। पिता के साथ घर लौटने का आश्वासन दिया। पुनः पिता के दिये श्वेत-

वस्त्र धारण किये। पिता के साथ उनके आवास स्थान पर जा कर ठहरे।

कर्षणजी को पुत्र पर विश्वास न था। वे समझते थे कि भय के कारण मूलजी (शुद्धचैतन्य) ने वापिस घर चलने का वचन दिया है। वह फिर इसी प्रकार चुपचाप भाग सकता है। पुत्र भी पुनः पिता से छुटकारे के अवसर की प्रतीक्षा में था। उसके मन में योगाभ्यास की धुन थी। सच्चे शिव के दर्शन की लालसा थी। मृत्यु पर विजय पाने की दृढ़ भावना थी।

कर्षणजी की आज्ञा के अनुसार प्रहरी सतर्क थे। उन्हें आज्ञा थी कि रात्रि के समय भी जागते रहें। ऐसा न हो कि मूलजी (शुद्ध चैतन्य) पुनः भाग निकले।

विधि का विधान विचित्र है। उसे कोई जान नहीं सकता। उसी रात्रि को सिद्धपुर में पिता पुत्र सो रहे थे। पिता गहरी निद्रा में थे। पुत्र आँखें बन्द किये हुए भागने का उपयुक्त अवसर देख रहा था। प्रहरी सिपाहियों ने समझा कि अब दोनों निद्रा के नशे में हैं। वे भी निश्चिन्त होकर सो गए।

रात्रि के तीन बजे का समय था। शुद्धचैतन्य ने पिता और सिपाहियों को सोया हुआ पाकर एक लोटा उठाया और दबे-पांव बाहर निकल पड़े। एक मील दूर एक मन्दिर के पार्श्व में बड़ का घना वृक्ष था। उसकी शाखा प्रशाखाएँ फैली हुई मन्दिर के गुम्बज़ के ऊपर छाई हुई थीं। उसी वृक्ष पर चढ़कर मन्दिर के गुम्बज़ से स्पर्श करती हुई शाखाओं में छिप कर शुद्धचैतन्य बैठ गया।

सुबह होने पर पुत्र को अपनी शय्या पर न पाकर कर्षणजी और उनके सिपाहियों ने पुनः उसकी तलाश में दौड़धूप की। जिस मन्दिर के समीप बड़ के वृक्ष पर मूलजी छिपे बैठे थे, वहाँ

भी सिपाही पहुँचे। मन्दिर के पुजारी से पूछ-ताछ की पर कुछ पता न चला। शुद्धचैतन्य ऊपर बैठे उन सिपाहियों का तमाशा देख रहे थे। किसी प्रकार पता न पाकर कर्षणजी और उनके सिपाही टंकारा वापिस चले गए।

सायंकाल अन्धकार के समय जब कोई प्राणी बाहर नहीं दीख रहा था शुद्धचैतन्य वृक्ष के नीचे उतरे। अप्रसिद्ध मार्ग व पगडण्डियों से खेतों में होते हुए यात्रा आरम्भ की। प्रसिद्ध मार्गों से जाने में उन्हें भय था कि कहीं कोई परिचित व्यक्ति न मिल जाए। मार्ग के सम्बन्ध में किसी से पूछ-ताछ नहीं की। इस प्रकार अहमदाबाद पहुँचे। अहमदाबाद से बडौदा आए। यहाँ चेतन मठ में स्वामी ब्रह्मानन्द से नवीन वेदान्त का अध्ययन किया।

संन्यास

बड़ौदा से शुद्धचैतन्य चाणोद कर्णाली पहुँचे। चाणोद और कर्णाली नर्मदा नदी के तट पर स्थित दो पृथक्-पृथक् स्थान हैं। यहाँ एक परमहंस परमानन्द स्वामी रहते थे। वे वेदान्त के अच्छे विद्वान् थे। उनसे कुछ वेदान्त के ग्रन्थों का अध्ययन आरम्भ कर दिया, साथ ही कुछ योगीजनों से वार्तालाप करते रहे।

यहाँ रहते हुए शुद्धचैतन्य के मन में संन्यास ग्रहण करने की इच्छा हुई। अपने एक मित्र द्वारा चाणोद कर्णाली के प्रतिष्ठित संन्यासी चिदाश्रम स्वामी से प्रार्थना की कि वे शुद्ध चैतन्य ब्रह्मचारी को संन्यास की दीक्षा दें। शुद्धचैतन्य युवक थे, संन्यास के उपयुक्त उनकी आयु न थी, अतः चिदाश्रम स्वामी ने दीक्षा देने की अनुमति नहीं दी। कुछ मास पश्चात् पास के एक जङ्गल में एक टूटे फूटे घर में दो संन्यासी शृंङ्गेरी मठ से द्वारकापुरी जाते हुए ठहरे। इनमें एक का नाम पूर्णानन्द सरस्वती

था। वे विद्वान् वीतरागी साधु थे। शुद्धचैतन्य ने पुनः अपने मित्र पण्डित द्वारा स्वामी पूर्णानन्द से अनुरोध किया कि वे इन्हें संन्यास की दीक्षा दें। स्वामी पूर्णानन्द ने भी एक बार तो निषेध किया, पर शुद्धचैतन्य की दृढ़ आस्था तथा शुद्ध चरित्र को देखकर उसे संन्यास आश्रम की दीक्षा देना स्वीकार कर यिा। दीक्षा देकर उसका नाम दयानन्द सरस्वती रखा।

कुछ दिन पश्चात् दोनों संन्यासी चाणोद से चले गए। दयानन्द सरस्वती भी चाणोद व्यासाश्रम आ गए। व्यासाश्रम में स्वामी योगानन्द से कुछ योग क्रियाएं सीखीं। व्यासाश्रम से छिनूर जाकर वहाँ कृष्णस्वामी से कुछ व्याकरण का अध्ययन किया। छिनूर से पुनः चाणोद वापिस आए।

चाणोद में इन दिनों स्वामी शिवानन्दगिरि तथा स्वामी ज्वालानन्दपुरी नाम के दो योगियों से इनका साक्षात्कार हुआ। ये दोनों साधु योग के अच्छे ज्ञाता व अभ्यासी थे। दयानन्द सरस्वती इनसे योग विषयक चर्चा करते रहे। थोड़े ही दिनों में ये दोनों योगी चाणोद से चले गए। दयानन्द सरस्वती से कह गए कि एक मास के पश्चात् वे अहमदाबाद के दुग्धेश्वर मन्दिर में आकर ठहरेंगे। दयानन्द सरस्वती भी एक मास बाद अहमदाबाद में दुग्धेश्वर मन्दिर पहुँच गए। वहाँ उनके पास रहकर योगविद्या का अध्ययन तथा अभ्यास करते रहे।

दयानन्द सरस्वती को इन दोनों योगियों से बहुत कुछ ज्ञान मिला, अभ्यास में भी आगे बढ़े, परन्तु पूर्ण तृप्ति नहीं हुई। अपनी प्यास बुझाने के लिए वे यहाँ से आबू पर्वत गए। वहाँ भी भवानी गिरि नामक पर्वत के शिखर पर एक साधु से कुछ योग क्रियाएं सीखीं। आबू से उत्तराखण्ड जाने का निश्चय किया।

मूलजी के रूप में दयानन्द सरस्वती संवत् १९०२ विक्रमी

में घर से निकले थे। आठ वर्ष तक सिद्धपुर, चाणोद, अहमदाबाद तथा आबू पर्वत आदि स्थानों में आत्मतृप्ति के लिए भ्रमण करते हुए सं० १९११ विक्रमी में आबू से हरिद्वार पधारे। यहाँ इन दिनों कुम्भ का मेला हो रहा था। यह प्रथम अवसर था जब दयानन्द सरस्वती ने इतना बड़ा मेला देखा हो। यह जन-समूह का मेला उनकी कल्पना से परे था। यहाँ रहते हुए त्यागी महात्माओं से मिलते रहे, साथ ही पर्याप्त समय गंगापार चण्डी पर्वत पर एकान्त स्थान में योगाभ्यास भी करते रहे। हरिद्वार से ऋषिकेश आए। यहाँ भी योग के अभ्यास में रत रहे। यहाँ पर दयानन्द सरस्वती के साथ एक ब्रह्मचारी और दो पहाड़ी साधु मिल गए। तीनों ऋषिकेश से टिहरी गए। टिहरी में दयानन्द सरस्वती ने वहाँके राजपण्डित से तन्त्रग्रन्थ उपलब्ध किये। तन्त्रग्रन्थों को पढ़ते हुए उनमें कुछ आचारहीनता की पराकाष्ठा के लेखों को देखकर इन ग्रन्थों से घृणा उत्पन्न हो गई। टिहरी से श्रीनगर होते हुए केदारघाट पहुँचे। केदारघाट में उनका परिचय एक साधु गंगागिरि से हो गया। गंगागिरि चरित्रवान् साधु थे। इनकी प्रवृत्ति योगमार्ग में थी। दोनों की परस्पर मैत्री हो गई। दो मास तक एक स्थान पर रहते हुए परस्पर योग चर्चा करते रहे।

केदारघाट में वर्षाकाल बिताकर दयानन्द सरस्वती उसी ब्रह्मचारी और दोनों पहाड़ी साधुओं के साथ रुद्रप्रयाग, अगस्त्य मुनि के आश्रम होते हुए शिवपुरी पहुँचे। यहीं शीतकाल व्यतीत किया। यहाँ ब्रह्मचारी और दोनों साधुओं ने उनका साथ छोड़ दिया। शिवपुरी से दयानन्द सरस्वती अकेले गुप्त काशी गौरी कुण्ड, भीमगुफ़ा आदि रमणीक पर्वतीय स्थानों का देखते हुए पुनः केदारघाट आ गए।

केदारघाट में रहते हुए उनके मन में यह विचार आया कि

सम्भव है कि चारों ओर हिमाच्छादित गिरि शिखरों व कन्दराओं में एकान्त में कोई महात्मा योग समाधि के आनन्द का अनुभव करते हुए निवास करते हों। उनकी तलाश में मुझे प्रयत्नशील होना चाहिये। यह विचार कर केदारघाट से चलकर तुङ्गनाथ के शिखर पर पहुँचे। यहाँ एक भव्य मन्दिर था जिसमें बहुत सी देव मूर्तियाँ थीं। चारों ओर का पर्वतीय दृश्य बहुत सुहावना था। यहाँ से नीचे की ओर उतरना आरम्भ किया। पर्वतीय मार्गों की जानकारी न थी। आगे जाकर दो मार्ग आ गए। उनमें से एक ऐसे मार्ग से चल दिये जो जङ्गल की ओर निकलता था, जहाँ ऊँचे नीचे पाषाण खण्ड थे। जलहीन छोटी नदियों के बहाव स्थल थे। कुछ दूर जाकर यह मार्ग भी रुक गया। चारों ओर कंटकाकीर्ण झाड़ियों से पूर्ण घना वन था। ऊँचे नीचे पाषाण खण्डों में गिरते पड़ते उन कंटकाकीर्ण झाड़ियों में से गुजरना पड़ा। वस्त्र फट गए। शरीर क्षत-विक्षत हो गया। पैर कांटों से छिद गए। मन में प्रबल पुरुषार्थ की भावना बनी रही। पर्वत खण्ड को पार कर उसकी तराई में पहुँचे। यहाँ एक सुगम मार्ग दृष्टिगोचर हुआ। चारों ओर घना अन्धकार था। साहस के साथ उस मार्ग से आगे बढ़े। कुछ दूर जाकर कुटियों की एक श्रेणी दिखाई दी। कुटीवासी ग्रामीणों से पूछने पर पता लगा कि यह मार्ग ओखी मठ की ओर जाता है। विश्राम किये बिना आगे बढ़े। ओखी मठ पहुँच कर विश्राम किया।

प्रातःकाल उठे। पिछले दिन की सब विपदाओं को भूल गए। शारीरिक क्लेशों की परवाह न कर पुनः अपने उद्देश्य की तलाश में निकल पड़े।

इस समय दयानन्द सरस्वती की आयु तीस वर्ष की थी। यौवन का पूर्ण विकास था। मन में उत्साह तथा उमंग थी। योगियों की खोज के पीछे उन्मत्त थे। चारों ओर भ्रमण के
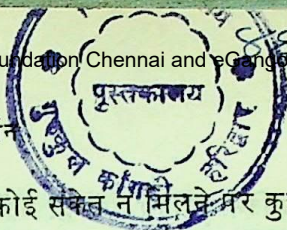
अनन्तर किसी प्रकार का कोई संकेत न मिलने पर कुछ दिन पीछे पुनः ओखीमठ वापिस आ गए।

प्राकृतिक सौन्दर्य के साथ ओखीमठ धन सम्पत्ति से भी पूर्ण था। साधु सन्तों का आना-जाना बना रहता था। सभी प्रकार का सुख साधन तथा आडम्बर विद्यमान था। वैराग्य के पीछे पूर्ण वैभव की अपूर्व छाया थी।

दयानन्द सरस्वती कुछ दिन यहाँ ठहरे। मठ के महन्त इन की भव्य मूर्त्ति को देखकर प्रभावित हुए। महन्त ने उन से आग्रह किया कि आप इस मठ में स्थायी तौर पर रह जाइए। मेरे शिष्य बनकर इस वैभव के स्वामी बन जाइए।

वह उन्मत्त साधु अपने पिता की इससे अधिक विपुल सम्पत्ति को छोड़ कर घर से भागा था। उसके मन में योग साधन के द्वारा उस परम पिता परमात्मा की विभूति का दर्शन कर मृत्यु पर विजय पाने की कामना थी। उसके सामने इस नश्वर सम्पत्ति का कोई मूल्य न था। महन्त के प्रस्ताव को अस्वीकार कर ओखी मठ से चल कर जोशी मठ पहुँच गए।

ज़ोशी मठ में आचार्य शङ्कर के सम्प्रदाय के कुछ दाक्षिणात्य संन्यासी रह रहे थे। उनसे कुछ-कुछ योगशास्त्र के तत्वों का विवेचन कर बद्रीनारायण चले गए। बद्रीनारायण के मन्दिर में शङ्कराचार्य के समय से केरल के ब्राह्मण पुजारी के तौर पर रहते आए हैं। ये रावल कहलाते हैं।

दयानन्द सरस्वती ने रावल जी से अपने उद्देश्य की चर्चा की, वेदादि शास्त्र के विषय में वार्तालाप करते रहे। जहाँ तक योगियों का सम्बन्ध है, रावल जी ने बताया कि यहाँ आस पास कोई योगी निवास नहीं करते। कभी-कभी कोई महात्मा आ जाते हैं और चले जाते हैं। सरस्वती जी यह उत्तर सुनकर कुछ निराश तो हुए, पर साहस न छोड़ा।

एक दिन सूर्योदय होते ही बद्रीनाथ मन्दिर से निकल कर पर्वत की तराई में चल पड़े। चलते-चलते अलखनन्दा नदी के किनारे पहुँच गए। अलखनन्दा के किनारे जाते हुए उसके निकास स्थान पर पहुँचे। यह सारा मार्ग बर्फ़ से ढका हुआ था। अलखनन्दा के निकास स्थान के चारों ओर गगनचुम्बी पर्वत मालाएँ थीं। आगे बढ़ने का कोई मार्ग न दीख रहा था। नदी के पार माणा नामक एक ग्राम के चिह्न दिखाई दे रहे थे। असह्य शीत का समय था। दयानन्द सरस्वती ने साधारण वस्त्र पहने हुए थे। सुबह से थके हुए थे। न कुछ खाया था न पानी पिया था। कभी कभी बर्फ का टुकड़ा मुँह में लेकर उसी से कुछ शान्ति पाने का यत्न किया।

अलखनन्दा का पाट आठ-दस हाथ था। पानी की गहराई कहीं कम कहीं अधिक थी। इसकी ऊपरी तह बरफ से ढकी हुई थी। दयानन्द के मन में उत्साह था। साहस के साथ नदी पार करने के लिए उद्यत हो गए। पर्वतीय नदी की तीक्ष्ण धार में बरफ़ के नोकीले टुकड़ों की रगड़ से नंगे पैरों के तलवे छिद गए। उन से रक्त निकलना शुरू हो गया। रक्त स्राव की तीव्र वेदना से पैर डगमगाने लगे। असह्य शीत से शरीर कांपने लगा। कई वार तो ऐसा अनुभव होता था कि अभी नदी में ही बरफ़ पर शरीर गिरने को है। कोई सहारा न था। इस परम कष्टमयी अवस्था में भी निराशा का नाम न था। एक ईश्वर पर विश्वास था। सब कुछ सहन करते हुए नदी पार की। पार पहुँचने पर शरीर पूर्णतया अवसन्न हो गया। पैरों में उठने की शक्ति न रही। शरीर पर जो कपड़े थे उन्हें उतारकर पैरों पर घुटनों तक पट्टी बाँधी। प्रातःकाल से कुछ खाया न था। भूख विह्वल कर रही थी, इस जनशून्य स्थान पर सहायता की कोई आशा न थी। इसी स्थिति में विश्राम करते हुए कुछ

समय बाद दो मनुष्य उधर आते हुए दृष्टिगोचर हुए। उन्होंने स्वामी जी की साहसमयी क्लेश कहानी सुनकर अपने साथ चलने की प्रार्थना की। पर यहाँ चलने के लिए सामर्थ्य ही न था। उनकी प्रार्थना अस्वीकार करनी पड़ी।

अल्पकालिक विश्राम करने के अनन्तर फिर उठे। वसुधारा नामक स्नानतीर्थ पर पुनः कुछ विश्राम कर रात्रि के समय ही बद्रीनारायण वापिस आ गए। यहां आने पर रावल जी ने दयानन्द सरस्वती को अस्त-व्यस्त देखकर उनसे पूछा महाराज ! सारा दिन कहाँ बिताया ?

दयानन्द सरस्वती ने अपनी यात्रा का व्यौरा सुनाया। रावल जी ने भोजन का प्रबन्ध किया। भोजन करने पर शरीर में शक्ति संचार का अनुभव हुआ। गाढ़ निद्रा में सो गए।

प्रातःकाल रावल जी से विदाई की आज्ञा लेकर नीचे की ओर प्रस्थान किया। मार्ग में रामपुर और काशीपुर होते हुए द्रोणसागर पहुँचे। यहाँ शीत ऋतु बिताई।

द्रोणसागर से मुरादाबाद होते हुए गढ़मुक्तेश्वर गङ्गा तट पर आए। गङ्गा तट पर विचरते हुए धार्मिक ग्रन्थों का स्वाध्याय तथा योग का अभ्यास करते रहे। दयानन्द सरस्वती के पास ऋषिकृत ग्रन्थों के साथ हठयोग प्रदीपिका, योगबीज आदि ग्रन्थ भी थे। इन ग्रन्थों में नाड़ी चक्र आदि का वर्णन पढ़कर उनके मन में इनकी सत्यता की परीक्षा करने की इच्छा उत्पन्न हुई। एक दिन गङ्गा में एक शव बहता हुआ जा रहा था उस शव को किनारे लाकर उसका छेदन शुरू किया। इन ग्रन्थों के वर्णन के अनुसार प्रत्यक्ष दर्शन न कर शव के साथ उन ग्रन्थों को बहा दिया। केवल पातंजल योग दर्शन आदि प्राचीन ऋषियों के ग्रन्थों पर आस्था रखकर उनका स्वाध्याय करते रहे।

गङ्गा तट पर विचरते हुए फर्रुखाबाद, कानपुर, प्रयाग, मिर्ज़ापुर ठहरते हुए काशी पहुँचे। काशी से चण्डालगढ़ होते हुए पुनः नर्मदा नदी का उत्पत्ति स्थान देखने तथा नर्मदा की वनस्थलियों में योगियों की तलाश करने की इच्छा से दक्षिण की ओर चल दिये।

नर्मदा-यात्रा

नर्मदा की यात्रा में दयानन्द सरस्वती को बहुत कष्ट उठाना पड़ा। नर्मदा नदी की घाटी में दक्षिण दिशा की ओर चलते हुए घने जङ्गल में पहुँच गए। इस निर्जन स्थान में एक पर्ण-कुटी दृष्टिगोचर हुई। पर्णकुटी के द्वार पर जाकर वहाँ रहने वालों से दूध माँगा। इन दिनों दयानन्द सरस्वती केवल दूध ही पीते थे, दूध पीकर आगे बढ़े। आध मील दूर जाने पर सब ओर से मार्ग बन्द हो गया। एक सङ्कीर्ण सी पगडण्डी दीखी। उसी का आश्रय को लेकर चल पड़े।

कुछ दूर चलने पर एक जङ्गली रीछ सामने आकर खड़ा हो गया। वह अपनी पिछली टाँगें खड़ीकर मुँह खोलकर आक्रमण करने को उद्यत हो गया। दयानन्द सरस्वती कुछ क्षण निःस्पन्द होकर उसे देखते रहे, फिर धीरतापूर्वक लाठी उठाकर उसके मुँह की ओर की। रीछ आवाज करता हुआ भाग गया। रीछ की गर्जना सुनकर आस पास के लोग एकत्रित हो गए। उन्होंने दयानन्द सरस्वती से विनयपूर्वक प्रार्थना की कि महा-राज ! आप इस जङ्गल में न जाएँ। यह जंगल व्याघ्र, हाथी, रीछ और जंगली भैंसों से भरा हुआ है। आगे जाकर किसी बड़ी विपत्ति का सामना करना पड़ेगा। हमारे साथ चल कर हमारी निवास भूमि में रहिए। हम आपकी सेवा करेंगे।

दयानन्द सरस्वती संकल्प कर चुके थे "मुझे नर्मदा नदी का निकास स्थान देखना है। मार्ग में कहीं किसी योगी महात्मा के

दर्शन हो गए तो उससे योग विद्या की शिक्षा पूर्णकर अपने जीवन को कृतार्थ करना है। उन्होंने उन पर्वतीय जनों को धन्यवाद देते हुए कहा—भद्रजनों ! आप मेरी चिन्ता न करें। मैं ईश्वर विश्वास के साथ अपने आपको सुरक्षित समझता हूँ। अपने उद्देश्य की पूर्ति के लिए सभी कठिनाइयों का मुकाबला करूँगा। ईश्वर सहायक है तो भय का स्थान कहाँ।

दयानन्द सरस्वती के दृढ़ संकल्प को देखकर पर्वतीय जन-उन्हें सुरक्षा के निमित्त एक मोटा लट्ठ देकर अपने घरों में वापिस चले गए।

दयानन्द सरस्वती ने उन्हें सन्तुष्ट करने के लिए वह लट्ठ ले लिया, परन्तु उन के जाने पर वह लट्ठ वहीं छोड़ कर अपने पुराने दण्ड के साथ पुनः यात्रा आरम्भ की। आगे जाकर सारा जङ्गल अगणित फूलों के वृक्षों और कंटीली झाड़ियों से भरा हुआ था। कहीं से निकलने का मार्ग न था। कुछ दूर घुटनों के वल चलना पड़ा। कांटेदार झाड़ियों से वस्त्र फट गए। पैरों से रक्त की धारा बहने लगी। भूख से शरीर बलहीन होने लगा।

सूर्यास्त का समय हो गया। अन्धकार का साम्राज्य बढ़ने लगा। दयानन्द सरस्वती धैर्य का अवलम्बन करते हुए चलते चले गए। किसी प्रकार की चिन्ता मन में न थी। आगे जाकर ऐसे स्थान पर पहुँचे जो चारों ओर पहाड़ियों से घिरा हुआ था। वृक्षों, झाड़ियों और लताओं से पूर्ण था।

कुछ दूर झोंपड़ियों में से धुन्धले प्रकाश की रेखा बाहर निकलती हुई दीखने लगी। पास ही एक पहाड़ी झरना था। इस झरने के पास बकरियाँ चर रही थीं। दयानन्द सरस्वती ने इसी झरने के किनारे एक वृक्ष के नीचे विश्राम करने का निश्चय किया। इतने में देखा कि उस ग्राम के कुछ स्त्री पुरुष

बालक बालिकाएँ ढोल बजाते हुए गाय बैलों को लेकर कोई उत्सव मनाने के निमित्त आ रहे हैं। उन्होंने इस साधु को परदेसी समझ कर घेर लिया। एक बूढ़े व्यक्ति ने आगे बढ़कर पूछा—महाराज ! तुम कहाँ से आ रहे हो ? कहाँ जा रहे हो ?

दयानन्द सरस्वती ने उत्तर दिया—मैं काशी से आ रहा हूँ। नर्मदा नदी निकास स्थान को देखने के लिए जा रहा हूँ। यह उत्तर सुनकर वह जन समुदाय आगे चला गया। दयानन्द सरस्वती हाथ मुँह धोकर ध्यानावस्थित हो गए।

कुछ समय बाद उनमें से दो ग्रामीण पुरुष पुनः वहाँ आए। उन्होंने दयानन्द सरस्वती से ग्राम में चलकर विश्राम करने की प्रार्थना की, दयानन्द स्वामी ने ग्राम में जाना स्वीकार न किया। इस पर उन दोनों पुरुषों ने स्वामीजी को दूध लाकर पिलाया। सारी रात वहाँ आग जलाकर उनकी सुरक्षा के निमित्त जागते रहे। रातभर गहरी नींद सोकर दयानन्द सरस्वती ने पुनः अपने उद्देश्य की पूर्ति के निमित्त यात्रा आरम्भ की। यह घटना सं० १९१३ यानी सन् १८५६ की है। इसके अनन्तर तीन वर्ष तक दयानन्द सरस्वती कहाँ रहे ? क्या करते रहे ? यह कथा अभी तक में सर्वथा अज्ञात है।

स्वामी विरजानन्द के चरणों में

उत्तराखण्ड की यात्रा आरम्भ करते हुए हरिद्वार में दयानन्द सरस्वती ने पूर्णाश्रम स्वामी से दण्डी स्वामी विरजानन्द की विद्वत्ता की ख्याति सुनी थी। अपनी नर्मदा यात्रा में भी उन्होंने स्वामी विरजानन्द की विद्वता के विषय में अधिक जानकारी प्राप्त की।

स्वामी विरजानन्द का जन्म पंजाब में करतारपुर ज़िले के गङ्गापुर नामक एक ग्राम में हुआ था। पाँच वर्ष की आयु में इन्हें चेचक रोग उग्ररूप से हो गया था। इसी रोग में उनकी

दोनों आँखों की ज्योति जाती रही थी। कुछ वर्ष बाद उनके पिता का भी देहान्त हो गया।

अपने जीवन में विद्याध्ययन के लिए आपने बहुत कष्ट सहन किए। कनकल में पूर्णाश्रम स्वामी से संन्यास ग्रहण किया। यहाँ रहते हुए कुछ व्याकरण ग्रन्थों का अध्ययन कर विद्वत्पुरी काशी में गए। काशी में अध्ययन तथा अध्यापन दोनों कार्य करते रहे।

स्वामी विरजानन्द की प्राचीन ऋषिकृत ग्रन्थों में परम आस्था थी। वे इन्हीं ग्रन्थों को निर्भ्रान्त मानते थे। मनुष्यकृत ग्रन्थों की सत्यता में इन्हें विश्वास न था। अष्टाध्यायी, महाभाष्य, निरुक्त आदि ग्रन्थों में इनकी विद्वत्ता तथा अध्यापन शैली की समस्त विद्वन्मण्डली में प्रसिद्धि थी।

अनेक स्थानों में परिभ्रमण करने के अनन्तर मथुरा में इन्होंने एक पाठशाला स्थापित की। अपने विद्यार्थियों को ऋषिकृत ग्रन्थ ही पढ़ाते थे।

स्वामी विरजानन्द जी की प्रशंसा सुनकर दयानन्द सरस्वती भी मथुरा आ गए। मथुरा पहुँच कर वे रङ्गेश्वर महादेव के मन्दिर में ठहरे। वहाँसे एक दिन दण्डी स्वामी विरजानन्द की पाठशाला में गए। द्वार खटखटाया। दण्डीजी ने नवागन्तुक के लिए द्वार खोला और अपने स्वाभाविक तरीके पर सिद्धासन लगा कर बैठ गए।

दयानन्द सरस्वती ने चरणस्पर्श करके प्रणाम किया। दण्डीजी ने दयानन्द सरस्वती से आगमन का प्रयोजन जानना चाहा। उन्होंने नम्रतापूर्वक निवेदन किया—

गूरुवर ! मैं चिरकाल से ज्ञान का पिपासु हूं। भारत के सभी खण्डों में विचरता रहा हूं। जहाँ जो कुछ पाया उससे अपनी प्यास बुझाने की चेष्टा की। अभी तक तृप्ति नहीं हुई।

प्राचीन ऋषिकृत ग्रन्थों में आपकी आस्था तथा विद्वत्ता का यशोगान सुनकर आपकी शरण में आया हूं। आप कृपा-निधान हैं। मुझ पर भी कृपा कीजिये।

विरजानन्द ने कहा—दयानन्द ! यदि तुम आर्ष ग्रन्थों को पढ़ना चाहते हो और सच्चे ज्ञान को प्राप्त करना चाहते हो तो सर्वप्रथम जो कुछ अब तक तुमने पढ़ा है उसे भुला दो। जब तक मिथ्या ज्ञान का आवरण तुम्हारी बुद्धि पर पड़ा है तुम सत्यज्ञान प्राप्त नहीं कर सकते। तुम्हारा तर्क भी उसी मिथ्या ज्ञान पर आश्रित रहेगा। तुम आर्ष ग्रन्थों को शीघ्र न समझ सकोगे। सभी मनुष्यकृत ग्रन्थ जो तुम्हारे पास हैं उन्हें यमुना नदी में बहा दो।

इसके अतिरिक्त एक बात का और विचार कर लो। तुम संन्यासी हो, तुम्हारा कोई ठिकाना नहीं। जिसका कोई रहने का स्थान नहीं, भोजन की नियमित व्यवस्था नहीं, वह नित्य समयानुसार पाठशाला में पढ़ने के लिए नहीं आ सकता। जब तक तुम अपने निवास और भोजन की व्यवस्था नहीं कर लेते, मैं तुम्हें अपने पास विद्यार्थी के रूप में आने की अनुमति नहीं दे सकता।

प्रज्ञाचक्षु विरजानन्द सिद्धासन में बैठे थे। शरीर की सम्पूर्ण अस्थियाँ दीख रही थी। उन पर मांस का आवरणमात्र था। उस अस्थिपञ्जर में एक दिव्यज्योति थी। वाणी में विशेष आकर्षण था। लक्ष्मी का आडम्बर न था। सरस्वती का प्रकाश था।

दयानन्द भी सरस्वती का उपासक था। उस दिव्यमूर्ति को देखकर प्रभावित हुआ। गुरु के आदेशानुसार अपने पास संग्रहीत सभी मनुष्यकृत ग्रन्थों को यमुना में बहा दिया। निवास तथा भोजन की व्यवस्था के लिए पूछताछ करने के लिए चल

दिए। मथुरा में दयानन्द नवागन्तुक था। उसका कोई परिचित न था। उसके हृदय में ईश्वर का विश्वास था। धैर्य था। किसी प्रकार की चिन्ता तथा निराशा न थी।

मथुरा में इन दिनों एक गुजराती ब्राह्मण अमरलाल जोशी रहते थे। वे औदीच्य ब्राह्मण थे। प्रभु की इन पर कृपा थी। उदारचित्त व्यक्ति थे। दयानन्द सरस्वती का इनसे परिचय हो गया। परस्पर वार्तालाप के अनन्तर इन्होंने दयानन्द सरस्वती के भोजन के प्रबन्ध का उत्तरदायित्व अपने ऊपर ले लिया। दयानन्द सरस्वती इसके लिए आजीवन उनका उपकार मानते रहे। अमरलाल जोशी का नाम भी दयानन्द सरस्वती के साथ सदा के लिए अमर हो गया। भोजन प्रबन्ध के साथ दयानन्द सरस्वती के निवास का प्रबन्ध भी विश्राम घाट पर लक्ष्मी-नारायण के मन्दिर में नीचे की मंजिल में एक कोठरी में हो गया।

भोजन और निवास का प्रबन्ध कर दयानन्द सरस्वती गुरु के द्वार पर गए। उनके चरणों में नतमस्तक होकर अन्य शिष्यों के साथ अष्टाध्यायी तथा महाभाष्य का अध्ययन प्रारम्भ किया। यद्यपि गुरु नेत्रहीन थे, पर उनकी प्रतिभा अपूर्व थी। प्राचीन ऋषिकृत ग्रन्थों के वे विश्वकोष थे। सब ग्रन्थ कण्ठाग्र थे। आद्योपान्त ग्रन्थ का पाठ करते गए। उसके रहस्य को समझाते गए। शिष्यों की शंकाओं का संतोषजनक समाधान करते गए। उनकी वाणी में सरस्वती का साक्षात् तरङ्गित नृत्य देख कर शिष्य आश्चर्यचकित थे। ज्ञान का पिपासु दयानन्द विरजानन्द की वाणी से बहती हुई सरस्वती के शुद्ध सलिल से नित्य प्रतिदिन अपनी पिपासा को शान्त करता। पाठशाला के समय के अतिरिक्त समय में यमुना तट पर नियमानुसार समाधिस्थ हो प्रभु की उपासना करता। तीन वर्ष तक निरन्तर

मथुरा में रहकर गुरु से व्याकरण निरुक्त आदि ग्रन्थों का अध्ययन किया। प्राचीन शास्त्रों के गूढ़ रहस्य को समझा। वैदिक ज्ञान के द्वारा अन्तर्ज्योति को प्राप्त किया।

विद्या समाप्ति पर विदाई मांगी। प्राचीन समय से यह प्रथा चली आई है कि शिष्य गुरु से विद्या ग्रहण करने के अनन्तर विदाई के समय श्रद्धा सामर्थ्य के अनुसार उनके चरणों में दक्षिणा अर्पित करते हैं। दयानन्द के पास तो दण्ड, कमण्डलु और लंगोट के अतिरिक्त कुछ न था। वह क्या दक्षिणा देता ?

जनश्रुति के अनुसार दयानन्द विदाई के समय गुरु के पास आध सेर लौंग लेकर गए। गुरु को लौंग बहुत प्रिय थे। वे नित्य इसका सेवन करते थे। श्रद्धापूर्ण हृदय से गुरु से निवेदन किया--गुरुवर ! मैं अब तक मिथ्या ज्ञान से अंधकार में था। आपने सत्यज्ञान देकर मेरा वह अंधकार दूर किया। आज मैं अपने आपको कृत-कृत्य अनुभव करता हूं। आपके उपकारों को मैं कभी भूल नहीं सकता। आपके ऋण को मैं कभी चुका नहीं सकता। मेरी यह तुच्छ भेंट (आध सेर लौंग) स्वीकार करने की कृपा करें। मुझे आशीर्वाद दें जिससे मैं आपके द्वारा प्राप्त ज्ञान के अनुसार आचरण कर अपने जीवन को सफल बनाऊं।

त्यागमूर्ति दण्डी विरजानन्द ने परमप्रिय शिष्य दयानन्द को आदेश दिया—हे दयानन्द ! मैं तुम्हारे जैसे शिष्य का प्राप्त होना अपना गौरव अनुभव करता हूं। तुम्हारे मन में सच्ची ज्ञान-पिपासा थी। तुमने जिस निमित्त से पैतृक वैभव को त्यागा, विषय वासनाओं पर पूर्ण विजय प्राप्त कर ब्रह्मचर्यपूर्वक जीवन व्यतीत किया, सभी प्रकार के कष्टों को सहन करते हुए धैर्य का अवलम्बन करते हुए हिमाच्छादित पर्वतों और हिंसक जंतुओं से पूर्ण कण्टकाकीर्ण वनों का अवगाहन किया, आज वह तुम्हारा उद्देश्य पूर्ण हुआ। तुम्हारी तपस्या सफल हूई। इस

विदाई के समय मुझे संतोष है कि एक शिष्य मुझे ऐसा मिला जिस पर मैं भरोसा कर सकता हूं।

तुमने ये लौंग मेरे आगे दक्षिणा के तौर पर रखे हैं। यह तुम्हारी विनम्र भावना और श्रद्धा का परिचायक है। परन्तु मैं तुम से कुछ और ही दक्षिणा चाहता हूं। वह दक्षिणा बहुमूल्य है। प्रत्येक शिष्य उसे नहीं दे सकता। वैभवशाली शिष्य में ही उस दक्षिणा को देने की सामर्थ्य है।

दयानन्द शान्तचित्त गुरुचरणों में नतमस्तक होकर बोले—गुरुवर ! जो कुछ मेरे पास है वह सब आपका है। मेरा अपना कुछ नहीं। यह शरीर आपके प्रति समर्पित है। जो कुछ कार्य आप इससे लेना चाहें ले सकते हैं। यही मेरी समृद्धि है। यही वैभव है। मैं आपको क्या दे सकता हूं। आप आज्ञा प्रदान करें। मैं आपकी आज्ञा का यथाशक्ति पालन करूंगा।

गुरु विरजानन्द ने शिष्य को आशीर्वाद देते हुए निवेदन किया—हे दयानन्द ! मैं तुमसे एक ही दक्षिणा चाहता हूं, ध्यान से सुनो और वह दक्षिणा देने का संकल्प करो। मैंने आज तक जिन ऋषिकृत ग्रन्थों के आधार पर तुम्हें सत्यज्ञान दिया है उसका प्रचार समस्त जनसमुदाय में करो। जो प्रकाश तुमने इन ऋषि वचनों द्वारा प्राप्त किया है उसका प्रकाश संसार में फैलाओ। भ्रान्तिपूर्ण ग्रन्थों का अध्ययन कर अंधकार में भटकते हुए प्राणियों के अन्धकार को दूर करो। ज्ञान के पिपासु आर्तजनों को सत्यज्ञान देकर उनका कल्याण करो। यही मेरा आदेश है। यही मेरी दक्षिणा है। ईश्वर तुम्हें शक्ति दे। तुम अपने उद्देश्य में सफलता प्राप्त करो।

दयानन्द सरस्वती ने गुरू के समक्ष संकल्प किया कि वे उनकी आज्ञा का यथावत् पालन करेंगे। इसके अनुसार उनके आशीर्वाद प्राप्त कर मथुरा से नवजीवन में प्रवेशकर चल पड़े।

२. कर्म क्षेत्र

खंडन-मंडन—पाखंड-खंडिनी-पताका—मूर्ति-पूजा का विरोध—एकेश्वरवाद की स्थापना—शास्त्रार्थ—आक्रमण और क्षमा—गप्पाष्टक (मिथ्यावाद) और सत्याष्टक—काशी का सुप्रसिद्ध शास्त्रार्थ—हत्या का प्रयत्न: 'कैद कराने नहीं, कैद से छुड़ाने आया हूं'—बंग-दर्शन : ब्रह्म समाज से परिचय और केशवचन्द्र सेन द्वारा हिन्दी में बोलने की प्रेरणा।

मथुरा से प्रस्थान कर दयानन्द सरस्वती आगरा आए। यह सं० १९२० वि० की घटना है। यहाँ वे यमुना के तीर पर गल्लामल रूपचन्द अग्रवाल के उद्यान में ठहरे। दण्डी स्वामी विरजानन्द से तीन वर्ष तक अध्ययन करने के बाद अब उसका मनन और निदिध्यासन करने की आवश्यकता थी। प्रारम्भ में दयानन्द सरस्वती के प्रचार के समय विचारधारा वह नहीं प्रतीत होती, जो बाद में बनी। आगरा में रहते हुए दयानन्द सरस्वती योग क्रियाओं का अभ्यास करते हुए नित्य नियमानुसार समाधिस्थ रहते थे। कुछ समय गीता की कथा करते। भक्तजनों को गायत्री का जाप तथा संन्ध्योपासना का उपदेश देते रहते थे। संध्या की तीस हज़ार पुस्तकें प्रकाशित करवाकर उनका वितरण करवाया।

आगरा में श्री सुन्दरलाल इनके विशेष भक्तों में से थे। सुन्दरलाल जी दयानन्द सरस्वती से अष्टाध्यायी तथा गीता का अध्ययन करते थे।

यद्यपि दयानन्द सरस्वती इन दिनों मूर्तिपूजा नहीं करते थे, इससे बाल्यकाल से ही विरक्त हो चुके थे, तो भी उनका झुकाव शैवमत की ओर था। भागवत् और चक्रांकित मत के वे कट्टर विरोधी थे।

दो वर्ष तक आगरा निवास करके स्वामीजी ग्वालियर पधारे। ग्वालियर में वहाँके महाराज ने इन दिनों भागवत सप्ताह का आयोजन किया था। दूर-दूर से पण्डितों को आमन्त्रित किया था। दयानन्द सरस्वती से भी इस विषय में सम्मति मांगी। स्वामीजी ने कहलाया कि "इस प्रकार के कार्य के फल कष्ट क्लेश से भिन्न कुछ नहीं हुआ करते। विश्वास न हो तो देख लो।"

इन शब्दों के साथ उन्होंने महाराज के इस समारोह में उपस्थित होने की भी स्वीकृति नहीं दी, साथ ही परामर्श दिया कि आप भागवत पाठ के स्थान पर गायत्री पुरश्चरण कीजिये।

भागवत सप्ताह की तो तैयारी हो चुकी थी। वह समारोह के साथ मनाया गया। दयानन्द सरस्वती ने भी भागवत के खण्डन पर अपनी व्याख्यानमाला शुरू कर दी।

प्रभु की लीला विचित्र है। कोई कह नहीं सकता कि वह क्या चाहता है। भागवत सप्ताह के तुरन्त बाद महारानी का पाँच मास का गर्भ गिर गया। उसी मास उस नगर में विषूचिका रोग (हैज़े) का उपद्रव शुरू हो गया। जिस उद्देश्य से पाठ रखाया गया था, उसके विपरीत परिणाम दृष्टिगोचर हुए।

ग्वालियर से प्रस्थान कर करोली होते हुए दयानन्द सरस्वती सं० १९२२ वि० में जयपुर पधारे। यहाँ आपने रामकुमार और नन्दराम मोदी की वाटिका में निवास किया। यहां निवास करते हुए भक्तजनों की जीव-ईश्वर के स्वरूप के विषय में शंकाओं का समाधान करते रहे। गायत्री जाप के लिए सबको

प्रेरणा देते रहे। कभी-कभी पण्डितों के साथ शास्त्र चर्चा भी होती रही।

इन दिनों जयपुर में शैव और वैष्णव सम्प्रदाय के पण्डितों का संघर्ष चल रहा था। जयपुर के महाराज का झुकाव शैव सम्प्रदाय की ओर था। दयानन्द सरस्वती यद्यपि मूर्तिपूजा को हेय समझते थे, उनका भी झुकाव शैवमत की ओर अधिक था।

वैष्णवों के प्रमुख पण्डित हरिश्चन्द्रजी तथा दयानन्द सरस्वती का शास्त्रार्थ हुआ। दयानन्द सरस्वती ने वैष्णव मत का खण्डन किया। चक्रांकितों में प्रचलित दुराचार लीला किस प्रकार जनसमुदाय को अधोगति की ओर ले जा रही है इसपर विस्तार से प्रकाश डाला। इस विषय में उन्होंने स्वयं आतम-चरित्र में लिखा है—"वहाँ मैंने प्रथम वैष्णव मत का खण्डन करके शैवमत की स्थापना की। जयपुर के महाराज रामसिंह ने भी शैवमत को ग्रहण किया। इससे शैवमत का फैलाव होकर सहस्रों रुद्राक्षमालाएं मैंने अपने हाथ से बाँटीं। वहां शैवमत इतना पक्का हुआ कि हाथी घोड़े आदि के गलों में भी रुद्राक्ष पड़ गईं।"

जयपुर से दयानन्द सरस्वती पुष्कर और पुष्कर से अजमेर पधारे। पुष्कर और अजमेर में भी वैष्णव मत का खण्डन किया। यहीं से उन्होंने शैवमत का खण्डन प्रारम्भ किया क्योंकि वे समझते थे कि सभी मूर्तिपूजक धर्म मनुष्य जाति को अध:पतन की ओर ले जाने वाले है। एक ईश्वर निराकार है—उसकी मूर्ति बनाकर पूजना अपने आपको अन्धकार में रखना था। अजमेर में स्वामीजी का मुसलमान मौलवी और ईसाई पादरियों से भी शास्त्रार्थ हुआ। शास्त्रार्थ के विषय ईश्वर, जीव सृष्टि क्रम तथा पुनर्जन्म आदि थे।

अजमेर में दयानन्द सरस्वती का भारत के तत्कालीन गवर्नर-जनरल के एजेण्ट कर्नल ब्रुक से गोरक्षा विषय में वार्तालाप हुआ। स्वामीजी ने उन्हें मनुष्य समाज के लिए गाय की उपयोगिता का प्रतिपादन करते हुए गोहत्या को कानून बना कर बन्द करने की सलाह दी। कर्नल ब्रुक उन के वार्तालाप से प्रभावित हुए। उन्होंने स्वामीजी को एक पत्र गवर्नर जनरल के नाम दिया, जिस से वे गवर्नर जनरल से मिलकर उनके समक्ष अपने विचार रख सकें।

अजमेर से किशनगढ़, जयपुर, आगरा होते हुए पुनः मथुरा पहुँचे। मथुरा में गुरु विरजानन्द जी दण्डी की सेवा में उपस्थित हुए। उन्हें दो अशरफी तथा एक मलमल का थान भेंट किया। अपनी लिखी एक लघु पुस्तिका, जिस में वैष्णव मत का खण्डन किया गया था, गुरुजी को दिखाई। गुरु जी से मिलने पर अपनी शंकाओं का निवारण कर मेरठ होते हुए हरिद्वार पहुँचे।

पाखण्ड-खण्डिनी-पताका

फाल्गुन शुल्क प्रतिपदा सं० १९२३ वि० तदनुसार १२ मार्च सन् १८६६ को दयानन्द सरस्वती हरिद्वार आए। यहाँ एक मास बाद हरिद्वार का प्रसिद्ध कुम्भ का मेला होना था। इस अवसर पर हरिद्वार में भारत के सभी प्रान्तों से साधु महात्मा मेले से एक दो मास पूर्व ही आना शुरू कर देते हैं। मठाधीश मठों में अपने-अपने मतों का प्रचार करते हैं। कथा-कीर्तन होता है। अपने-अपने वाक् चातुर्य और वैभव दोनों का प्रदर्शन करते हैं। भक्तजन लाखों की संख्या में दर्शन तथा पापविमोचन के लिए आते हैं। सेठ साहूकार जगह जगह भोजन के भण्डारे खोल देते हैं। इस प्रकार इस अवसर पर सभी शास्त्रों के प्रवचन में पटु पण्डित साधु सन्त अपने वाग् विलास द्वारा तथा अर्थपति खुले हाथ दान द्वारा यशोलाभ करते हैं। भक्तजन सन्तों

के दर्शन और उपदेशों के श्रवण द्वारा अपने अशान्त मन को कुछ क्षणों के लिए परम शान्ति में अनुभव करते हैं। चैत्र वैशाख के महीनों में गङ्गा के स्वच्छ और शीतल सलिल में स्नान करने के बाद सभी समागत जन विकारमय विचार तरङ्गों से अल्प-कालिक मुक्ति का अनुभव करते हैं।

इस अवसर पर हरिद्वार में वैदिक धर्म का प्रचार और आधुनिक मत-मतान्तरों में प्रचलित पाखण्डों का खण्डन करने के लिए दयानन्द सरस्वती ने हरिद्वार से तीन मील परे ऋषि-केश के मार्ग पर सप्त सरोवर नामक सुन्दर स्थान पर आठ-दस छप्परों की कुटियाँ डलवाकर अपना डेरा लगाया। यहीं एक पताका गाढ़ दी, जिस पर "पाखण्ड-खण्डिनी-पताका" ये शब्द अभिलिखित कर दिये।

छः फीट नौ इंच शरीर की ऊँचाई, लालिमा की छवि के साथ गौर वर्ण, तेजस्वी मुखमण्डल, उन्नतवक्ष, संगठित माँस-पेशियाँ गेरु वस्त्र धारण किये इस बाल ब्रह्मचारी साधु का आकर्षक स्वरूप देखकर सभी दर्शक जन उनके चरणों में नत मस्तक हो जाते थे। वेद मन्त्रों का उच्च स्वर से गान करते हुए एक ईश्वर का प्रतिपादन, उसके निराकार सच्चिदानन्द स्वरूप का वर्णन, मूर्तिपूजन का खण्डन सुनकर सभी श्रोतागण मुग्ध हो जाते थे। इस साधु की वाणी में अपूर्व आकर्षण शक्ति थी।

गुरु विरजानन्द ने जिस सरस्वती के स्रोत की यहाँ स्थापना की थी वह आज इस साधु की ओजस्विनी वाणी की उत्तुङ्ग तरङ्गों के साथ स्वच्छ शीतल ज्ञान रूपी जल से सभी भक्त जनों की बुद्धियों में चिरकाल से जमे हुए मिथ्याज्ञान रूपी मल को धोता हुआ प्रवाहित हो रहा था।

मूर्तिपूजा के खण्डन के साथ दयानन्द सरस्वती ने मृतक-श्राद्ध, अवतारवाद, जन्म से वर्णव्यवस्था आदि को वेदविरुद्ध

सिद्ध किया। पुराणों को कपोलकल्पित प्रतिपादित किया। समागत भक्तजनों को समझाया कि शुभ कर्मों से ही मनुष्य अभ्युदय और मोक्ष को प्राप्त कर सकता है। पापाचरण करते हुए पर्वों के अवसर पर गङ्गा स्नानादि से पाप का विमोचन नहीं हो सकता। इस प्रकार स्नान से मोक्ष प्राप्ति की कल्पना सर्वथा अज्ञानमूलक है।

इन दिनों दादूपन्थी स्वामी महानन्द हरिद्वार में निवास करते थे। उन्होंने जीवन में सर्वप्रथम दयानन्द सरस्वती के पास वेदों के दर्शन किए। वे संस्कृत के अच्छे विद्वान् थे। स्वामीजी के उपदेशों से उनके भक्त बनकर उन के सिद्धान्तों के प्रचारक बन गए। इनके नाम से आर्यसमाज देहरादून में "महानन्द पुस्तकालय" की स्थापना की गई।

काशी के प्रसिद्ध विद्वान् स्वामी विशुद्धानन्दजी के साथ भी यहाँ दयानन्द सरस्वती का वर्णाश्रम व्यवस्था के सम्बन्ध में एक वेद मन्त्र को लेकर कुछ वार्तालाप हुआ। स्वामी विशुद्धानन्द जी ने वेदमन्त्र द्वारा ईश्वरद्वारा निर्धारित जन्ममूलक वर्ण-व्यवस्था को सिद्ध करना चाहा। स्वामीजी ने उसी वेदमन्त्र से वर्णव्यवस्था गुणकर्मानुसार सिद्ध की।

हरिद्वार में कुम्भ के मेले के समय साधुओं के वैभव और आडम्बर के साथ विलासमय जीवन को देखकर दयानन्द सरस्वती के मन में उसके प्रति वैराग्य की भावना उत्पन्न हुई, यद्यपि उनके पास कुछ न था, पर जो वस्त्र, पुस्तकें तथा थोड़ा बहुत धन था उसे भी त्यागने की भावना उत्पन्न हुई। उसी समय सब कुछ त्याग दिया। महाभाष्य की पुस्तक, पैंतीस रुपये और एक मलमल का थान गुरु विरजानन्द जी को मथुरा भेजा। इसके अतिरिक्त जो कुछ था वह वहीं बांटकर कौपीनधारी बन गए। कुछ दिन मौन धारण किया, परन्तु चारों ओर पाखण्ड

का प्रचार देखकर अधिक समय मौन का अवलम्बन न कर सके। पाखण्ड का खण्डन करते हुए सत्य का प्रचार करते हुए दयानन्द सरस्वती सप्त सरोवर से ऋषिकेश की ओर चल पड़े। पांच छः दिन ऋषिकेश रहकर पुनः हरिद्वार कनखल होते हुए गङ्गा तीर पर प्रचार यात्रा के लिए प्रस्थान किया।

दयानन्द सरस्वती के रूप में अब परिवर्तन हो चुका था। अब वे केवल कौपीन धारण किए हुए, दण्ड हाथ में लिए सारे शरीर पर भस्म रमाए हुए थे। इस नग्न देह की छटा भी देखने योग्य थी। शरीर का प्रत्येक अङ्ग एक आदर्श रचना को प्रस्तुत करता था। बाल्यकाल से ब्रह्मचर्य की साधना थी। योगद्वारा आध्यात्मिक परम पद प्राप्त किया था। तेजस्विता, धैर्य और शान्ति का अपूर्व सम्मिश्रण था। हरिद्वार के कुम्भ के मेले पर निर्भय होकर पाखण्ड खण्डन और वैदिक धर्म के सिद्धान्तों के प्रतिपादन में प्रभावशाली व्याख्यानों को सुनकर भारत के सभी प्रान्तों की जनता में दयानन्द सरस्वती की ख्याति फैल चुकी थी।

हरिद्वार से गङ्गा तीर पर प्रचार यात्रा में जहाँ भी जाते, वहाँकी जनता बहुत अधिक संख्या में इस योगी का दर्शन करने और प्रवचन सुनने के लिए एकत्रित हो जाती।

हरिद्वार और कनखल से दयानन्द सरस्वती लण्ढोरा, मुहम्मदपुर, परीक्षितगढ़, कर्णवास होते हुए फर्रुखाबाद आए। यहाँ भक्तजनों का शङ्का समाधान करते हुए उन्हें सन्ध्या व गायत्री मन्त्र का जाप करने के लिए प्रेरित करते रहे।

फर्रुखाबाद से अनूपशहर आए। यहाँ भी वे सन्ध्या गायत्री जाप और अग्निहोत्र आदि कर्म नित्य नियमानुसार करने के के लिए जनसमुदाय को उपदेश देते रहे।

अनूपशहर से चासी आए। यहाँ नन्दराम नामक ब्राह्मण

चक्राङ्कित सम्प्रदाय का प्रचार करता था। दयानन्द सरस्वती के आगमन का समाचार सुनकर वहांके निवासी कुछ ब्राह्मण और जाट नन्दराम को लेकर स्वामीजी के पास गए, पर नन्दराम उनसे शास्त्रचर्चा न कर सका। चुपचाप गङ्गा पार अहार गांव चला गया। उसका पलायन देखकर वहाँकी जनता का चक्राङ्कित मत में दीक्षित होना बन्द हो गया।

चासी से दयानन्द सरस्वती थारपुर और रामघाट होते हुए पुनः कर्णवास आए। रामघाट में टीकाराम नामक ब्राह्मण का स्वामीजी के साथ शास्त्रचर्चा करने पर मूर्तिपूजा से विश्वास उठ गया। उसने अपनी देवमूर्तियाँ गङ्गा में प्रवाहित कर दीं।

कर्णवास में दयानन्द सरस्वती मूर्तिपूजा के खण्डन के साथ कण्ठी तिलक आदि का भी खण्डन करते रहे। आश्विन के मेले में यहां गंगा स्नान के लिए आस-पास के गांवों के लोग एकत्रित होते हैं। मेले के अवसर पर स्वामीजी के प्रभावशाली भाषणों से कट्टर-पन्थी जनों में आंतक फैल गया। उन्होंने अनूप शहर से एक संस्कृतज्ञ पण्डित अम्बादत्त जी पर्वती को बुलवाया। अम्बादत्त जी पर्वती का मूर्तिपूजा विषय पर दयानन्द सरस्वती के साथ शास्त्रार्थ हुआ। अन्त में पर्वतीजी ने दयानन्द सरस्वती के कथन की सत्यता स्वीकार करते हुए मूर्तिपूजा को वेद विरुद्ध माना और इस बात की जनता में घोषणा की।

कर्णवास से प्रस्थान कर अहार, चासी, जहांगीराबाद और बेलोन गए। इन स्थानों पर जनता को नित्य नियमानुसार सध्या करने, गायत्री मन्त्र और ओम् का जप करने का उपदेश देते रहे। मूर्तिपूजा को वेदविरुद्ध प्रतिपादित करते रहे।

बेलोन से पुनः कर्णवास पधारे। इस बार वहाँ की जनता ने अनूपशहर से पं० हीरावल्लभ को दयानन्द सरस्वती के

साथ मूर्तिपूजा विषय पर शास्त्राथ करने के लिए बुलाया। पं० हीरावल्लभ पूरी तैयारी के साथ आए। अपने साथ देव-मूर्तियों को एक सिंहासन पर सजाकर लाए। शास्त्रार्थ के प्रारम्भ में उन्होंने घोषणा की मैं दयानन्द सरस्वती के हाथ से इन मूर्तियों को भोग लगवाकर ही उठूंगा।

छः दिन तक शास्त्रार्थ चलता रहा। दोनों ओर से शास्त्र-प्रमाणों द्वारा मूर्तिपूजा का मण्डन और खण्डन होता रहा। सहस्रों की संख्या में जनता उत्सुकता के साथ दोनों ओर के युक्ति-प्रमाण सुनती रही। दयानन्द सरस्वती के तेजस्वी मुख मण्डल और ओजस्विनी वाणी का चमत्कार देखकर सभी मुग्ध थे। स्वयं पं० हीरावल्लभ भी उनके धाराप्रवाह संस्कृत में भाषण, तर्कशैली और वेदवेदाङ्गों की कण्ठाग्र उपस्थिति को देखकर आश्चर्यचकित थे। अन्त में पं० हीरावल्लभ ने दो सहस्र उपस्थितजनों के मध्य अपनी पराजय स्वीकार की। दयानन्द सरस्वती को करबद्ध प्रणाम किया। सजी हुई देव-मूर्तियों को गङ्गा में प्रवाहित किया।

दयानन्द सरस्वती भी पं० हीरावल्लभके धैर्य और न्याय-प्रियता को देखकर बहुत प्रसन्न हुए। उनकी मुक्तकण्ठ से प्रशंसा की।

कर्णवास तथा पड़ौस के गाँवों में इस शास्त्रार्थ की चर्चा तेजी के साथ फैल गई। दयानन्द सरस्वती के प्रति जनसाधारण की श्रद्धा बहुत बढ़ गई। स्वामीजी ने श्रद्धालु भक्तों को यज्ञोपवीत धारण कराए। संध्या व गायत्री मन्त्र की दीक्षा दी। निराकार एक ईश्वर की उपासना का उपदेश दिया।

यहां एक नवमुसलिम ने दयानन्द सरस्वती से पूछा कि महाराज ! क्या हम भी शुद्ध होकर आपके धर्मानुयायी बन

सकते हैं ? स्वामीजी ने कहा—धर्मानुसार आचरण करोगे तो अवश्य शुद्ध हो सकते हो।

माघ कृष्ण १५ सं० १९२४ वि० सूर्यग्रहण के अवसर पर गङ्गा के स्नान के निमित्त आए हुए जन समुदाय को बताया कि यह ग्रहण तो एक प्राकृतिक घटना है। इस अवसर पर ग्रहण के अनन्तर ही स्नान करना तथा ग्रहणकाल में भूखा रहना आदि सब मिथ्याजाल है।

कर्णवास से सं० १९२५ वि० चैत्र मास में दयानन्द सरस्वती एटा जिले के "सोरों" नगर में पहुँचे। यह भी उस समय के पौराणिकों का गढ़ था। चक्रांकित सम्प्रदाय का अधिक प्रचार था। उन दिनों सारे भारत में दो स्थानों पर ही वाराह के मन्दिर थे। एक पुष्कर (अजमेर) में दूसरा 'सोरों" में। इस मन्दिर के दर्शन के लिए यहाँ पास-पड़ौस के भक्तों का आना-जाना बना रहता था। यहां दस हजार ब्राह्मण रहते थे। ये सब चक्रांकितों के जाल में फंसे हुए मूर्तिपूजा में श्रद्धा रखने वाले थे।

दयानन्द सरस्वती सोरों के पास ही नगर के बाहर गढ़िया घाट में ठहरे। सोरों के प्रतिष्ठित नागरिक गोसाईं बलदेव गिरि ने स्वामीजी की ख्याति सुन रखी थी। वे अपने साथ कुछ पण्डितों को लेकर स्वामीजी के दर्शन के निमित्त उनके पास गए। परस्पर शास्त्र-चर्चा हुई। गोसाईं बलदेव गिरि स्वामीजी के विचारों से बहुत प्रभावित हुए। उनके भक्त बन गए। प्रतिदिन भक्तिभाव से अपने स्थान से उनके लिए भोजन आदि भेजने लगे। कुछ दिनों के बाद उन्हें सोरों नगर के अंदर अपने निवास स्थान अम्बगढ़ में ले आए। वहीं उनके रहने का प्रबन्ध किया।

स्वामीजी की काया और वाणी दोनों में अद्‌भुत

आकर्षण था। उत्सुक दर्शनार्थियों की भीड़ उनके पास आने लगी। चक्राङ्कित सम्प्रदाय की प्रथाओं और मूर्तिपूजा के खंडन में स्वामीजी की अकाट्य युक्तियों के साथ ओजस्वी भाषण को सुनकर जनता मुग्ध होने लगी।

सोरों के पास बदरिया नामक एक ग्राम है। यहाँ अङ्गद शास्त्री एक विद्वान् पण्डित रहते थे। इन्होंने स्वामी विरजानंद जी से भी कुछ समय व्याकरण का अध्ययन किया था। शास्त्रों के अच्छे ज्ञाता थे। एक दिन वे दयानन्द सरस्वती से मिलने आए। स्वामीजी के साथ मूर्तिपूजा के विषय में शास्त्र-चर्चा चली। भागवत के विषय में भी विचार-विमर्श हुआ। अङ्गद शास्त्री स्वामीजी के शास्त्रीय प्रवचन और युक्तिवाद से इतने प्रभावित हुए कि उन्होंने अपनी देवमूर्तियां गङ्गा में प्रवाहित कर दीं। भागवत की कथा न करने की प्रतिज्ञा करली।

सं० १९२५ वि० ज्येष्ठ मास में दयानन्द सरस्वती सोरों से पुनः कर्णवास पधारे। महाराज के आगमन का समाचार सुन कर भक्तजन उनके निवास स्थान पर एकत्रित होने लगे। स्वामीजी पहले की तरह ओजस्वी नाद करते हुए वेदविरुद्ध प्रथाओं का खण्डन करने लगे। कर्णवास में ज्येष्ठ शुक्ला दस को पड़ौस के गांवों से सहस्रों की संख्या में नरनारी स्नान करने आते हैं। इस अवसर पर पासके एक गांव बरौली से राव कर्ण सिंह भी कर्णवास आए। ये जाति के, बढ़ गूजर क्षत्रिय थे। वृन्दावन में चक्राङ्कित सम्प्रदाय के धर्मगुरु रङ्गाचार्य के शिष्य थे। चक्राङ्कितों का तिलक छाप लगाते थे।

एक दिन दयानन्द सरस्वती भक्तजनों को वेदोपदेश दे रहे थे। उनकी शङ्काओं का समाधान कर रहे थे। राव कर्णसिंह भी उनके उपदेश स्थल पर आए। अपने साथ तलवार हाथ में लिए अनुचरों को भी ले आए। राव कर्णसिंह अभिमानी तथा

उग्र स्वभाव के व्यक्ति थे। दयानन्द सरस्वती चक्राङ्कित सम्प्रदाय का खण्डन करते थे। राव कर्णसिंह इस सम्प्रदाय के अंधभक्त थे।

दयानन्द सरस्वती ने आते ही इन्हें आदरपूर्वक बैठने के लिए कहा, पर राव कर्णसिंह तो किसी और ही उद्देश्य से आये थे। आते ही उद्दण्डता के साथ बोले—हम तो वहीं बैठेंगे जहां आप बैठे हैं। स्वामीजी जिस शीतल पाटी पर बैठे थे उन्होंने उसका आधा भाग खाली कर दिया। राव कर्णसिंह उनके साथ शीतल पाटी पर बैठ गए। बैठने के अनन्तर स्वामीजी से प्रश्न किया – क्या आप गङ्गाजी को मानते हैं ?

स्वामीजी—गङ्गा जितनी है उतनी ही मानते हैं।

कर्णसिंह—गङ्गा कितनी है ?

स्वामीजी—हमारे लिए तो गङ्गा कमण्डलुभर ही है।

इस पर रावकर्णसिंह ने गङ्गास्तोत्र के कुछ श्लोक पढ़े।

स्वामीजी—यह तो तुम्हारी गप्प है। गङ्गाजल केवल स्नान व पीने का पानी है। इसके स्नान व पान से मोक्ष नहीं होता। मोक्ष तो मनुष्य के अपने किये कर्मों द्वारा ही प्राप्त होता है।

कर्णसिंह—हमारे यहां रामलीला होती है। चलिए तो हम आपको रामलीला दिखाएँ।

स्वामीजी—क्षत्रिय पुरुषों को महापुरुषों के स्वांग बनाकर नचाना कहांतक शोभा देता है ? यदि कोई तुम्हारे पूर्व पुरुषों का इस प्रकार स्वांग बनाकर नाच कराए तो कितना बुरा लगेगा ? (कर्णसिंह के ललाट पर चक्राङ्कितों का तिलक देख कर) तुम क्षत्रिय हो। तुमने अपने ललाट पर यह भिखारियों का तिलक क्यों लगाया है ? भुजाओं को दग्धकर यह छाप किस निमित्त बनाया है।

कर्णसिंह—यह हमारा धार्मिक चिह्न है। इस पर कोई

आक्षेप किया तो आपको उसका बुरा परिणाम भोगना पड़ेगा। हमारे गुरु स्वामी रङ्गाचार्य के साथ आप बात भी न कर सकेंगे। आप उनके सामने कीड़े के समान हैं। आप जैसे तो उनकी जूतियां उठाते हैं। उनके हम शिष्य हैं।

स्वामीजी (मुस्कराते हुए)—तुम अपने गुरु को शास्त्रार्थ के लिए यहां बुलवा लो। यदि वे नहीं आ सकते तो मैं वहां चल कर शास्त्रार्थ करने को तैयार हूँ।

इसपर राव कर्णसिंह तो क्रोध के आवेश में बड़बड़ाता रहा। दयानन्द सरस्वती पद्मासन लगाए धीरतापूर्वक निर्भय चित्त से चक्राङ्कित सम्प्रदाय के मत का खण्डन करते रहे। राव कर्णसिंह इसे सहन न कर सका। उसने तलवार म्यान से निकाली। स्वामीजी ने शांत प्रहसन के साथ उसकी तलवार छीनकर उसके दो टुकड़े कर दिये।

राव कर्णसिंह का एक पहलवान अनुचर आगे बढ़कर दयानन्द सरस्वती पर हाथ चलाने लगा, पर उस निर्भय वीर दयानन्द ने एक झटके से पहलवान को दूर फेंक दिया। सिंह गर्जन के साथ राव कर्णसिंह से बोले—

धूर्त ! यदि तुमने लड़ना है तो किसी वीर क्षत्रिय राजपूत के साथ जाकर लड़ो और शास्त्रार्थ करना है तो अपने गुरु रङ्गाचार्य को वृन्दावन से बुलाकर सभास्थल पर खड़ा कर दो।

इतने में श्रोताजनों में से ठाकुर किशनसिंह आदि राजपूत लट्ठ लेकर खड़े हो गए। कायर कर्णसिंह अनुचरों समेत चला गया।

कुछ लोगों ने दयानन्द सरस्वती से इस घटना की थाने में सूचना देने का आग्रह किया, पर उस दयालु संन्यासी ने उत्तर दिया कि यदि वह अपने क्षत्रियत्व को पूरा न कर सका तो

हम अपने संन्यास धर्म से क्यों पतित हो जाएं ? क्षमा और संतोष हमारा परम धर्म है।

शरत् पूर्णिमा के अवसर पर राव कर्णसिंह फिर गङ्गास्नान के निमित्त कर्णवास आए। दयानन्द सरस्वती कर्णवास में रहते हुए वेदविरुद्ध मतों और पाखण्डपूर्ण प्रथाओं का खण्डन कर रहे थे। राव कर्णसिंह के मन में अपने पिछले अपमान का बदला लेने की भावना उठी। उसने वैरागियों को उकसाया और कहा कि जो दयानन्द का सिर काटकर लाएगा उसे मैं इनाम दूंगा। मुकदमे में जो कुछ व्यय होगा वह मैं करके उसकी पूर्ण रक्षा करूँगा। पर किसी को साहस न हुआ। अंत में अपने पहलवान् अनुचरों को इस काम के लिए आज्ञा देकर दयानन्द सरस्वती की कुटिया पर भेजा।

दयानन्द सरस्वती एकमात्र कौपीन के अतिरिक्त कोई वस्त्र न धारण करते थे। रात्रि को शीत के समय पूले डालकर सो जाया करते थे। भक्तजन उन्हें सोते हुए पाकर ऊपर कम्बल डाल दिया करते थे। कैथलसिंह नामक व्यक्ति उनके पास रहता था। कभी-कभी नींद में कम्बल उतर जाता था तो वह पुनः उनके शरीर पर डाल देता था।

एक दिन रात्रि के मध्य भाग में राव कर्णसिंह के भेजे हुए तीन पहलवान सेवक तलवार लेकर दयानन्द स्वामी की कुटिया पर आए। स्वामीजी और कैथलसिंह दोनों सो रहे थे। पहलवानों के आने का खटका सुनकर स्वामीजी जाग उठे। पहलवान भयभीत होकर भाग गए। दुबारा फिर कर्णसिंह ने उन्हें क्रोध भरे शब्दों में धमकाकर भेजा। ज्यों ही वे स्वामीजी की कुटिया पर पहुँचे स्वामीजी ने ज़ोर से हुंकार करते हुए पूछा—कौन है ! तीनों पहलवान घबड़ाकर गिर पड़े।

तलवारें हाथ से छूट गईं। स्वामीजी की हुँकार सुनकर कैथलसिंह भी जाग गया।

कैथलसिंह ने सारा वृत्तान्त स्वामीजी के भक्त ठाकुर किशनसिंह तथा अन्य क्षत्रिय राजपूतों को सुनाया। सभी भक्त-जन स्वामीजी की कुटिया पर पहुंचे। स्वामीजी ने सब को समझाया कि देखो! ईश्वर-विश्वासी का कोई क्रूर पुरुष बाल भी बांका नहीं कर सकता। तुम किसी प्रकार की उत्तेजना में मत आओ। उस भीरु कायर पुरुष ने जो कुछ उसकी समझ में आया, किया। हमारा धर्म क्षमा करना ही है। यदि दुष्ट अपनी दुष्टता नहीं छोड़ता तो हम अपनी साधुता को क्यों छोड़ें? तुम अपने घरों में जाकर बैठो। किसी प्रकार की चिन्ता मत करो।

भक्तजनों को संतोष न हुआ। वे सीधे राव कर्णसिंह के डेरे पर पहुँचे। उसे ललकार कर कहा—ऐ कायर राजपूत! यदि तू अपना भला चाहता है तो इसी क्षण कर्णवास को छोड़ कर भाग जा, नहीं तो यहीं तुम्हारे सब शस्त्र छीनकर ऐसी पिटाई करेंगे कि जीवन भर याद रखोगे। तुम्हारी सब मान मर्यादा समाप्त हो जाएगी।

कर्णवास निवासी उसके श्वसुर ठाकुर मोहनसिंह ने भी उसे समझाया कि तुम्हारा कल्याण अब यहां से भाग जाने में ही है। कर्णसिंह अन्तर्भीरु तो था ही। वह उसी समय कर्णवास छोड़कर अपने गांव चला गया।

इस घटना के बाद कुछ दिन कर्णवास में निवासकर दयानन्द सरस्वती अम्बागढ़, शहबाजपुर, कायमगंज आदि नगरों में होते हुए पौष सं० १९२५ में फर्रुखाबाद पधारे।

इस बार फर्रुखाबाद में दयानन्द सरस्वती ने अपने भक्त-जनों को यज्ञोपवीत धारण कराए। संध्या, अग्निहोत्र आदि

नित्य कर्मों के अनुष्ठान की ओर प्रेरित किया। अपने एक भक्त ला० जगन्नाथ के सुपुत्र का शास्त्रविधि से नामकरण संस्कार कराया। मूर्तिपूजा का समय-समय पर ज़ोरदार खण्डन करते रहे। मूर्तिपूजा के समर्थकों ने मेरठ से पं० श्रीगोपाल और कानपुर से पं० हलधर ओझा को बुलवाकर दयानन्द सरस्वती से शास्त्रार्थ कराया, परन्तु दोनों पण्डितों की पराजय से उन्हें बहुत निराशा हुई।

यहीं रहते हुए स्वामीजी ने जर्मनी से चारों वेद मंगवाए। यहां एक संस्कृत की पाठशाला की स्थापना की।

फर्रुखाबाद में इन दिनों कुछ युवक ईसाई धर्म में प्रवेश करना चाहते थे। स्वामीजी ने इन्हें ईसाई धर्म के दोष और वैदिक धर्म का सच्चा स्वरूप बताकर अपने धर्म में रहने के लिए उत्साहित तथा तत्पर किया।

गप्पाष्टक और सत्याष्टक

फर्रूखाबाद से दयानन्द सरस्वती शृङ्गीरामपुर, जलालाबाद कन्नौज होते हुए वर्षाकाल में कानपुर पहुँचे। कानपुर में दरगाही-लाल वकील के घाट पर ठहरे। स्वामीजी के आते ही नगर में हलचल मच गई। जिज्ञासु दर्शकों का उनके पास आना-जाना शुरू हो गया। स्वामीजी ने एक विज्ञापन संस्कृत में छपा-कर बंटवाया। इस में आठ मिथ्यावादों (गप्पों) और आठ सत्यों को प्रचारित किया।

आठ गप्प (गप्पाष्टक)—मिथ्यावाद

१. सब मनुष्यकृत ग्रन्थ—ब्रह्मवैवर्त आदि पुराण
२. देवता बुद्धि से पाषाण आदि की पूजा
३. शैव, शाक्त, वैष्णव गाणपत्य आदि सम्प्रदाय
४. तन्त्रग्रन्थोक्त वाममार्ग
५. भांग आदि मादक द्रव्यों का सेवन

६. परस्त्री गमन
७. चोरी
८. छल कपट, अभिमान और मिथ्याभाषण

आठ सत्य—

१. ईश्वरकृत ऋग्वेदादि चार वेद और अन्य सत्रह ऋषि-कृत ग्रन्थ
२. ब्रह्मचर्य आश्रम में रहते हुए गुरुओं की सेवा, अपने धर्म का विधिवत् अनुष्ठान करते हुए वेदाध्ययन
३. वेद प्रतिपादित वर्णाश्रम धर्म का पालन, सन्ध्योपासना, अग्निहोत्र आदि का अनुष्ठान
४. पञ्च महायज्ञों तथा श्रुतिस्मृति प्रतिपादित कर्मों का अनुष्ठान, ऋतुकाल में ही अपनी पत्नी से सहवास
५. शम, दम, तपश्चरण, यम नियम आदि आठ योग साधनों का अनुष्ठान, सत्सङ्गपूर्वक वानप्रस्थाश्रम का नियम पालन
६. विचार, वितर्क, वैराग्य, और पराविद्या का अभ्यास, संन्यास ग्रहण करके सब कर्मों के फल की इच्छा का त्याग
७. जन्म, मरण, हर्ष, शोक, काम, क्रोध, लोभ, मोह और संगदोष ये सब अनर्थकारी हैं अतः इन का त्याग शुभ है
८. अविद्या, अस्मिता, राग-द्वेष, अभिनिवेश रूप क्लेशों से निवृत्ति पाकर, पंच महाभूतों से अतीत होकर मोक्ष के स्वरूप और स्वराज्य को प्राप्त करना परम लक्ष्य है।

इस विज्ञापन के प्रकाशित होते ही कानपुर के सभी नागरिकों में सनसनी फैल गई। हिन्दू धर्म में प्रचलित पाखण्डपूर्ण प्रथाओं से जिनकी धर्म-निष्ठा जारही थी वे स्वामीजी के अमृतमय उपदेशों को सुनकर वैदिक धर्म के प्रति श्रद्धान्वित

होने लगे। जिनकी आजीविका इन प्रथाओं को चालू रखने पर ही निर्भर थी उन के दिल दहलने लगे। मूर्तिपूजा में विश्वास रखने वालों में उत्तेजना फैलने लगी। उन्होंने पुनः पं० हलधर ओझा तथा उनके साथ पं० लक्ष्मण शास्त्री से दयानन्द सरस्वती के साथ शास्त्रार्थ करने के लिए आग्रह किया।

कानपुर के असिस्टैण्ट कमिश्नर थेन महोदय संस्कृत के विद्वान् थे। उनकी मध्यस्थता में शास्त्रार्थ का आयोजन किया गया।

दयानन्द सरस्वती ने ओझाजी से कहा कि आप कोई वेद वाक्य दिखाएं, जिसमें प्रतिमा-पूजन का विधान हो।

ओझाजी—वेद में प्रतिमा-पूजन का विधान नहीं तो निषेध भी नहीं है।

दयानन्द सरस्वती—यदि विधि नहीं तो निषेध ही समझना चाहिये। यदि कोई मनुष्य अपने सेवक से पश्चिम दिशा में जाने के लिए कहे तो यह स्वतः समझ जाएगा कि वह अन्य दिशाओं में जाने का निषेध करता है। वेद में केवल एक निराकार ईश्वर की उपासना का विधान है।

इसके अनन्तर दयानन्द सरस्वती ने वेद के प्रमाणों द्वारा ईश्वर की निराकारता का प्रतिपादन करते हुए सिद्ध किया कि उसकी प्रतिमा हो ही नहीं सकती।

लक्ष्मण शास्त्री—आप ईश्वर को सर्वव्यापक मानते हैं। पाषाण में भी ईश्वर व्यापक है। उसके पूजन में क्या दोष है?

दयानन्द सरस्वती—जब ईश्वर सर्वव्यापक है तो पत्थर में क्या विशेष गुण है जो उसकी पूजा की जाए? सर्वव्यापी चेतन को छोड़कर जड़ की पूजा में क्या भलाई है।

पं० हलधर ओझा और पं० लक्ष्मण शास्त्री ने तो मौन

धारण कर लिया पर प्रधान महोदय श्री थेन ने स्वामीजी से पूछा—आप किसे मानते हैं ?

दयानन्द सरस्वती—मैं केवल एक निराकार ईश्वर को मानता हूँ।

थेन—तो आप अग्नि में होम करते हुए अग्नि का पूजन क्यों करते हैं ?

दयानन्द सरस्वती—हम अग्नि की पूजा नहीं करते। जो अग्नि में डाला जाता है वह सूक्ष्म होकर सर्वत्र फैल जाता है अतः उसमें वायु को शुद्ध करने वाली सुगन्धित औषधियों और घृत की आहुति देते हैं।

इसके पश्चात् थेन महोदय ने अपनी छड़ी उठाई और चल दिये। पुराणपन्थी "गङ्गामाई की जय" "हलधर ओझा की जय" के नारे लगाने लगे। बाद में जब थेन महोदय को पता लगा तो उन्होंने अपनी लिखित व्यवस्था दी—

सज्जनो ! व्यवस्था के समय मैंने दयानन्द सरस्वती के पक्ष में निर्णय दिया था। मुझे विश्वास है कि उन की युक्तियाँ वेद के आधार पर थीं। मेरे विचार में उस दिन उनकी विजय हुई। यदि आप चाहते हैं तो मैं अपने इस निर्णय के पक्ष में कारणों का भी प्रतिपादन कुछ दिनों में कर दूंगा।

कानपुर डब्ल्यू थेन
७-८-१८६९ (मूल अंग्रेज़ी से अनूदित)

थेन महोदय के इस निर्णय की घोषणा से पं० हलधर ओझा और पं० लक्ष्मण शास्त्री तथा उनके पक्षपोषकों को नीचा देखना पड़ा। नगर में सर्वत्र दयानन्द सरस्वती के जयकार की चर्चा होने लगी। कुछ लोगों ने अपने घरों में रखी मूर्तियाँ भी गङ्गा में बहादीं।

दयानन्द सरस्वती सदा रात्रि के दो बजे बाद उठा करते थे। गङ्गा के तीर पर एकान्त स्थान में जा कर समाधिस्थ रहते थे। दिन का प्रकाश होने पर अपनी कुटिया में आकर व्यायाम आदि से निवृत्त होकर दूध का सेवन करते थे। इसके अनन्तर श्रद्धालु जनों को उपदेश देते थे। उनकी शंकाओं का समाधान करते थे। जहाँ भी जाते उनका प्रायः यही नियम रहता था।

एक दिन स्वामीजी गङ्गा के किनारे जल में मस्त हो कर लेटे हुए थे। इतने में कुछ दूर पर एक मगरमच्छ दिखाई दिया। पं० हृदयनारायण वकील के छोटे भाई वहीं पर थे। वे चिल्लाते हुए भागे कि मगरमच्छ स्वामीजी के समीप आ रहा है। दयानन्द सरस्वती निर्भय शान्ति के साथ पड़े थे। मुस्कराते हुए बोले—जब हमारे मन में उसके प्रति हिंसा की भावना नहीं, तो वह भी हमें हानि नहीं पहुँचाएगा।

अहिंसा की मूर्ति दयानन्द को देखकर मगरमच्छ स्वयं ही दूसरी ओर चला गया।

काशी का सुप्रसिद्ध शास्त्रार्थ

कानपुर से प्रयाग होते हुए दयानन्द सरस्वती आश्विन सं० १९२६ को रामनगर पधारे। कुछ दिन रामनगर रहकर कार्तिक मास में काशी आ गए। यहाँ अमेठी के राजा के आनन्द बाग में डेरा लगाया।

भारतीय संस्कृति में काशी का प्रमुख स्थान है। भागीरथी गंगा के तट पर बसी हुई यह नगरी समस्त भारत के हिन्दू समाज का परम पवित्र तीर्थ है। यहाँ प्राचीन विश्वनाथ के मन्दिर का दर्शन कर प्रत्येक हिन्दू अपने आप को कृत-कृत्य समझता है। काशी में जीवन विसर्जन करने से सीधा वैकुण्ठ प्राप्त होता है, यह हिन्दुओं में लोकप्रसिद्ध मान्यता चली आई है। संस्कृत के

प्रकाण्ड पण्डितों का यह संसार प्रसिद्ध केन्द्र चला आ रहा है। प्राचीन दर्शनों के रहस्य को समझनेवाले नव्य न्याय और नवीन वेदान्त के शब्दजाल में सुलझे हुए, व्याकरण शास्त्र की फक्किकाओं को कण्ठाग्र किये हुए पण्डित तथा अपने आपको पण्डित मानने वाले विद्वानों का समागम यहाँ सदा बना रहता है। भारत के सभी प्रान्तों से सहस्रों की संख्या में संस्कृत के विद्यार्थी यहाँ स्वाध्याय के निमित्त आते रहते हैं। शान्त मनस्वी और विद्याभिमानी प्रवक्ता दोनों प्रकार के सरस्वती के उपासकों का दर्शन यहाँ किया जा सकता है। लाखों की संख्या में श्रद्धालु भक्तजन इस नगरी में प्रतिवर्ष तीर्थयात्रा करने आते हैं। पौराणिक पन्थियों का यह दुर्भेद्य दुर्ग समझा जाता है।

जिस समय का हम वर्णन कर रहे हैं, उन दिनों ईश्वरी नारायणसिंह काशी-नरेश थे। उनका मुख्य प्रासाद रामनगर में था। काशी के पण्डितों पर उनकी छत्र-छाया थी। पण्डित मण्डली भी भगवान् की पाषाण मूर्तियों के बाद उन्हें ही पूज्य समझती थी। काशी-नरेश ब्राह्मणों और साधुओं में विशेष श्रद्धा रखते थे। मूर्तिपूजा में उनकी परम्परागत आस्था थी।

दयानन्द सरस्वती के रामनगर पधारने पर उन्होंने इस साधु के भोजन की व्यवस्था भी अपनी ओर से करनी चाही, पर दयानन्द सरस्वती ने इसकी स्वीकृति नहीं दी।

रामनगर में एक वृक्ष से नीचे डेरा डाल कर मूर्तिपूजा का खण्डन शुरू कर दिया। पण्डित मण्डली के प्रतिनिधि समय समय पर स्वामीजी के पास आकर शङ्कासमाधान के बहाने उन की परीक्षा करने लगे। पं० ज्योतिप्रसाद उदासी का स्वामीजी के साथ मूर्तिपूजा तथा अद्वैतवाद पर वार्तालाप हुआ। वे स्वामीजी के युक्तिवाद से प्रभावित होकर उनके भक्त बन गए। स्वामी निरञ्जनानन्द जी ने भी काशी-नरेश के पूछने

पर स्पष्ट कह दिया कि दयानन्द सरस्वती का यह कथन सत्य है कि वेद में कहीं मूर्तिपूजा या रामलीला का विधान नहीं। यह पुरातन प्रथा चली आ रही है, अतः हम उस का अनुसरण कर रहे हैं।

काशी में आने पर आनन्द बाग में भी दयानन्द सरस्वती के डेरे पर सदा उत्सुकतापूर्ण दर्शकों की भीड़ बनी रहती थी। काशी के दिग्गज पण्डितों के शिष्य तथा स्वयं भी छद्मवेष में पण्डितगण कौपीनधारी नग्न साधु की विद्वत्ता की गहराई की परीक्षा करने आते थे। अपनी शंकाओं का समाधान सुनकर स्वामीजी के स्वाध्याय, प्रतिभापूर्ण तर्क तथा वर्णन शैली को देखकर आतंकित हो जाते थे। दयानन्द सरस्वती प्रायः संस्कृत में ही भाषण किया करते थे।

भारत के पिछली कुछ शताब्दियों के इतिहास में यह प्रथम अवसर था, जब इस विद्वत् पुरी काशी के शान्त वातावरण में धर्म-क्रान्ति का उबाल आया। चिरकाल से अन्ध परम्परागत रूढ़ियों तथा धर्म के नाम पर जारी कुप्रथाओं का खुले मैदान में दयानन्द सरस्वती ने खण्डन कर सोते हुए जनसाधारण को जगाना शुरू किया।

काशी-नरेश को यह आन्दोलन सहन न हुआ। उन्होंने पण्डित मण्डली को आमन्त्रित कर इस नग्न साधु से शास्त्रार्थ करने के लिए प्रोत्साहित किया। काशी में इस युग में वेद के अध्ययन करनेवाले पण्डितों का अभाव था। केवल एक दाक्षिणात्य पण्डित बालशास्त्री ने ही वेदों का कुछ स्वाध्याय किया था। अन्य विद्वान् नव्य-न्याय तथा नवीन वेदान्त के शब्द जाल में ही अपने आपको तथा शिष्य मण्डली को उलझाए और सुलझाए रखते थे।

पण्डितों ने वेद में मूर्तिपूजा का विधान देखने के लिए पन्द्रह दिन का अवसर मांगा। काशी-नरेश ने इसकी स्वीकृति देकर दयानन्द सरस्वती के साथ शास्त्रार्थ की घोषणा करवा दी। इस शास्त्रार्थ सभा के अध्यक्ष स्वयं काशी-नरेश निश्चित किये गए।

पन्द्रह दिन बीत गए। शास्त्रार्थ का दिन आ गया। दयानन्द सरस्वती के भक्त बलदेवप्रसाद ने उनसे कहा—महाराज ! काशी केवल पण्डितों की नगरी नहीं, यह गुण्डों की भी नगरी है। पण्डितों और गुण्डों का यहां गहरा गठबंधन है। शास्त्रार्थ में यहां के गुण्डे आपको जीवित न छोड़ेंगे।

दयानन्द सरस्वती ने कहा—जो पक्षपात रहित होकर ईश्वर की आज्ञानुसार सत्य का उपदेश करता है उसे भय कहां ? सत्य के अनुयायी के लिए मैं अपने जीवन का बलिदान सहर्ष कर सकता हूं। हे बलदेव ! तुम चिन्ता क्यों करते हो ? एक ईश्वर और धर्म ही हमारा साथी है। ईश्वर की आज्ञा का पालन करना हमारा कर्त्तव्य है।

दयानन्द सरस्वती के निवास स्थान आनन्द बाग में ही शास्त्रार्थ होना था। सहस्रों की संख्या में जनसमुदाय इस बाग में एकत्रित होने लगा। पचास सहस्र के लगभग दर्शकगण इस ऐतिहासिक शास्त्रार्थ को सुनने के लिए उत्सुकता के साथ आए।

दर्शकों को विशेषरूप से प्रभावित करने के लिए काशी नरेश ने शास्त्रार्थ में भाग लेने वाले सभी पण्डितों को विशेष-रूप से सजाए हुए रथों पर सभा मण्डप में भिजवाया। पण्डितों के शिष्य उनके पास बैठकर चंवर लिए हुए उन्हें दोलायमान कर रहे थे। सभी के गले में सुन्दर रेशमी दुशाले थे। मस्तक तिलक से सुशोभित थे। सब अपने-अपने भव्य वेश में थे।

एक ओर एकमात्र कौपीनधारी दण्डी स्वामी दयानन्द सरस्वती पद्मासन लगाए बैठे थे, दूसरी ओर काशी की विद्वन् मण्डली के समस्त प्रकाण्ड पण्डित थे। बीच में प्रधान पद पर काशी-नरेश विराजमान थे।

रघुनाथप्रसाद थानेदार शांति रक्षा और नियंत्रण के लिए नियुक्त थे। काशी-नरेश ने उनके प्रबन्ध में हस्तक्षेप करके व्यवस्था ठीक न होने दी। दयानन्द सरस्वती के सहयोगी पं० ज़्योतिप्रसाद को उनके पास बैठने की आज्ञा नहीं दी। उनके चारों ओर विरोधी पण्डितों का घेरा डलवा दिया।

दयानन्द सरस्वती के मन में एक ही भावना थी, वह यह कि इस शास्त्रार्थ द्वारा सत्य का प्रकाश करूं। सत्य के वेश में फंसे हुए मिथ्या पाखण्ड जाल का नाश करूं। जनसाधारण को एक निराकार ईश्वर की भक्ति का मार्ग दिखलाऊं।

काशी-नरेश और पण्डित मण्डली का उद्देश्य शास्त्रार्थ द्वारा सत्य का प्रकाश करना न था। वे तो हुल्लड़बाज़ी द्वारा दयानन्द सरस्वती की पराजय की घोषणा के निमित्त एकत्रित हुए थे।

शास्त्रार्थ प्रारम्भ हुआ। दयानन्द सरस्वती ने राजसभा के पण्डित ताराचरण तर्करत्न से प्रश्न किया—क्या आप चारों वेदों को प्रमाण मानते हैं ?

ताराचरण—हां मैं मानता हूं।

दयानन्द सरस्वती—यदि वेद में मूर्तिपूजा का विधान है तो कोई इस प्रकार का वेदमंत्र प्रस्तुत कीजिए, जिससे वेद में मूर्तिपूजा की प्रामाणिकता सिद्ध हो सके।

ताराचरण—हम केवल वेद को ही प्रमाण नहीं मानते। अन्य ग्रन्थों को भी प्रमाण मानते हैं जिनके आधार पर मूर्ति पूजा की प्रामाणिकता सिद्ध होती है।

दयानन्द सरस्वती—इस समय तो प्रश्न यह है कि वेद में मूर्तिपूजा का विधान है या नहीं ? आप मूर्तिपूजा के समर्थन में कोई वेदमंत्र प्रस्तुत कीजिये।

ताराचरण तर्करत्न मूर्तिपूजा के समर्थन में कोई वेदमंत्र प्रस्तुत नहीं कर सके, पर विषयान्तर में जाकर दयानन्द सरस्वती से पूछा कि क्या आप मनुस्मृति को प्रमाण मानते हैं ? यदि हां तो क्यों ?

दयानन्द सरस्वती—सामवेद के ब्राह्मण में कहा है कि जो कुछ मनु ने कहा है वह औषधों का औषध है।

ताराचरण तर्करत्न के चुप हो जाने पर स्वामी विशुद्धानन्द ने प्रश्न किया—"रचनानुपपत्तेश्चानुमानम्" इस वेदान्त सूत्र को आप वेदमूलक सिद्ध कीजिये।

दयानन्द सरस्वती—यह इस समय शास्त्रार्थ का विषय नहीं है।

विशुद्धानन्द स्वामी—शास्त्रार्थ का विषय नहीं है तो क्या हुआ ? आप इसका समाधान कर सकते हों तो कीजिये।

दयानन्द सरस्वती—इसका पूर्वापर पाठ देखकर ही समाधान किया जा सकता है।

विशुद्धानन्द स्वामी—यदि तुम्हें सब शास्त्र उपस्थित नहीं थे, तो शास्त्रार्थ करने के लिए क्यों आगए ?

दयानन्द सरस्वती—क्या आपको सब शास्त्र उपस्थित हैं ?

विशुद्धानन्द स्वामी—हां मुझे सब शास्त्र उपस्थित हैं।

दयानन्द सरस्वती—कहिए धर्म के कितने लक्षण हैं ?

विशुद्धानन्द स्वामी कोई संतोषजनक उत्तर नहीं दे सके। इस पर दयानन्द सरस्वती ने मनुस्मृति का श्लोक सुनाया—

धृतिः क्षमा, दमोऽस्तेयं शौचमिन्द्रियनिग्रहः
धीर्विद्या सत्यमक्रोधो दशकं धर्म लक्षणम् ॥

स्वामी विशुद्धानन्द का इस प्रकार मानमर्दन होने पर बालशास्त्री बोले—मैंने सब धर्म शास्त्रों का अध्ययन किया है, आप मुझ से इस विषय में प्रश्न कीजिये।

दयानन्द सरस्वती—आप अधर्म के लक्षण बतलाइये।

बालशास्त्री—चुप हो गए।

इस पर एक साथ पण्डित मण्डली ने कोलाहल मचाते हुए पूछा कि वेद में प्रतिमा शब्द आया है वा नहीं ? यदि आया है तो किस प्रकरण में ? आप प्रतिमा-पूजन का खण्डन किस आधार पर करते हैं ?

दयानन्द सरस्वती—वेद में प्रतिमा शब्द तो आया है पर प्रतिमा-पूजन का कहीं विधान नहीं। एक निराकार ईश्वर की स्तुति प्रार्थना, उपासना का वर्णन है इसलिए मैं मूर्तिपूजा का खण्डन करता हूं।

अन्य पण्डितों के शान्त हो जाने पर पं० माधवाचार्य ने पूछा—"**उद् बुध्यस्वाग्ने प्रतिजागृहि, त्वमिष्टापूर्ते संसृथामयंच**" इस वेद मन्त्र में पूर्त शब्द आया है इसका आप क्या अर्थ करते हैं।

दयानन्द सरस्वती—यहां पूर्त शब्द का अभिप्राय कुआं, तालाब, बापी आदि लोकहित के कार्यों से है। इसमें कहीं प्रतिमा-पूजन का विधान नहीं है।

दोपहर के तीन बजे से रात्रि के सात बजे तक इसी प्रकार शास्त्रार्थ चलता रहा। पण्डित मण्डली ने वास्तविक विषय को छोड़कर विषयान्तर में प्रश्न पूछने प्रारम्भ कर दिये। अन्त में पुराणों की वैदिक प्रामाणिकता पर विवाद प्रारम्भ हो गया। सभी पण्डित इच्छानुसार सब ओर से प्रश्नों की बौछार करने लगे। कोई व्यवस्था न रही।

इधर दयानन्द सरस्वती सब प्रश्नों का प्रमाण और युक्ति-संगत उत्तर देते रहे।

धीरे-धीरे अंधकार का समय हो गया। शास्त्रार्थ स्थली पर प्रकाश की कोई उपयुक्त व्यवस्था न थी। ऐसे समय पं० वामानाचार्य ने दो पुराने पन्ने अत्यन्त अस्पष्ट अक्षरों में लिखे निकाल कर कहा—ये वेद के पन्ने हैं। इसमें लिखा है—यज्ञ की समाप्ति होने पर दसवें दिन पुराण का पाठ सुनें। यदि पुराण वेदानुकूल नहीं तो यह विधान किस प्रकार किया गया?

दयानन्द सरस्वती—आप वेदमन्त्र पढ़कर सुनाइये और बतलाइये कि यह किस वेद का, किस प्रकरण का मन्त्र है? विशुद्धानन्द स्वामी बीच में पड़ते हुए बोले—आप ही पढ़ लीजिये, मेरे पास चश्मा नहीं, अतः आपको ही पढ़ना होगा।

दीपक के धुंधले प्रकाश में दयानन्द सरस्वती उसे पढ़ने का प्रयत्न करने लगे। उसमें न कहीं वेद का नाम, न अध्याय, न मंत्रसंख्या थी। इस बीच में स्वामी विशुद्धानन्द के संकेत पर सभी पण्डितों ने "दयानन्द सरस्वती हार गए" का नारा लगाना शुरू कर दिया। काशी-नरेश भी पण्डित मण्डली के इस नारे के साथ उनका समर्थन करके उठ गए।

गुण्डों ने दयानन्द सरस्वती पर ईंट पत्थर फेंकने शुरू कर दिये। रघुनाथ कोतवाल ने स्थिति को दृढ़ता के साथ संभाला। भारी भीड़ को वहां से हटाकर शान्ति स्थापना की।

इस प्रकार शास्त्रार्थ तो समाप्त हुआ पर उसका उद्देश्य पूर्ण न हुआ। पण्डित मण्डली काशी में जुलूस निकालती हुई जयकार के नारे लगाती हुई अपने-अपने घरों में चली गई।

दयानन्द सरस्वती को भारत के प्रसिद्ध संस्कृत के विद्वानों की इस अनैतिकता तथा असभ्य व्यवहार पर खेद तो हुआ पर किसी प्रकार का सन्ताप व निराशा न हुई।

समाचार पत्रों में दोनों प्रकार के समाचार प्रकाशित हुए। कुछ पत्रों ने दयानन्द सरस्वती के पराजय की घोषणा की।

कुछ पत्रों ने पण्डित मण्डली के कृत्य पर खेद प्रकट करते हुए दयानन्द सरस्वती के पाण्डित्य की प्रशंसा की और उनकी वास्तविक विजय की घोषणा करते हुए उनके धैर्य की प्रशंसा की।

वास्तविकता किसी से छिपी न रही। एक दिन राजपंडित तारानाथ तर्करत्न ने स्वयं एक बङ्गाली सज्जन चन्द्रशेखर से निजी बातचीत में कहा मैं अच्छी तरह जानता हूं कि पौराणिक प्रपंच ठीक नहीं है। दयानन्द सरस्वती का कथन सत्य है, पर यदि हम दयानन्द सरस्वती के कथन की सत्यता स्वीकार कर लेते तो काशी-नरेश के मन में हमारे प्रति न जाने क्या भाव उत्पन्न हो जाते।

स्वयं काशी-नरेश ने अपने इस अन्यायपूर्ण व्यवहार के लिए पश्चात्ताप किया। शास्त्रार्थ के कुछ वर्ष पश्चात् एक बार दयानन्द सरस्वती बम्बई से लौटते हुए काशी ठहरे। गोसाईं बिहारीलाल के बाग में डेरा डाला।

महाराज ईश्वरीप्रसाद नारायणसिंह (काशी-नरेश) ने अपने सुसज्जित रथ पर राज्य के एक उच्च कर्मचारी को दयानन्द सरस्वती के डेरे पर भेजा। उनसे अपने भवन में पधारने की प्रार्थना की। दयानन्द सरस्वती के मन में किसी प्रकार का विकार न था। वे उस कर्मचारी की विनयपूर्वक अभ्यर्थना पर काशी-नरेश के भवन पर गए। काशी-नरेश ने उन्हें सम्मान के साथ स्वर्ण सिंहासन पर बिठाया। स्वयं रजत सिंहासन पर बैठे। दयानन्द सरस्वती के गले में फूलों की माला डालकर अभिवन्दना की। विनयपूर्वक निवेदन किया—ऋषिवर! मेरे पूर्वज चिरकाल से मूर्तिपूजा करते आए हैं। मैं भी उसी प्रथा का सदा से श्रद्धा की भावना से अनुसरण करता रहा हूं। इसके प्रति मेरा परम अनुराग है। इसीलिए

आपके मूर्तिपूजा के प्रतिवाद पर मुझे दुःख हुआ। शास्त्रार्थ के समय यदि आपको मेरे व्यवहार से क्षोभ हुआ हो उसके लिए मुझे क्षमा करें।

काशी-नरेश की इस विनयपूर्ण क्षमायाचना से दयानन्द सरस्वती का हृदय द्रवित हो उठा। उन्होंने काशी-नरेश को सांत्वना देकर शान्त किया और अपने डेरे पर वापिस आगए।

एक बार मुलतान से गोस्वामी घनश्यामदास काशी दर्शन के लिए गए। उन्होंने पं० बालशास्त्री से इस शास्त्रार्थ के विषय में चर्चा की। पं० बालशास्त्री ने स्पष्ट शब्दों में कहा—हम गृहस्थ हैं और दयानन्द हमारे पूज्य विद्वान् संन्यासी हैं। उनका हमारा शास्त्रार्थ कहाँ बन सकता है ?

इस शास्त्रार्थ के पश्चात् भी दयानन्द सरस्वती एक मास तक काशी में रहे। उनके चेहरे पर शान्तिमय तेज था। सत्य की आभा और निर्भयता थी। सदा की भांति नित्य नियमानुसार दो बजे रात्रि के पश्चात् एकान्त में जाकर समाधिस्थ रहते। दिन में भक्तजनों का शंका समाधान करते। एक निराकार सच्चिदानन्द ईश्वर की उपासना का उपदेश देते। मूर्तिपूजा को पाखण्ड प्रथा प्रतिपादन करते हुए उसका खण्डन करते।

इस शास्त्रार्थ से दयानन्द सरस्वती की ख्याति भारत के सभी प्रान्तों में फैल गई। बम्बई और कलकत्ता में भी उनकी विद्वत्ता की धाक बैठ गई।

प्रयाग के कुम्भ मेले पर

काशी से दयानन्द सरस्वती मिर्जापुर होते हुए सं० १९२६ वि० माघ मास में प्रयाग पहुँचे। यहाँ इस अवसर पर कुम्भ का मेला हो रहा था। स्वामीजी के आगमन का समाचार सर्वत्र फैल गया। माघ मास के शीतकाल में कौपीनधारी नग्न साधु

के दर्शन करने के लिए लोग एकत्रित होने लगे। एक भक्त ने स्वामीजी से पूछा—महाराज! इस अत्यन्त तीव्र शीतकाल में आप नग्न रहते हैं—क्या आपको ठंड नहीं अनुभव होती?

दयानन्द सरस्वती—आपका मुख सदा नग्न रहता है। इसे ठंड क्यों नहीं अनुभव होती?

भक्तजन—मुख सदा खुला रहता है अतः इसे ठंड सहने का अभ्यास हो गया है।

दयानन्द सरस्वती—तुम्हारा मुख सदा खुला रहता है, हमारा सारा शरीर सदा खुला रहता है अतः इसे सरदी-गरमी सहने का अभ्यास हो गया है।

मेले के अवसर पर भक्तजन मस्तक पर नाना प्रकार के तिलक के रूप में छाप लगाए दयानन्द सरस्वती के पास आते थे। पूछने की आवश्यकता न थी कि ये किस सम्प्रदाय को मानने वाले हैं। स्वामीजी उन्हें उपदेश देते :

मस्तक शृङ्गार करने की अपेक्षा एक निराकार ईश्वर की उपासना द्वारा आत्म-शृङ्गार करो। नाना प्रकार के तिलक लगाकर ईश्वरोपासना में भेदभाव प्रदर्शन करने से क्या लाभ? इन बाह्य आडम्बरों को छोड़कर योगाभ्यास की ओर रुचि उत्पन्न करो। संध्या, अग्निहोत्र और गायत्री का जाप किया करो। इसी में मनुष्य का कल्याण है।'

प्रयाग में इन दिनों ब्रह्मसमाज के प्रधान नेता महर्षि देवेन्द्रनाथ ठाकुर भी आये हुए थे। वे भी स्वामीजी के आगमन का समाचार सुनकर उनसे मिलने आए। दोनों महर्षियों का प्रेमपूर्ण आलाप हुआ। दयानन्द सरस्वती ने देवेन्द्रनाथ ठाकुर को कलकत्ता में संस्कृत पाठशाला खोलने का परामर्श दिया। देवेन्द्रनाथ ठाकुर ने स्वामीजी के कलकत्ता पधारने पर विचार करने के लिए प्रस्ताव रखा।

प्रयाग से दयानन्द सरस्वती पुनः मिर्जापुर आए। यहां भी स्वामीजी का स्थानीय पण्डितों के साथ "वेद में मूर्तिपूजा का विधान है या नहीं" इस विषय पर शास्त्रार्थ हुआ। दयानन्द सरस्वती ने मूर्तिपूजा को वेद-विरुद्ध सिद्ध करते हुए सब उपस्थित जनों को सन्ध्योपासना के लिए प्रेरित किया। मिर्जापुर में एक वैदिक पाठशाला की स्थापना की।

मिर्ज़ापुर से पुनः काशी पधारे। काशी में दो मास निवास कर पाखण्डमय कुरीतियों और वेदविरुद्ध मतों का खण्डन करते रहे।

काशी से सोरों होते हुए कासगंज पधारे। कासगंज में अष्टाध्यायी महाभाष्य तथा मनुस्मृति आदि वेदानुकूल ग्रन्थों के अध्ययन के लिए एक पाठशाला की स्थापना की।

मैं संसार के प्राणियों को कैद कराने नहीं आया
कैद से छुड़ाने आया हूँ

कासगंज से दयानन्द सरस्वती सं० १९२७ में अनूपशहर पधारे। यहां लाला बाबू की कोठी पर डेरा डाला। इन दिनों अनूपशहर में रामलीला का समारोह था। दयानन्द सरस्वती ने रामलीला के विरोध में व्याख्यान दिये। जन साधारण से पूछा कि राम जैसे मर्यादा पुरुषोत्तम और पतिपरायण महिलोत्तमा सीता माता का स्वांग बनाकर खेल तमाशा करना, पुरुषों को स्त्रीवेश में सभा में उपस्थित करना कहाँ तक उचित है? रामलीला की आयोजना करने वाले अपने आपको प्रतिष्ठित पुरुष समझने वाले व्यक्ति क्या अपने परिवार के पुरुषों और देवियों का इस प्रकार स्वाँग में भाग लेना अपनी प्रतिष्ठा के योग्य समझते हैं? भक्तजन उनके जीवन का स्वाध्याय करें। अपने जीवन को उत्तम बनाएं। राम और सीता के आदर्श का अनुसरण करें। यही सच्ची रामलीला है।

उनके इस प्रकार रामलीला के विरोध करने पर वहाँ के नायब तहसीलदार कल्याणसिंह दयानन्द सरस्वती से रुष्ट हो गए।

अनूपशहर में स्वामीजी ने अपने प्रचार में मृत पितरों के श्राद्ध का खण्डन किया। जीवित पितरों के श्राद्ध का समर्थन किया। जीव ब्रह्म की एकता का विरोध करते हुए उनके परस्पर भेद का निरूपण किया। मूर्तिपूजा को वेद-विरुद्ध प्रतिपादित करते हुए एक निराकार ईश्वर की उपासना का उपदेश दिया।

एक दिन एक ब्राह्मण ने स्वामीजी के मूर्तिपूजन के खण्डन से रुष्ट होकर उन्हें पान में विष दे दिया। स्वामीजी ने पान तो खा लिया पर पीछे पता लगने पर न्योली क्रिया द्वारा उसे निकाल दिया। विष का प्रभाव उन पर होने न पाया।

अनूपशहर का मुसलमान तहसीलदार सैय्यद मुहम्मद दयानन्द सरस्वती का भक्त था। उसे ज्यों ही यह समाचार मिला उसने उस ब्राह्मण पर अभियोग लगाकर गिरफ्तार करा दिया। प्रसन्न मन से दयानन्द सरस्वती के पास आया। वह समझता था कि स्वामीजी मेरे इस कार्य से प्रसन्न होंगे। पर दयानन्द सरस्वती ने अप्रसन्नता प्रकट करते हुए कहा—सैय्यद मुहम्मद ! मैं संसार के प्राणियों को कैद कराने के लिए नहीं आया। कैद से छुड़ाने के लिए आया हूँ। यदि दुष्ट अपनी दुष्टता नहीं छोड़ता तो हम लोग अपनी सद्भावना क्यों छोड़ें ?

दयानन्द सरस्वती के आदर्श विचारों को सुनकर सैय्यद मुहम्मद चकित हो गए और उस ब्राह्मण से अपील कराकर उसे छुड़वा दिया।

यह था दयानन्द सरस्वती का ऊँचा आदर्श-चरित्र। उनके मन में कभी किसी अहितकारी के लिए भी वैर भावना न थी।

विश्व-कल्याण ही उनका उद्देश्य था।

बंग-दर्शन और ब्रह्मसमाज

अनूपशहर से दयानन्द सरस्वती गङ्गा तट पर विचरते हुए दो वर्ष तक भिन्न भिन्न नगरों में प्रचार यात्रा करते रहे। अवैदिक प्रथाओं का खण्डन, वैदिक सिद्धान्तों का शास्त्र और तर्क द्वारा निरूपण और विद्वानों के साथ शास्त्र चर्चा करते हुए सं० १९२९ पौष मास में कलकत्ता पहुँचे। श्री चन्द्रशेखर बैरिस्टर ने स्वामीजी के निवास का प्रबन्ध राजा सौरेन्द्र मोहन के प्रमोद भवन में किया।

यहाँ इन दिनों ब्रह्मसमाज का प्रचार उत्कर्ष पर था। ब्रह्मसमाज के प्रवर्तक राजा राममोहन राय थे।

भारत में सर्वत्र हिन्दू धर्म में कुरीतियों का प्रसार था। जन्ममूलक जातिभेद के कारण ब्राह्मणेतर लोगों का झुकाव ईसाई मत की ओर हो रहा था। अंग्रेजी पढ़ा नवशिक्षित जन समुदाय हिन्दू धर्म को घृणा की दृष्टि से देखता था। राजा राम मोहन राय ने हिन्दू धर्म में सुधार का आन्दोलन प्रारंभ किया। इससे शिक्षितजनों को अपने विचारों के अनुकूल हिन्दू धर्म में आश्रय मिला और उनकी ईसाई धर्म की ओर दौड़ कम हुई।

जिन दिनों दयानन्द सरस्वती कलकत्ता आए उस समय ब्रह्मसमाज के मुख्य नेता महर्षि देवेन्द्रनाथ ठाकुर तथा बाबू केशवचन्द्र सेन थे। महर्षि देवेन्द्रनाथ ठाकुर की आस्था प्राचीन वैदिक शास्त्रों की ओर अधिक थी। वे मनस्वी विद्वान् थे।

बाबू केशवचन्द्र सेन पर पश्चिमीय संस्कृति का प्रभाव था। केशवचन्द्र सेन प्रभावशाली वक्ता थे। दोनों नेताओं में कुछ मतभेद बना रहता था।

पं० हेमचन्द्र चक्रवर्ती ब्रह्मसमाज के विद्वान् प्रचारकों में थे। एक दिन पण्डितजी दयानन्द सरस्वती के निवास स्थान पर आए। स्वामीजी के साथ भिन्न भिन्न विषयों पर चर्चा करते रहे। दयानन्द सरस्वती ने उन्हें उनके प्रश्नों के उत्तर में जो विचार प्रकट किये उनका सारांश इस प्रकार है :—

१. विश्व निर्माता प्रभु ने भिन्न भिन्न जातियों (योनियों) के रूप में प्राणियों को जन्म दिया है। ये जातियाँ—मनुष्य, पशु, पक्षी, कीट पतङ्ग आदि के रूप में हैं। मनुष्यों में ब्राह्मण, क्षत्रिय, वैश्य, शूद्र ये चार वर्ण गुण कर्म के अनुसार होते हैं। अध्ययन, अध्यापन में प्रवृत्त, वेदशास्त्रों के ज्ञाता पण्डित ब्राह्मण कहलाते हैं। जो प्रजा की रक्षा के निमित्त सदा तत्पर रहते हैं ऐसे ज्ञानवान् पुरुष क्षत्रिय हैं। जो व्यापार करते हुए समाज सेवा करें वे वैश्य हैं। अशिक्षित जनसेवक पुरुष शूद्र हैं।

२. ईश्वर सच्चिदानन्दस्वरूप है। वह एक है। निराकार है। उस की कोई मूर्ति नहीं।

३. योगदर्शन में प्रतिपादित अष्टाङ्ग योग के निरन्तर चिरकाल तक अभ्यास करने से ईश्वर की उपलब्धि होती है। गायत्री मन्त्र का अर्थसहित जप इस मार्ग में परम सहायक है।

४. प्राचीन षड् दर्शनों में ईश्वर के विषय में कोई मतभेद नहीं। सृष्टि रचना-क्रम में भिन्न भिन्न कारणों का उनमें निरूपण किया गया है। समन्वय बुद्धि से सभी दर्शनों के स्वाध्याय की आवश्यकता है।

जिस दिन दयानन्द सरस्वती कलकत्ता पधारे थे, बाबू केशव चन्द्र सेन कहीं बाहर गए हुए थे। कलकत्ता आते ही वे दयानन्द सरस्वती से मिलने गए। स्वामीजी को अपना परिचय दिये बिना ही पूछा कि क्या आप कभी बाबू केशवचन्द्र सेन से मिले हैं।

स्वामीजी ने उत्तर दिया कि हाँ मिला हूँ। सेन महोदय ने पूछा—कब और कहाँ मिले हैं? स्वामीजी ने कहा—अभी यहीं मिल रहा हूँ।

केशवचन्द्र सेन ने चकित होकर कहा कि आपने मुझे कैसे पहचाना?

दयानन्द सरस्वती ने उत्तर दिया कि आपके वार्तालाप की शैली से ही आप पहचाने गए हैं।

परस्पर धर्म सम्बंधी वार्तालाप करते हुए केशवचंद्र सेन ने दयानन्द सरस्वती से पूछा—महाराज! इस समय संसार में तीन प्रमुख धर्म हैं। वे अपने-अपने ग्रन्थ वेद, बाइबल और कुरान को ईश्वरीय ग्रन्थ मानते हैं। आप वेद को ईश्वरीय ज्ञान मानते हैं। हम कैसे मानें कि आपका मन्तव्य सत्य पर आधारित है?

स्वामीजी ने बाइबल और कुरान में अनेक दोष दिखाते हुए वद के महत्त्व पर प्रकाश डाला और कहा कि ईश्वरीय ज्ञान सृष्टि के आरम्भ में ही विश्व में प्रकाशित होना चाहिये। वेदों के सृष्टि के आरम्भ में प्रकाशित होने तथा निर्दोष होने से वैदिक धर्म ही सच्चा धर्म है।

स्वामीजी के वचनों से प्रभावित होकर सेन महोदय ने कहा—शोक है वेदों का अद्वितीय विद्वान् अंग्रेज़ी नहीं जानता, अन्यथा वह मेरे इङ्गलैंड जाने पर वैदिक संस्कृति पर प्रकाश डालने वाला मेरा अनन्य साथी होता।

स्वामीजी ने भी कहा—शोक है, ब्रह्मसमाज का ओजस्वी नेता संस्कृत नहीं जानता और जनसमुदाय को उस भाषा (अंग्रेजी) में उपदेश देता है जिसे वें नही समझते।

स्वामीजी ने केशवचन्द्र सेन के साथ समय-समय पर अपने वार्तालाप में यज्ञोपवीत के महत्त्व पर प्रकाश डाला। एक निराकार ईश्वर की उपासना के तत्त्व का निरूपण किया। हवन के

विषय में बतलाया कि वह वायुमण्डल को शुद्ध रखने की एक रीति है। इस में मूर्तिपूजा का कोई आभास नहीं।

हिन्दी में बोलने की प्रेरणा

दण्डी स्वामी विरजानन्द से विदाई लेने के अनन्तर दयानन्द सरस्वती संस्कृत में ही व्याख्यान दिया करते थे। हरिद्वार के कुम्भ मेले पर मठाधीशों, साधुओं के वैभव और विलासमय जीवन को देखकर उनके मन में एक त्याग भावना जागृत हुई थी जिस से उन्होंने सम्पूर्ण वस्त्रों का परित्याग कर एक कौपीन धारण करना शुरू किया था।

केशवचन्द्र सेन ने उन से निवेदन किया—महाराज ! यद्यपि आप ऐसी सरल संस्कृत में व्याख्यान देते हैं कि शिक्षित जन समुदाय उसे समझ लेता है, पर यदि आप प्रचलित लोकभाषा में व्याख्यान दें तो सर्वसाधारण जन उस से पूरा लाभ उठा सकेगा। आपके विचारों के अनुवादक आपके अभिप्राय को उस प्रकार नहीं प्रकट कर सकते जिस प्रकार आप स्वयं लोकभाषा में उसको प्रकट कर सकते हैं। इसके अतिरिक्त यदि आप जनसमुदाय में उपदेश देते हुए वस्त्र धारण कर उपस्थित हों तो अधिक अच्छा होगा, यह मेरा तुच्छ विचार है।

दयानन्द सरस्वती ने सेन महोदय के दोनों विचारों से सहमति प्रकट की और कलकत्ता से प्रस्थान के बाद उसके अनुसार कार्य आरम्भ कर दिया।

कलकत्ता रहते हुए दयानन्द सरस्वती का प्रथम व्याख्यान बाबू केशवचन्द्र सेन के आवास-स्थान पर हुआ। यद्यपि व्याख्यान संस्कृत भाषा में हुआ पर उनकी भाषण-शैली इतनी सरल थी कि सभी उपस्थित जन उसे समझ सकते थे। भाषण में स्वामीजी ने मूर्तिपूजा, अद्वैतवाद, जन्ममूलक वर्णभेद,

तथा बाल विवाह के विरुद्ध अपना मत प्रकाशित किया। एक ईश्वर की उपासना का निरूपण किया।

इन्हीं दिनों ब्रह्मसमाज का वार्षिकोत्सव भी था। महर्षि देवेन्द्रनाथ ठाकुर के निमंत्रण पर स्वामीजी ने वहाँ भी अपना प्रभावशाली व्याख्यान दिया।

तीन मास तक दयानन्द सरस्वती कलकत्ता में रहे। प्रायः प्रति दिन सांयकाल चार बजे उनके निवास स्थान प्रमोद कानन में धर्म चर्चा होती थी। उसमें बाबू केशवचन्द्र सेन, महर्षि देवेन्द्रनाथ ठाकुर, पं० ताराचन्द तर्कवाचस्पति, पं० महेशचंद्र न्यायरत्न, पं० हेमचंद्र चक्रवर्ती आदि महानुभाव उपस्थित होते थे। भिन्न भिन्न स्थानों पर वैदिक धर्म के महत्त्व पर व्याख्यान भी देते रहे। इन व्याख्यानों में उन्होंने विशेषरूप से निम्न-लिखित बातों पर ध्यान आकर्षित किया :—

१. एक सच्चिदानन्द निराकार ईश्वर की उपासना के बिना मनुष्य मुक्ति नहीं प्राप्त कर सकता।
२. जीव और ब्रह्म में अद्वैत भावना नहीं है। वे पृथक्-पृथक् हैं।
३. कर्मों द्वारा ब्राह्मण शूद्र और शूद्र ब्राह्मण हो जाता है। यही पुरातन प्रथा है। यदि ब्राह्मण दुश्चरित्र, मूर्ख और धर्महीन हो तो उसे ब्राह्मण नहीं कहा जा सकता। शूद्र यदि ज्ञानी सच्चरित्र और धार्मिक हो तो उसे ब्राह्मण पद पर प्रतिष्ठित करना चाहिये।
४. स्त्रियों को पुरुषों के समान शिक्षा का अधिकार हैं। स्त्रियों के लिए वैद्यक का ज्ञान विशेष आवश्यक है।
५. बाल विवाह अनेक पापों का मूल है।
६. पुराण सर्वथा अमान्य हैं।
७. पुनर्जन्म द्वारा जीव नाना योनियों में भ्रमण करता है।

८. जीवित पितरों की सम्मान और श्रद्धा के साथ शुश्रूषा करनी योग्य है। मृत पितरों का श्राद्ध मूर्खतापूर्ण प्रथा है।

कलकत्ता में रहते हुए दयानन्द सरस्वती ने ब्रह्मसमाज की योजना को देखा। प्रचार क्रम को स्थायी रूप देने के लिए समाज का संगठन आवश्यक है, यह अनुभव किया।

कलकत्ता से दयानन्द सरस्वती हुगली आए। यहाँ इन दिनों काशी-नरेश के राजपण्डित ताराचरण तर्करत्न भी आये हुए थे। काशी शास्त्रार्थ के वर्णन में इन का नाम-निर्देश हो चुका है। हुगलीनिवासी श्री वृन्दावन बाबू के अत्यधिक अनुरोध पर पं० ताराचरण दयानन्द सरस्वती से शास्त्रार्थ करने पर सहमत हो गए। शास्त्रार्थ का विषय था कि मूर्तिपूजा वेदानुकूल है या नहीं। शास्त्रार्थ चला। पं० ताराचरणजी प्रतिमा-पूजन को वेद और तर्क से सिद्ध न कर सके। अन्त में कह गए कि "उपासनामात्रमेव भ्रममूलम्" अर्थात् उपासनामात्र ही भ्रममूलक है। इसका अभिप्राय स्पष्ट हो गया कि यदि उपासनामात्र ही भ्रममूलक है तो प्रतिमापूजन भी भ्रम मूलक ही है।

इसी वाक्य के उच्चारण से पं० ताराचरण दयानन्द सरस्वती के पकड़ में आगए। अपनी पराजय स्वीकार कर ली।

शास्त्रार्थ के अनन्तर जब सब लोग चले गए, पारस्परिक गोष्ठी में वृन्दावन तथा कुछ अन्य सज्जनों के समक्ष पं० ताराचरणजी ने स्पष्ट शब्दों में स्वीकार किया कि पाषाणादि प्रतिमा-पूजन मिथ्या है यह मैं जानता हूँ, पर क्या करूँ ? यदि सत्य कहूँ तो मेरी आजीविका ही चली जाती है। काशीराज मुझे नौकरी से निकाल देंगे। आपके समान मैं सत्यवक्ता नहीं हो सकता। हुगली से दयानन्द सरस्वती वर्धमान, भागलपुर, पटना, छपरा होते हुए आरा पधारे। आरा में महाराज डुमरांव

की कोठी पर उतरे। डुमरांव के महाराज स्वामीजी के भक्तों में से थे।

इस यात्रा में दयानन्द सरस्वती का रूप परिवर्तन हो गया था। अब वे नग्न शरीर न थे। किनारीदार धोती, दुपट्टा धारण करते थे। पैरों में जूता रहता था।

यहाँ भी आपका पं० रुद्रदत्तजी के साथ प्रतिमा-पूजन पर वार्तालाप हुआ। दयानन्द सरस्वती के युक्तिवाद के आगे वे ठहर न सके। बीच में ही उठकर चले गए।

आरा से डुमरांव होते हुए पुनः मिर्जापुर आए। यहाँ दयानन्द सरस्वती ने एक पाठशाला स्थापित कर रखी थी। पाठशाला की प्रबन्ध व्यवस्था ठीक न होने से इसे बन्द करना पड़ा।

मिर्जापुर में स्वामीजी ने अपने भक्त जवाहरदास जी को बुलवाकर काशी में एक पाठशाला स्थापित कराई। इसका नाम सत्यशास्त्र पाठशाला रखा। भारत के प्रसिद्ध विद्वान् पं० शिवकुमारजी शास्त्री इसमें अष्टाध्यायी, महाभाष्य पढ़ाने के लिए नियुक्त हुए।

मिर्जापुर से दयानन्द सरस्वती प्रयाग, कानपुर, लखनऊ, फर्रूखाबाद, कासगंज, छलेसर होते हुए पौष सं० १९३० वि० को अलीगढ़ पधारे। अलीगढ़ में राजा जयकिशनदास के अतिथि बनकर रहे।

यहाँ सर सैय्यद अहमद भी दयानन्द सरस्वती से मिलने आते रहते थे। एक दिन उन्होंने स्वामीजी से पूछा कि हवन से वायु शुद्धि किस प्रकार हो सकती है? स्वामीजी ने कहा जैसे थोड़े से हींग के छौंक से सारी दाल हींग-गन्धी हो जाती है और उसके छौंक की गन्ध सारे घर में भी फैल जाती है उसी प्रकार हवन सामग्री के अग्नि में डालने से आसपास का सारा वायुमण्डल सुवासित हो जाता है।

राजा जयकिशनदासजी दयानन्द सरस्वती के सत्सङ्ग से उनके अत्यन्त भक्त हो गए। उन्होंने स्वामीजी से अनुरोध किया कि उनके उपदेशों को ग्रन्थ के रूप में प्रकाशित किया जाये। राजा जयकिशनजी ने उसके प्रकाशन व्यय का भार अपने ऊपर लेना स्वीकार किया। यही सत्यार्थप्रकाश के निर्माण का वीजारोपण था।

अलीगढ़ से हाथरस होते हुए दयानन्द सरस्वती मथुरा पधारे। एक दिन इस नगरी में अपनी ज्ञान पिपासा को शान्त करने के निमित्त यहाँ आए थे। आज वे प्यासों की प्यास बुझाने के लिए आए। एक दिन वे यहाँ प्रकाश की खोज में आए थे, आज वे यहाँ अन्धकार में पड़े आर्तजनों को प्रकाश देने आए।

मथुरा में राजा उदितनारायणसिंह उन्हें स्टेशन से अपने घर लेकर आए। स्वामीजी के अनुरोध से राजा महोदय ने उनके निवास का प्रबन्ध वृन्दावन में कर दिया। फाल्गुन शुक्ला ११ सं० १९३० के दिन वे वृन्दावन पधारे। रङ्गजी के मन्दिर के पीछे मलूकदास के राधा उद्यान में डेरा डाला।

वृन्दावन में चक्रांकितों के गुरु रंगाचार्य निवास करते थे। इनका प्रभाव सारे भारतवर्ष में था। यहां प्रतिवर्ष इन दिनों ब्रह्मोत्सव (रथ का मेला) मनाया जाता था। इसमें देश के सभी प्रदेशों से सहस्रों की संख्या में साधारण जनता, राजा महाराजा तथा धनपति एकत्रित होते थे। मूर्तिपूजा का यह एक दुर्भेद्य दुर्ग था। रंगाचार्य चक्रांकित सम्प्रदाय के सर्वमान्य अधिष्ठाता थे।

वृन्दावन में दयानन्द सरस्वती के रहने का प्रबन्ध वहां के चुंगी विभाग के अध्यक्ष बक्षी महबूब मसीह ने किया।

स्वामीजी ने बक्षीजी द्वारा नगर में हिन्दी और उर्दू में विज्ञापन लगवा दिये कि होली के पश्चात् प्रतिदिन सायंकाल के समय प्रतिमा-पूजन, ईश्वर के अवतार-ग्रहण तथा तिलक छाप आदि के विरुद्ध उनके व्याख्यान होंगे। एक निराकार ईश्वर की उपासना और मुक्ति के साधनों पर प्रवचन भी होंगे।

रंगाचार्य के पास भी स्वामी जी ने एक पत्र भेजा कि यदि आप प्रतिमा-पूजन, साम्प्रदायिक तिलक छाप, चक्रांकन आदि प्रथाओं को वेदानुकूल मानते हैं तो मेरे साथ शास्त्रार्थ कर इसे सिद्ध कीजिये।

रंगाचार्य ने लिखित उत्तर भेजा कि शास्त्रार्थ ब्रह्मोत्सव के पश्चात् होगा। मैं इन दिनों मेले के कार्य में व्यस्त हूं।

दयानन्द सरस्वती ने अपने कार्यक्रम के अनुसार व्याख्यान प्रारम्भ कर दिये। व्याख्यानों में जहाँ प्रतिमा-पूजन, अवतार-वाद, तिलक छाप, चक्रांकन, तथा अन्य प्रथाओं का प्रमाण और तर्क द्वारा खण्डन किया, वहां साथ ही ईश्वरोपासना, सृष्टि रचना मुक्ति के साधन आदि विषयों पर वेद और शास्त्रों के प्रमाणों द्वारा अपने विचारों का निरूपण किया।

ब्रह्मोत्सव का मेला समाप्त हो गया, पर रंगाचार्य शास्त्रार्थ के लिए तैयार न हुए। उन्होंने कहला भेजा कि मैं अस्वस्थ होने के कारण शास्त्रार्थ का आमन्त्रण स्वीकार न कर सकूंगा।

वृन्दावन से दयानन्द सरस्वती पुनः मथुरा चले आए। यहां मथुरा के पण्डों, चौबों और गुण्डों ने लाठियां लेकर स्वामीजी के डेरे पर धावा बोल दिया। स्वामी के भक्त राजपूत वहां विद्यमान थे। इस वीर राजपूत मण्डली को देखकर धावा बोलने वालों को निराश होकर वापिस जाना पड़ा।

मथुरा से दयानन्द सरस्वती मुरसान और प्रयाग होते हुए पुनः काशी आ गए। इस बार काशी में प्रथम व्याख्यान हिन्दी में दिया। स्वामीजी को हिन्दी में व्याख्यान देने का अभ्यास न था अतः बीच-बीच में संस्कृत के शब्दों और वाक्यों का आश्रय लेना पड़ता।

काशी में स्वामीजी ने अपनी पाठशाला का भी निरीक्षण किया। उसमें कुछ परिवर्तन भी किये। कुछ समय के लिए यह पाठशाला बन्द करनी पड़ी।

३. मूर्त्त कार्य

'सत्यार्थप्रकाश' रचना—विषमिश्रित मिष्ठान्न—वल्लभ संप्रदाय: आलोचना और हत्या का षड्यंत्र—बम्बई में प्रारम्भिक आर्यसमाज की स्थापना : प्रारम्भिक २८ नियम—दिल्ली दरबार : सार्वभौम धर्म की स्थापना का आवाहन, वेद को ईश्वरीय ज्ञान स्वीकार करने पर असहमति—ब्रह्मविचार मेला—पंजाब की ओर : डा० रहीम खां की कोठी में आर्यसमाज की स्थापना, संशोधित दस नियम—उत्तरप्रदेश बिहार : थियोसाफिकल सोसायटी, नास्तिक मुंशीराम, गोकृष्यादि रक्षिणी सभा।

सत्यार्थप्रकाश

दयानन्द सरस्वती के अलीगढ़ में प्रचार यात्रा के समय राजा जयकिशनदास ने उनसे प्रार्थना की थी कि आपके उपदेशों का संग्रह छपवाकर प्रकाशित करा दिया जाय तो जनता का बहुत उपकार होगा। वे स्वामीजी के परम भक्त थे। इन दिनों वे बनारस में डिपुटी कलक्टर थे। स्वामीजी से इस कार्य को क्रियात्मक रूप देने का पुनः अनुरोध किया। प्रकाशन का सम्पूर्ण आर्थिक व्यय का भार अपने ऊपर लेने के लिए निवेदन किया।

राजा जयकिशनदास के अनुरोध पर स्वामीजी ने "सत्यार्थ प्रकाश" नाम से ग्रन्थ का लेखन प्रारम्भ कर दिया। राजाजी ने

महाराष्ट्र के एक पण्डित चन्द्रशेखर को लेखक के रूप में नियुक्त कर दिया।

सत्यार्थप्रकाश का लेखन आषाढ़ वदी ११ सं० १९३१ तदनुसार १२ जून सन् १८७४ में प्रारम्भ हुआ। सं० १९३२ (सन् १८७५) में इस ग्रन्थ का प्रथम संस्करण इस्टार प्रेस बनारस में मुद्रित हुआ।

ऐसा प्रतीत होता है कि सत्यार्थप्रकाश का प्रथम संस्करण लिखाने के अनन्तर दयानन्द सरस्वती ने स्वयं नहीं पढ़ा। लेखकों पर पूर्ण विश्वास कर मुद्रित और प्रचारित करा दिया।

प्रथम मुद्रित सत्यार्थप्रकाश में मृतक श्राद्ध तथा मांस-भक्षण के विषय में दयानन्द सरस्वती के प्रचारित सिद्धान्तों के विरुद्ध कुछ लेख पाए गए। श्रोताओं ने उनका ध्यान इस ओर आकर्षित किया।

सत्यार्थप्रकाश के द्वितीय संस्करण में स्वामीजी ने इनका संशोधन कर दिया। द्वितीय संशोधित संस्करण की स्वामीजी लिखित भूमिका के अनुसार इस संस्करण का संशोधन तथा लेखन उदयपुर में महाराणा के स्थान पर भाद्रपद शुक्ला सं० १९३९ को पूर्ण रूप से सम्पन्न हो गया।

इस बार काशी निवास के समय दयानन्द सरस्वती ने यहां ईसाई मत और इस्लाम की आलोचना की। बाइबल की कहानियों का उद्धरण देते हुए उनमें किस प्रकार ईश्वर की हीन कल्पना की गई है, उस पर प्रकाश डाला। मुसलमानों के विषय में कहा कि वे दूसरों की तो बुतपरस्ती (मूर्तिपूजा) के विषय में आलोचना करते हैं, उनकी मूर्तियों को बलात् तोड़ देते हैं, पर स्वयं बुत-परस्ती नहीं छोड़ते हैं। प्रतिवष सहस्रों की संख्या में हज करने मक्का जाते हैं। वहां काला पत्थर (हज रुल अस्वद) की पूजा

करते हैं। मक्का की तीर्थ यात्रा कर अपने आपको हाजी कहते हैं और समझते हैं कि यह बहिश्त (स्वर्ग) पहुँचने का एक मार्ग हैं।

सर सैय्यद अहमद खां इन दिनों काशी में सब जज थे। वे दयानन्द सरस्वती की स्पष्टवादिता के प्रशंसक थे। दयानन्द सरस्वती के डेरे पर आकर उनके साथ धर्म के विषय में वार्तालाप करते थे। उन्होंने अपने बंगले पर भी महाराज का एक व्याख्यान कराया।

एक दिन दयानन्द सरस्वती ध्यान से निवृत्त होकर अपने डेरे पर बैठे थे। उनके पास पं० सुन्दरलाल आदि कुछ सज्जन बैठे हुए थे। सामने से एक ब्राह्मण कुछ मिष्ठान्न लेकर महाराज के पास आ रहा था। स्वामीजी ने पं० सुन्दरलाल से कहा कि आज तुम्हें एक कौतुक दिखाता हूं।

ज्योंही वह ब्राह्मण मिष्ठान्न लेकर महाराज के पास आया उसने वह मिष्ठान्न महाराज के पास रख दिया। स्वामीजी ने उसमें से कुछ मिष्ठान्न उठाकर प्रसाद के रूप में खाने को दिया। उसने लेने से इनकार कर दिया और कांपने लगा। पूछने पर उसने स्वीकार किया कि मैं इसमें मारक विष का मिश्रण करके लाया हूं।

पं० सुन्दरलाल आदि सज्जन स्वामीजी की यौगिक दिव्य-दृष्टि को देखकर चकित हो गए। बाद में उन्होंने स्वामीजी से निवेदन किया कि महाराज ! इस ब्राह्मण को हमें पुलिस के सुपुर्द करने की आज्ञा दीजिये। स्वामीजी ने उत्तर दिया कि—"यह अपनी दुष्टता का परित्याग नहीं करना चाहता तो मैं साधु धर्म—क्षमा का किस प्रकार परित्याग करूँ? अपने पाप से यह स्वयं कांप रहा है। यही मानसिक दण्ड इसके लिए पर्याप्त है।"

काशी से दयानन्द सरस्वती प्रयाग पधारे। प्रयाग में पं०

नीलकण्ठ शास्त्री के साथ वैदिक धर्म तथा ईसाई धर्म के विषय में बहुत दिनों तक वार्तालाप हुआ। पं० नीलकण्ठ शास्त्री महाराष्ट्र प्रदेश के निवासी थे। संस्कृत के अच्छे विद्वान् थे। हिन्दू-धर्म में पाई जाने वाली कुप्रथाओं के कारण उन्होंने ईसाई धर्म स्वीकार कर लिया था।

एक दिन एक वृद्ध महात्मा स्वामीजी के पास आए। उन्होंने स्वामीजी से निवेदन किया कि आप योगी महात्मा हैं। इस परोपकार के बखेड़े में न पड़ें, शान्त एकान्त स्थान में योग समाधि में मग्न रहें तो मुक्ति प्राप्त कर सकते हैं।

स्वामीजी ने उत्तर दिया—मुझे अपनी मुक्ति की चिन्ता नहीं, पर उन लाखों नरनारियों की मुक्ति की चिन्ता है जो घोर अन्धकार में पड़े हुए दुःख भोग रहे हैं। अपने आपको दीनहीन और सदा भय से व्याकुल अनुभव कर रहे हैं।

प्रयाग से जबलपुर होते हुए दयानन्द सरस्वती नासिक पधारे। नासिक में वहां के सब जज विष्णु मोरेश्वर भिड़े के घर पर निवास किया। यहां स्थानीय पण्डितों के साथ स्वामीजी का शास्त्रार्थ हुआ। इस शास्त्रार्थ का विस्तृत विवरण बम्बई के एक पत्र "इन्द्र प्रकाश" में प्रकाशित हुआ। इस विवरण में दयानन्द सरस्वती के विषय में लिखा है:—

"नदी के तट पर विचारमूढ़ ब्राह्मणों के बृहत् समूह के सामने पुरोहित दल की, जिन्हें हिन्दुओं की मानसिक शिक्षा सौंपी गई है, बुराइयों और उन लोगों के अविद्याजन्य दोषों को निर्भीकता और अटल भाव के साथ स्पष्टाक्षरों में वर्णन करने के कारण इस स्थान के लोग पण्डित दयानन्द सरस्वती से इतने प्रसन्न हुए कि उन्होंने श्रोताओं के आह्लाद और साधुवाद के बीच पण्डित दयानन्द को बहुमूल्य वस्त्र उपहार में दिये।"

प्रयाग में प्रचार यात्रा करते हुए दयानन्द सरस्वती के पास

बम्बई के कुछ प्रतिष्ठित व्यक्तियों की ओर से बम्बई पधारने के लिए निमन्त्रण पत्र आ रहे थे। काशी शास्त्रार्थ तथा वृन्दावन में पाखण्ड लीला की निर्भय आलोचना से उदार विचारों के बम्बई निवासी कुछ सज्जन स्वामीजी महाराज के भक्त बन गए थे। नासिक में पण्डितों के साथ शास्त्रार्थ की चर्चा का वर्णन बम्बई के पत्र 'इन्दु प्रकाश' में प्रकाशित हुआ। इसमें स्वामीजी की विजय, वैदिक सिद्धान्तों के प्रतिभापूण विवेचन और पाखण्ड-मय प्रथाओं के खण्डन का विस्तृत विवरण था। स्वामीजी के भक्त सेवकलाल ने काशी शास्त्रार्थ का वर्णन मुद्रित करवा कर बम्बई की जनता में इतनी अधिक संख्या में बँटवाया कि दयानन्द सरस्वती की विद्वत्ता की ख्याति सर्वत्र फैल गई। जन-साधारण इस दिव्यमूर्ति के दर्शन की उत्सुकता से प्रतीक्षा कर रहे थे।

आश्विन सुदी १२ सं० १९३१ को दयानन्द सरस्वती बम्बई पधारे। स्टेशन पर गण्यमान्य व्यक्ति स्वागत के लिए उपस्थित थे। बालुकेश्वर में महाराज के निवास का प्रबन्ध किया गया। वहीं प्रतिदिन धर्म-आलाप होने लगा।

बम्बई में इन दिनों वल्लभ सम्प्रदाय का बहुत प्रचार था। स्वामीजी ने वल्लभ सम्प्रदाय के गोकुलिये गोसांइयों की गुप्त लीलाओं का परिचय प्राप्त किया। इनकी पाखण्डमय प्रथाओं का खण्डन करने का निश्चय कर लिया।

दयानन्द सरस्वती के व्याख्यानों का प्रबन्ध फ्रामजी काउस जी हाल में किया गया। अपने व्याख्यानों में उन्होंने वेदमन्त्रों के प्रमाणों द्वारा मूर्तिपूजा का खण्डन किया। वैष्णव मत विशेषतः वल्लभ सम्प्रदाय की लीलाओं की तीव्र आलोचना की। भक्त-जनों को समझाया कि मूर्ति जड़ है, इसे ईश्वर मानोगे तो ईश्वर भी जड़ सिद्ध होगा। भिन्न-भिन्न मूर्तियों के पूजन से

ईश्वर एक नहीं रहेगा। प्रतिमा में ईश्वर की भावना से ईश्वर की अखण्डता नहीं रह सकती। यदि कहो कि भावना में भगवान् है तो काष्ठ खण्ड में इक्षुदण्ड की भावना से मुख मीठा क्यों नहीं हो जाता ? मृगतृष्णा में जल की भावना से प्यास क्यों नहीं बुझती ? भावना के साथ सत्य का होना आवश्यक है। एक निराकार अखण्ड सच्चिदानन्द ईश्वर की कल्पना ही सत्य भावना है। उसी में विश्वास रखना, उसकी स्तुति प्रार्थना और उपासना करना ही सत्य भावना है। असत्य में सत्य की भावना कर अन्धविश्वास के साथ चलने से सदा भटकते रहना पड़ेगा।

आर्यों के प्राचीन इतिहास पर प्रकाश डालते हुए स्वामीजी ने वर्तमान समय के अधःपतन और धर्म्माचार्यों के विलासमय जीवन और हीन आचरण पर खेद प्रकट किया। प्राचीन शिक्षा-प्रणाली और आर्य संस्कृति को अपनाने का प्रबल समर्थन किया।

स्वामीजी के व्याख्यान सुनकर कुछ लोगों ने अपनी देव-मूर्तियां मुम्बादेवी के तालाब में फेंक दीं। स्वामीजी के भक्त सेवकलाल कर्षणदास जी ने अपनी देवमूर्तियों को टाउन हाल के अद्भुतालय में भिजवा दिया।

वल्लभ सम्प्रदाय की तीव्र आलोचना से उनके अनुयायियों में दयानन्द सरस्वती के विरुद्ध उग्र भावना जागृत हुई। गोकुलिये गोसांइयों के प्रमुख जीवनजी गोसाईं स्वामीजी से बहुत वैर भावना रखने लगे। उन्होंने एक दिन स्वामीजी के सेवक बलदेव को बुलवाकर कहा कि यदि तुम स्वामीजी को विष देकर मार दो तो मैं तुम्हें एक सहस्र रूपये पारितोषिक के रूप में दूँगा। पाँच रुपये और पाँच सेर मिठाई बलदेव को उसी समय दे दी और एक सहस्र रुपये के लिए एक पत्र लिख दिया। बलदेव रुपये और मिठाई लेकर आ ही रहा था कि स्वामीजी को इस गुप्त योजना की सूचना मिल गई। उन्होंने बलदेव के

आते ही उससे इस विषय में पूछा। सेवक बलदेव ने सब कुछ सत्य कह दिया। स्वामीजी ने मिठाई फिंकवा कर सेवक को सावधान कर दिया कि वह भविष्य में इन गोसाइंयों के पास कभी न जाए।

गोकुलिये गोसाइंयों ने स्वामीजी पर घातक आक्रमण करने के लिए कई गुण्डों की टोलियाँ बनाईं जो उनके डेरे पर जाकर अथवा उनके भ्रमण काल में उनके पीछे जाकर किसी प्रकार उनकी हत्या करें। इस प्रकार की टोलियों को उन्होंने इस कार्य के सम्पन्न करने के लिए प्रचुर धन पारितोषिक के रूप में देने का प्रलोभन दिया। स्वामीजी के अदम्य तेज को देखकर किसी का साहस उन पर आक्रमण करने का न हुआ, सभी ने अपने अपराध स्वीकारकर क्षमा याचना की।

बम्बई में रहते हुए दयानन्द सरस्वती ने जहाँ अपने व्याख्यानों और दैनिक सत्सङ्गों में जनता में वैदिक सत्य सिद्धान्तों का प्रचार किया तथा प्रचलित मिथ्या विचारों और कुत्सित प्रथाओं का खण्डन किया, वहाँ साथ ही लेख के कार्य को भी चालू रखा।

सत्यार्थप्रकाश का लेखन तो पूर्ण हो चुका था। अब यहाँ रहते हुए वेदान्तध्वान्ति निवारण, वल्लभाचार्यमत खण्डन, स्वामिनारायणमत खण्डन नामक छोटी पुस्तकें लिखकर प्रकाशित करवा दीं। संस्कार विधि और आर्याभिविनय का लेखन आरम्भ कर दिया। ऋग्वेदादि-भाष्य-भूमिका के लेखन का भी सूत्रपात किया।

आर्यसमाज की स्थापना

महर्षि दयानन्द ने बङ्गाल की प्रचार यात्रा में वहाँ धर्म प्रचार को स्थायी रूप देने के लिए ब्रह्मसमाज के संगठन को देखा था। बम्बई में उसी प्रकार का प्रार्थनासमाज का संगठन था।

एक दिन मार्गशीर्ष सं० १९३१ में स्वामीजी के भक्तों ने उन से विनीत भाव से निवेदन किया कि महाराज ! आप हमें सच्चे वैदिक धर्म के मार्ग का प्रदर्शन कर रहे हैं। इस धर्म के प्रचार को स्थायी रूप देने के लिए यदि आप एक समाज का संगठन कर दें, तो सदा के लिए जन-साधारण का बड़ा उपकार होगा।

भक्तजनों के उत्साह भरे स्नेहपूर्ण वचनों को सुनकर स्वामीजी ने ध्यानमग्न होकर कुछ समय विचार करने के अनन्तर "आर्यसमाज" के नाम से एक संस्था स्थापित करने की स्वीकृति प्रदान की। सभी उपस्थित जनों ने इस नाम का हर्ष के साथ अनुमोदन किया।

प्रत्येक धर्म के प्रचार के लिए जहाँ एक संस्था की आवश्यकता होती है वहां साथ ही ऐसे धर्म-ग्रन्थ की भी आवश्यकता रहती है जो प्रचार का आधारभूत साधन हो। दयानन्द सरस्वती के उपदेशों का मुख्य आधार चारों वेद तथा वेदानुकूल ऋषिकृत ग्रन्थ थे। वेदों, ब्राह्मण ग्रन्थों और प्राचीन दर्शनों को समझने के लिए दीर्घकालीन स्वाध्याय की आवश्यकता थी। इस समय तक दयानन्द सरस्वती ने "सत्यार्थप्रकाश" नामक अपने उपदेशों का सारभूत ग्रन्थ लिखकर तैयार कर लिया था। वैदिक सिद्धान्तों को समझाने के लिए आर्यसमाज को यह अमूल्य निधि मिल गई।

भक्तजनों को आर्यसमाज की स्थापना का विचार देकर स्वामीजी, प्रचार के निमित्त सूरत चले गए। सूरत से भड़ौच और अहमदाबाद होते हुए पौष वदी ५ सं० १९३१ वि० के दिन राजकोट पधारे। सभी नगरों में स्वामीजी के प्रचार का अनुपम प्रभाव पड़ा। इन नगरों में भी वैदिक सिद्धान्तों का निरूपण करते हुए वल्लभाचार्य और स्वामी नारायण मत में

प्रचलित पाखण्डों का खण्डन किया ।

राजकोट में काठियावाड़ के राजकुमारों की शिक्षा के निमित्त राजकुमार कालेज था । इस कालेज में स्वामीजी ने राजकुमारों को क्षत्रिय धर्म का उपदेश दिया ।

राजकोट में स्वामीजी के पधारने से दो वर्ष पूर्व यहां प्रार्थनासमाज की स्थापना हो चुकी थी । स्वामीजी के अमृतमय उपदेशों को सुनकर प्रार्थनासमाज के कुछ सदस्य तथा अन्य श्रोतागण बहुत प्रभावित हुए । स्वामीजी ने भक्तजनों के उत्साह को देखकर वहाँ एक आर्यसमाज की स्थापना का आदेश दिया । प्रार्थनासमाज के सदस्यों ने प्रार्थनासमाज को ही आर्यसमाज का नाम रूप दे दिया । मणिशंकर जटाशंकर प्रधान, उन की अनुपस्थिति में उत्तमराम निर्भयराम स्थानापन्न प्रधान तथा हरगोविन्द द्वारकादास और नगीनदास ब्रजभूषणदास मन्त्री नियुक्त हुए । प्रति रविवार सत्सङ्ग तथा वेदकथा होने लगी ।

पांच छः मास बाद कुछ राजनीतिक कारणों से यह आर्यसमाज बन्द हो गया ।

राजकोट से दयानन्द सरस्वती पुनः पौष की पूर्णमासी को अहमदाबाद पधारे । अहमदाबाद में स्वामीजी ने वेदों की प्रामाणिकता के आधार पर सब आर्यधर्मावलम्बियों को एकसूत्र में बंधे रहने के लिए अनुरोध किया । मूर्तिपूजा और बाल-विवाह का खण्डन किया । स्वामी नारायण मत की पाखंड लीला से दूर रहने का उपदेश दिया ।

अहमदाबाद से भड़ौच, सूरत, बलसाढ़, बसीन रोड़, बड़ौदा तथा अहमदाबाद होते हुए स्वामीजी वापिस बम्बई पधारे । यहाँ बालकेश्वर में लालजी दलाल के बंगले में ठहरे । बम्बई आने पर स्वामीजी के व्याख्यानों का पूर्ववत् सिलसिला जारी हो

गया। स्वामीजी की बम्बई की प्रथम यात्रा में उनके भक्त पुरुषों ने यहां आर्यसमाज की स्थापना का प्रस्ताव रखा था। वे उत्सुकता के साथ स्वामीजी द्वारा इस अवसर की प्रतीक्षा कर रहे थे। उत्सुक भक्तजनों ने पुनः उत्साह भरे हृदयों से आर्यसमाज की स्थापना के प्रस्ताव को दोहराया। भक्तजनों के अनुरोध पर राजमान्य राजे श्री पानाचन्द आनन्द जी पारीख को स्वामीजी के आदेश के अनुसार आर्यसमाज के नियमों की रूपरेखा के निर्माण का कार्य सौंपा गया। स्वामी जी ने श्री पानाचन्द जी द्वारा प्रस्तुत नियमों में उचित संशोधन कर स्वीकृति प्रदान की।

चैत्र सुदी पांच शनिवार सं० १९३२ वि० तदनुसार १० अप्रैल सन् १८७५ ई० के दिन सांयकाल के समय गिरगांव में डा० माणिकचन्द जी की वाटिका में आर्यसमाज की स्थापना की गई। इसमें आर्यसमाज के निम्नलिखित २८ नियम स्वीकृत किये गए।

१. सब मनुष्यों के हितार्थ आर्यसमाज का होना आवश्यक है।

२. इस समाज में मुख्य स्वतःप्रमाण वेदों को ही माना जाएगा। साक्षी के लिए, वेदों के ज्ञान के लिए और इतिहास के लिए शतपथ आदि ब्राह्मण, छः वेदाङ्ग, चार उपवेद, छः दर्शन और ११२७ वेदों की व्याख्यान रूप शाखाएं। इन आर्य ग्रन्थों को भी वेदानुकूल होने से गौण प्रमाण माना जाएगा।

३. इस समाज में प्रतिदेश के मध्य एक प्रधान समाज होगा और दूसरे शाखा प्रतिशाखा समझे जाएँगे।

४. सब समाजों की व्यवस्था प्रधान समाज के अनुकूल ही रहेगी।

५. प्रधान समाज में सत्योपदेश के लिए संस्कृत और आर्य-भाषा में नाना प्रकार के ग्रन्थ रहेंगे और एक साप्ताहिक पत्र "आर्यप्रकाश" निकलेगा। ये सब समाजों में प्रवृत्त किये जायेंगे।

६. प्रत्येक समाज में एक प्रधान पुरुष, दूसरा मन्त्री तथा अन्य पुरुष और स्त्री सब सभासद होंगे।

७. प्रधान पुरुष इस समाज की व्यवस्था का यथावत् पालन करेगा और मन्त्री सबके प्रश्नों के उत्तर तथा सब के नाम व्यवस्था लेख करेगा।

८. इस समाज में सत्पुरुष, सदाचारी और परोपकारी सभासद बनाए जाएंगे।

९. प्रत्येक गृहस्थ सभासद को उचित है कि वह अपने गृह-कृत्य से अवकाश पाकर जैसे घर के कामों में पुरुषार्थ करता है उससे अधिक पुरुषार्थ इस समाज की उन्नति के लिए करे और विरक्त तो नित्य ही इस समाज की उन्नति में तत्पर रहे।

१०. प्रत्येक सप्ताह में एक दिन प्रधान, मन्त्री और सभासद समाज स्थान में एकत्रित हों। सब कामों से इस काम को मुख्य जानें।

११. एकत्रित होकर सर्वथा स्थिर चित्त हों, पक्षपात छोड़कर परस्पर प्रीति से प्रश्नोत्तर करें। फिर सामवेद-गान, परमेश्वर, सत्य धर्म, सत्य नीति, सत्योपदेश के विषय में ही बाजे आदि से गान और इन्हीं विषयों पर मन्त्रों का अर्थ और व्याख्यान हों। फिर गान, फिर मन्त्रों का अर्थ और फिर गान आदि।

१२. प्रत्येक सभासद न्यायपूर्वक पुरुषार्थ से जितना धन प्राप्त करे, उसमें से शतांश आर्यसमाज, आर्य विद्यालय, और

आर्यप्रकाश पत्र के प्रचार और उन्नति के लिए आर्य समाज के कोष में दे।

१३. जो मनुष्य इन कार्यों की उन्नति और प्रचार के लिए जितना प्रयत्न करे उसका उतना ही अधिक सत्कार उत्साह वृद्धि के लिए होना चाहिये।

१४. इस समाज में वेदोक्त प्रकार से अद्वैत परमेश्वर की ही स्तुति प्रार्थना और उपासना की जाएगी। स्तुति—निराकार, सर्वशक्तिमान्, न्यायकारी, अजन्मा, अनन्त, निर्विकार, अनादि, अनुपम, दयालु, सर्वाधार, सच्चिदानन्द, आदि विशेषणों से परमात्मा का गुण कीर्तन करना; प्रार्थना—सर्वश्रेष्ठ कार्यों में उससे साहाय्य चाहना; उपासना—उसके आनन्दस्वरूप में मग्न हो जाना। सो पूर्वोक्त लक्षणयुक्त परमात्मा की ही भक्ति करनी चाहिये उसको छोड़कर अन्य किसी का आश्रय नहीं लेना चाहिये।

१५. इस समाज में निषेकादि अन्त्येष्टि पर्यन्त संस्कार वेदोक्त किये जाएंगे।

१६. आर्य विद्यालय में वेदादि सनातन आर्य ग्रन्थों का पठन-पाठन हुआ करेगा; और सब स्त्री पुरुषों को वेदोक्त रीति से शिक्षा दी जायगी।

१७. इस समाज मे स्वदेश के हितार्थ दो प्रकार की शुद्धि के लिए प्रयत्न किया जाएगा। एक परमार्थ, दूसरे व्यवहार। इन दोनों का शोधन तथा संसार के हित की उन्नति की जायगी।

१८. इस समाज में न्याय पक्षपात से रहित और प्रत्यक्षादि प्रमाणों से यथावत् परीक्षित सत्यधर्म वेदोक्त ही माना जाएगा। इससे विपरीत कदापि नहीं।

१९. इस समाज की ओर से श्रेष्ठ विद्वान् लोग सदुपदेश करने के लिए समयानुकूल सर्वत्र भेजे जाएँगे।
२०. स्त्री पुरुष इन दोनों के विद्याभ्यास के लिए यथासम्भव प्रत्येक स्थान में आर्य विद्यालय पृथक्-पृथक् बनाए जाएँगे। स्त्रियों की पाठशाला में अध्यापिका आदि का सब प्रबन्ध स्त्रियों द्वारा ही किया जाएगा और पुरुषों की पाठशाला में पुरुषों द्वारा, इसके विरुद्ध नहीं।
२१. इन पाठशालाओं की व्यवस्था प्रधान आर्यसमाज के अनुकूल पालन की जायगी।
२२. इस समाज में प्रधान आदि सब सभासदों को परस्पर प्रीतिपूर्वक अभिमान, हठ, दुराग्रह और क्रोध आदि दुर्गुणों को छोड़कर उपकार और सुहृद्भाव से निर्वैर होकर स्वात्मवत् सब के साथ वर्तना होगा।
२३. विचार के समय सब व्यवहार में जो न्याययुक्त सर्वहित साधक सत्य बात स्थिर हो वह सभासदों पर प्रकाशित करके वही बात मानी जाए।
२४. जो मनुष्य इन नियमों के अनुकूल आचरण करने वाला, धर्मात्मा, सदाचारी हो उसको उत्तम सभासदों में प्रविष्ट करना, इसके विपरीत साधारण समाज में रखना और अत्यन्त प्रत्यक्ष दुष्ट को समाज से निकाल देना। परन्तु यह काम पक्षपात से नहीं करना, किन्तु ये दोनों काम श्रेष्ठ सभासदों के विचार से ही किए जाएं अन्यथा नहीं।
२५. आर्यसमाज, आर्यविद्यालय, आर्यप्रकाश पत्र और आर्य समाज का कोष इन चारों की रक्षा और उन्नति प्रधान आदि सब सभासद तन-मन-धन से किया करें।
२६. जब तक नौकरी करने और कराने वाला आर्यसमाजस्थ

मिले तब तक और नौकरी न करे और न किसी अन्य को नौकर रखे। ये दोनों परस्पर स्वामी-सेवक भाव से यथावत् वर्तें।

२७. जब विवाह, जन्म, मरण अथवा अन्य कोई दान करने का अवसर उपस्थित हो, तब सब आर्यसमाज के निमित्त धन आदि दान किया करें। ऐसा धर्म का काम दूसरा कोई नहीं है, ऐसा समझकर इसको कभी न भूलें।

२८. इन नियमों में से यदि कोई नियम घटाया बढ़ाया जाएगा तो सब श्रेष्ठ सभासदों के विचार से ही सब को विदित करके ऐसा करना होगा।

इस प्रकार यह प्रथम आर्यसमाज की स्थापना थी जहाँ आर्य समाज के नियमों का विधिवत् निर्माण कर सारे भारत में इस का सिलसिला जारी हो गया। प्रति शनिवार को आर्यसमाज का साप्ताहिक सत्सङ्ग होने लगा। प्रारम्भ में सौ के लगभग आर्य सदस्यों की संख्या थी। १० अप्रैल को आर्यसमाज की स्थापना हुई। १७ अप्रैल तथा २४ अप्रैल को आर्यसमाज में स्वामी जी के व्याख्यान हुए।

आर्य सदस्यों ने स्वामीजी से विनयपूर्वक प्रार्थना की कि महाराज! आप कृपा करके इस आर्यसमाज के अधिनायक अथवा प्रधान पद को स्वीकार करें। स्वामीजी ने किसी प्रकार का पद ग्रहण करना स्वीकार न किया। इस आर्यसमाज के साधारण सभासदों की सूची में अपना नाम अङ्कित करवा दिया तथा मासिक चन्दा नियमानुसार देते रहे।

यहाँ रहते हुए दयानन्द सरस्वती ने संस्कारविधि तथा आर्याभिविनय भी मुद्रित करवाकर प्रचारित कर दिया।

हरिश्चन्द्र चिन्तामणि ने दयानन्द सरस्वती का फोटो लेने के लिए उनसे आग्रह किया। दयानन्द सरस्वती ने इस पर

आशङ्का प्रकट की कि ऐसा न हो कि उनका फोटो आर्यसमाज में उनकी प्रतिकृति की पूजा का रूप धारण करले? फोटो लेने की आज्ञा तो दे दी, पर साथ ही हरिश्चन्द्र चिन्तामणि को आदेश दिया कि उनके फोटो की प्रतिष्ठा आर्यसमाज मन्दिर में नहीं होनी चाहिये।

प्रसिद्ध समाज-सुधारक महादेव गोविन्द रानाडे तथा महादेव मोरेश्वर कुण्टे के निमन्त्रण पर दयानन्द सरस्वती बम्बई से पूना पधारे। रानाडे इन दिनों पूना में जज थे। बाद में बम्बई हाइकोर्ट के जज हो गए थे। स्वामीजी के प्रति इनकी परम श्रद्धा थी।

पूना में शङ्कर सेठ के मकान में स्थान ग्रहण किया। यहाँ स्वामीजी के पचास व्याख्यान हुए। पन्द्रह व्याख्यान पूना नगर में तथा शेष वहां के कैम्प में। शिक्षित जनसमुदाय पर इन व्याख्यानों का आकर्षक प्रभाव पड़ा। ये सभी व्याख्यान रानाडे महोदय ने मुद्रित करवा दिये। इन में पन्द्रह व्याख्यानों का हिन्दी में अनुवाद भी प्रकाशित किया गया।

पूना से सतारा होते हुए दयानन्द सरस्वती पुनः बम्बई पधारे। बम्बई में कुछ समय रहकर बड़ौदा के लिए प्रस्थान किया। बड़ौदा में गोविन्दाम रोडिया की धर्मशाला में स्थान ग्रहण किया। यहां स्वामीजी के निवास का प्रबन्ध राज्य की ओर से वहां के दीवान सर टी० माधव राव ने किया। आतिथ्य सत्कार के लिए बड़ौदा के सिटी जज रावबहादुर रामचन्द्र गोपाल देशमुख उद्यत रहते थे।

स्वामीजी के व्याख्यानों का प्रबन्ध धर्मशाला में ही किया गया। राज्य के सभी प्रमुख कर्मचारी तथा अन्य शिक्षित जन उत्सुकता के साथ व्याख्यान सुनने आते थे। व्याख्यानों के विषय मुख्यतः देशोन्नति, वेद के अध्ययन का अधिकार, राजधर्म

ब्रह्मचर्य, तथा बाल विवाह का निषेध थे।

बड़ौदा से पुनः बम्बई पधारे। यहां प्रथम व्याख्यान वेदों की श्रेष्ठता पर हुआ। इस व्याख्यान में संस्कृत के प्रसिद्ध पाश्चात्य विद्वान् प्रो० मोनियर विलियम्स भी उपस्थित थे। उन पर स्वामीजी की विद्वत्ता का गम्भीर प्रभाव पड़ा। व्याख्यान के अनन्तर दोनों वैदिक विद्वानों का परस्पर संस्कृत में प्रेमालाप हुआ। प्रो० मोनियर विलियम्स ने स्वामीजी की विद्वत्ता और व्याख्यान शैली की बहुत प्रशंसा की।

बम्बई से दयानन्द सरस्वती इन्दौर पधारे। यहां तालबाग में निवास किया। इन्दौर में स्वामीजी के व्याख्यानों का श्रवण करने के लिए राजकर्मचारी तथा जनसाधारण बड़ी संख्या में आते थे। एक व्याख्यान में महाराजा तुकोजी राव भी पधारे। स्वामीजी की दिव्यमूर्ति का दर्शन और ओजस्विनी वाणी का श्रवणकर परम सन्तोष अनुभव किया। एक दिन राजभवन में निमन्त्रित कर उनसे राजनीति के विषय में उपदेश भी ग्रहण किया।

दिल्ली-दरबार

इन्दौर से दयानन्द सरस्वती फर्रुखाबाद होते हुए ज्येष्ठ शुक्ला ४ सं० १९३३ को काशी पधारे। यहां इस बार वेदभाष्य के लेखन के विषय में चिन्तन करते रहे। फर्रुखाबाद से संस्कृत के विद्वान् पं० भीमसेन को काशी में बुलवाया। भाद्रपद कृष्णा १४ सं० १९३३ वि० तक काशी में रहे। यहीं ऋग्वेदादिभाष्य भूमिका के मुद्रण का प्रबन्ध लाजरस कम्पनी के मुद्रणालय में किया। वेदभाष्य विषयक कुछ विज्ञापन भी प्रचारार्थ मुद्रित कराए।

काशी से जौनपुर, अयोध्या, लखनऊ, शाहजहांपुर, बरेली होते हुए मुरादाबाद पधारे। मुरादाबाद में धर्मप्रचार तथा

आर्यसमाज की स्थापना करने के पश्चात् जलेसर और अलीगढ़ होते हुए दिसम्बर के अन्तिम दिनों में दिल्ली में पदार्पण किया।

एक जनवरी सन् १८७७ के दिन उस समय के भारत के गवर्नर जनरल लार्ड लिटन ने दिल्ली में एक दरबार की आयोजना की थी। इस दरबार में भारत के सब राजा महाराजा, सभी प्रान्तों के गवर्नर, लैफ्टिनैण्ट गवर्नर तथा देश के सभी प्रतिष्ठित पुरुषों ने आना था। इस दरबार में महारानी विक्टोरिया को भारत की राजराजेश्वरी घोषित किया जाना था।

दयानन्द सरस्वती ने वैदिक धर्म के प्रचार का यह अच्छा अवसर समझा। दिल्ली प्रस्थान का निश्चय किया। स्वामी जी के भक्त ठाकुर मुकुन्दसिंह ने अलीगढ़ से तम्बू खेमे भिजवा कर कुतुबरोड स्थित शेरमल के अनारबाग में स्वामीजी महाराज के डेरे का प्रबन्ध किया। स्वामीजी के साथ ठा० मुकुन्दसिंह के अतिरिक्त कर्णवास के धनपति ठा० गोपालसिंह, ठा० भूपालसिंह तथा ठा० किशनसिंह आदि भी दिल्ली पधारे। उनके निवास द्वार पर "स्वामी दयानन्द सरवस्ती का निवास स्थान" का बोर्ड लगाया गया। स्वामीजी के साथ प० भीमसेन तथा मुरादाबाद के पं० इन्द्रमणि भी थे।

दयानन्द सरस्वती ने सब को एकत्र होकर सत्यासत्य का निर्णयकर एक सार्वभौम धर्म स्थापति करने के निमित्त विज्ञापन द्वारा आवाहान किया। यह विज्ञापन सभी मतों के विद्वान् नेताओं और राजा महाराजाओं में प्रचारित किया।

राजा महाराजा तथा धनपति तो इस अवसर पर धर्म-चर्चा करने की स्थिति में नहीं थे। उनका ध्यान लार्ड लिटन की आराधना करने की ओर था। वही उनके लिए आज देवाधिदेव महादेव थे। डुमरांव के राजा तथा इन्दौर के महाराज स्वामी जी के दर्शनार्थ अवश्य आए।

विज्ञापन से स्वामीजी के आगमन की धूम दिल्ली में सर्वत्र फैल गई। पण्डित जन उनके डेरे पर आकर शास्त्र-चर्चा और विचार विनिमय करते रहे। एक दिन एक ईरानी मौलवी भी आए।

स्वामीजी के प्रयत्न करने पर एक दिन उनके निवास स्थान पर भारत के प्रसिद्ध समाज-सुधारकों का सम्मेलन हुआ। इस सम्मेलन में पंजाब के मुंशी कन्हैयालाल अलखधारी, बंगाल के बाबू नवीनचन्द्र राय तथा बाबू केशवचन्द्र सेन, मुसलमानों के प्रतिनिधि सर सैय्यद अहमदखां, बम्बई के बाबू हरिश्चन्द्र चिन्तामणि, उत्तरप्रदेश के पं० इन्द्रमणि सम्मिलित हुए।

बाबू केशवचन्द्र सेन बंगाल में ब्रह्मसमाज के प्रसिद्ध नेता थे। बाबू नवीनचन्द्र राय पंजाब में ब्रह्मसमाज के सर्वोपरि प्रचारक थे। मुंशी कन्हैयालाल अलखधारी पंजाब में हिन्दू समाज के सुधारकों में प्रमुख समझे जाते थे। सर सैय्यद अहमद अच्छे लेखक प्रभावशाली वक्ता, मुसलमानों के प्रतिभाशाली मान्य पुरुष थे। सर सैय्यद अहमद ही अलगीढ़ में मुस्लिम यूनिवर्सिटी के प्रवर्तक थे। बाबू हरिश्चन्द्र चिन्तामणि बम्बई में स्वामीजी के परमभक्त बन चुके थे। पं० इन्द्रमणि इस्लाम धर्म के ख्यातिप्राप्त विद्वान् थे, जो मुसलमानों द्वारा हिन्दू धर्म पर किये जाने वाले आक्षेपों के तर्क-पूर्ण समाधान करने में प्रसिद्ध हो चुके थे।

सभी महानुभावों में बहुत समय तक विचार-विनिमय होता रहा। पर वेदों को ईश्वरीय ज्ञान मानने पर सब सहमत न हो सके। दयानन्द सरस्वती वेदों को ईश्वरीय ज्ञान मानने पर अटल रहे। इस प्रकार स्वामीजी का यह अभिमत पूर्ण न हो सका।

दिल्ली निवास के समय स्वामीजी के तेजस्वी रूप का दर्शन

और ओजस्विनी वाणी का श्रवण कर पंजाब से आये सज्जन बहुत प्रभावित हुए। एक दिन मुंशी कन्हैयालाल अलखधारी, सरदार विक्रमसिंह अहलूवालिया, पं० मनफूल तथा मुंशी हरसुखराय महाराज के डेरे पर गये। स्वामीजी से पंजाब में पधार कर वेदोपदेश देने के लिए अभ्यर्थना की। महाराज ने सहर्ष स्वीकृति प्रदान की।

ब्रह्म-विचार मेला

दिल्ली से मेरठ और सहारनपुर होते हुए दयानन्द सरस्वती शाहजहांपुर पधारे। शाहजहांपुर जिले के चांदपुर गांव में मुंशी प्यारेलाल और मुक्ताप्रसाद जमींदार थे। ये जाति के कायस्थ थे। इनके पिता कबीरपन्थी थे। ये दोनों भी कबीर-पन्थ के अनुयायी थे। इस गांव में पादरी लोग भी आकर अपने धर्म का प्रचार करते रहते थे। मुसलमान तो इस देश के अंग बन ही चुके थे। मुंशी प्यारेलाल और मुक्ताप्रसाद दोनों भाइयों का ईसाई पादरियों और मुसलमान मौलवियों के साथ धर्मविषयक आलाप चलता रहता था। बड़े भाई मुक्ताप्रसाद का झुकाव दयानन्द सरस्वती के विचारों की ओर हो रहा था। इन दोनों भाइयों ने सत्यता परखने लिए एक मेला "ब्रह्म-विचार" की योजना बनाई। इसमें ईसाई, मुसलमान और आर्यों के प्रतिनिधियों को आमन्त्रित किया गया।

मुसलमानों के प्रतिनिधि के रूप में देवबन्द से भारत प्रसिद्ध मौलवी मुहम्मद कासिम आए। उनके सहायक के रूप में दिल्ली से सैय्यद अब्दुल मंसूर बुलवाए गए। ईसाइयों की ओर से बरेली से रैवरेण्ड टी० जी० स्काट पधारे। इन्होंने ईसाई धर्म पर कुछ पुस्तिकाएं तथा बाइबल पर एक टीका भी लिखी थी। ईसाइयों में ये सम्मानित विद्वान् समझे जाते थे। रैवरैण्ड नेबिल, रैवरैण्ड पार्कर, रैवरैण्ड जोहन थौमसन तथा कुछ अन्य पादरियों

को इनकी सहायतार्थ बुलवाया गया। वैदिक धर्म के सिद्धान्तों के निरूपण के लिए दयानन्द सरस्वती को आमन्त्रित किया गया। मुंशी (पण्डित) इन्द्रमणि इनके साथ थे।

दयानन्द सरस्वती चाहते थे कि मेला दो सप्ताह तक रहे ताकि प्रत्येक धर्म के विद्वान् अपने धर्म के सभी सिद्धान्तों पर पूरी तरह प्रकाश डाल सकें। श्रोतागण भी सबके मतों को सुचारु रूप से सुनने के बाद अपने विचार निश्चित कर सकें। परन्तु यह मेला दो दिन से अधिक न हो सका। अन्य धर्मानुयायी अधिक समय यहां ठहरने के लिए सहमत न हुए। मेले में पांच विषयों पर विचार विमर्श करने का निश्चय हुआ :—

१—ईश्वर ने जगत् को किस वस्तु से किस समय और किस अभिप्राय से रचा ?

२—ईश्वर सर्वव्यापी है या नहीं ?

३—ईश्वर न्यायकारी तथा दयालु किस प्रकार है ?

४—वेद, बाइबल तथा कुरान के ईश्वरीय ज्ञान होने में क्या प्रमाण है ?

५—मुक्ति का स्वरूप क्या है ? मुक्ति की प्राप्ति के साधन क्या हैं ?

मेले की तिथियां १९, २० मार्च सन् १८७७ ई० निश्चित की गईं।

१९ मार्च को एक बजे मेले का प्रारम्भ हुआ। सर्वप्रथम मुंशी प्यारेलाल ने ईश्वर को धन्यवाद दिया, जिसकी कृपा से हम एक ऐसे साम्राज्य की छत्रछाया में हैं जहां सभी धर्मों के गुणावगुणों का स्वतन्त्रतापूर्वक विवेचन किया जा सकता है। उसके बाद स्थानीय मजिस्ट्रेट को धन्यवाद दिया, जिसने इस मेले के आयोजन की आज्ञा प्रदान की। प्रथम दिन निश्चित प्रश्नों पर कोई विशेष विचार विमर्श न हुआ। मौलवी मुहम्मद

कासिम और पादरी नेबिल का कुरान और बाइबल के ईश्वरीय ज्ञान मानने पर परस्पर कुछ आलोचना होती रही।

२० मार्च सन् १८७७ की प्रातः साढ़े सात बजे प्रथम प्रश्न पर विचार आरम्भ हुआ।

पादरी स्काट ने कहा कि हम निश्चित रूप से तो नहीं कह सकते कि इस विश्व को परमेश्वर ने किस तत्व से बनाया ? कब बनाया ? और किस प्रयोजन से बनाया ? केवल इतना ही कह सकते हैं कि परमेश्वर ने हमारे सुख के निमित्त इस सृष्टि को अपने हुक्म से अभाव से भावरूप में ला दिया।

मौलवी मुहम्मद कासिम ने कहा—खुदा ने दुनियां को वज़ूदे खास (अपने स्वरूप) से प्रकट किया। दुनियां की सब चीज़ें मनुष्य के लिए बनाईं। मनुष्य को अपनी इबादत के लिए बनाया। कब बनाया ? इसके जानने की हमें कोई ज़रूरत नहीं। हमें तो केवल संसार के सुखोपभोग से मतलब है। कब रोटी बनाई ? इससे हमें कोई मतलब नहीं। हमें तो रोटी खाने से मतलब है।

दयानन्द सरस्वती ने उपस्थित धर्माधिकारियों और जनता को सम्बोधित करते हुए कहा कि सत्यासत्य का निर्णय करने के लिए परस्पर वैर-विरोध छोड़कर संवाद करना विद्वानों का कर्त्तव्य है। प्रथम प्रश्न का उत्तर देते हुए स्वामीजी ने बताया कि परमात्मा ने अव्यक्त प्रकृति से सृष्टि को उत्पन्न किया। प्रकृति सृष्टि का उपादान कारण है। प्रकृति आदि तथा अन्त से रहित है। अभाव से भाव की उत्पत्ति नहीं हो सकती। वज़ूदे खास (अपने स्वरूप) से भी सृष्टि की उत्पत्ति नहीं मानी जा सकती। यदि ऐसा माना जाए तो सृष्टि का रूप भी परमेश्वर के रूप के समान होना चाहिए। प्रत्येक कार्य अपने कारण के समान गुणों वाला होता है। इस प्रकार संसार में

जितने कपटी, चोर, व्यभिचारी और हत्यारे हैं वे भी परमात्मा के रूप हो जाएंगे।

"सृष्टि कब बनी ?" इसका उत्तर प्रत्येक वैदिक धर्मानुयायी पण्डित शुभ कर्म के प्रारम्भ में संकल्प का उच्चारण करते हुए देता है। वह वर्ष, मास और दिनों की गणना करता हुआ यजमान से संकल्प का पाठ करवाता है। इसके अनुसार १९६०८५२९७६ वर्ष सृष्टिक्रम को हो चुके हैं। २३३३२२७०२४ वर्ष सृष्टि और रहेगी।

परमेश्वर जीव के कर्मों के अनुसार उसे नाना योनियों तथा भिन्न-भिन्न परिस्थितियों में जन्म देता है। परमेश्वर सृष्टि का निमित्त कारण, नियामक अधिष्ठाता है। सृष्टि की उत्पत्ति और प्रलय क्रम-प्रवाह से अनादि है।

सृष्टि के रचने की शक्ति परमेश्वर में स्वाभाविक है। वह अपने सामर्थ्य से सृष्टि का निर्माण इसलिये करता है कि मनुष्य शुभ कर्म करते हुए धर्म, अर्थ, काम, मोक्ष को सिद्धकर परमानन्द को उपलब्ध करे।

इस प्रकार प्रथम प्रश्न का विवेचन करने के अनन्तर स्वामीजी ने पादरियों और मौलवियों की शंकाओं का तर्क द्वारा सन्तोषजनक समाधान किया। स्वामीजी की तेजोमयी वाणी का श्रवण करते हुए जनसमुदाय शान्त भावना से परम-सन्तोष और आह्लाद का अनुभव कर रहा था। दिन के ग्यारह बजे सभा की कार्यवाही कुछ समय के लिए स्थगित हुई।

दोपहर को पुनः सभा का आरम्भ हुआ। आज का दिन हो यह मेला चालू रहना था। सब विषयों पर विचार-विमर्श हो नहीं सकता था। सर्वसम्मति से यह निश्चय किया गया कि पंचम प्रश्न (मुक्ति का स्वरूप क्या है ? उसके प्राप्ति के साधन क्या हैं ?) पर ही परस्पर वार्तालाप हो।

सर्वप्रथम दयानन्द सरस्वती ने अपने वक्तव्य में कहा:— मुक्ति का अर्थ है "छूट जाना"। सब दु:खों से छूटकर सच्चिदानन्द परमात्मा को प्राप्तकर सदा आनन्द में रहना और फिर जन्ममरण के चक्र में चिरकाल तक न गिरना ही मुक्ति है।

मुक्ति का प्रथम साधन सत्याचरण है।

द्वितीय साधन—सत्यविद्या, ईश्वरकृत वेद विद्या का यथावत् स्वाध्याय कर ज्ञान को प्राप्त करना और उसके अनुकूल आचरण,करना।

तृतीय साधन—सत्संग। आचारवान् ज्ञानी पुरुषों की संगति करना।

चतुर्थ साधन—योगाभ्यास द्वारा अपने मन और इन्द्रियों को संयत कर आत्मा को असत्य से निकाल कर सत्य में स्थापित करना।

पंचम साधन—ईश्वर स्तुति=ईश्वर के गुणों का श्रवण और मनन करना।

षष्ठ साधन—ईश्वर प्रार्थना=जब कोई व्यक्ति सच्चे हृदय से ईश्वर का भजन करता है तो करुणानिधान प्रभु उसे परमानंद में स्थिर कर देता है। धर्म, अर्थ, काम और सत्पुरुषार्थ से ही मुक्ति प्राप्त होती है, अन्यथा नहीं।

पादरी साहब ने अपने विचार प्रस्तुत करते हुए कहा— दु:खों से छूटने का नाम मुक्ति नहीं। पापों से बचने और स्वर्ग में पहुँचने का नाम मुक्ति है। परमात्मा ने आदम को पवित्र बनाया था। शैतान ने उसे बहकाकर पाप की ओर प्रवृत्त किया। उसकी सन्तान आदमी भी पाप की ओर प्रवृत्त हो गया। ईसा मसीह पर विश्वास करने से पापों से छुटकारा और मुक्ति प्राप्त हो सकती है।

मौलवी साहब ने कहा—ईश्वर जिसको चाहता है मुक्ति-

प्रदान करता है। जिसको नहीं चाहता उसे मुक्ति नहीं मिल सकती। मुक्ति ईश्वरीय इच्छा पर निर्भर है। हाकिम जिस आदमी से प्रसन्न हो जाता है उसे अपराध से क्षमादान कर देता है, जिससे अप्रसन्न रहता है उसे दण्ड देता है। हाकिम पर विश्वास रखना चाहिए। हाकिम पर विश्वास रखने से बादशाह भी प्रसन्न रहता है। हमारे हाकिम पैगम्बर साहब हैं। उन पर विश्वास रखने से अल्लाह प्रसन्न रहेंगे और मनुष्य मुक्ति को पा सकेगा।

अन्त में स्वामीजी ने प्रभावशाली तर्क और ओजस्विनी वाणी द्वारा ईसाई और मुसलमानों के मतों का खण्डन करते हुए वैदिक मत की सत्यता का प्रतिपादन किया। श्रोतागण स्वामीजी के भाषण का श्रवण कर तथा वैदिकमत की श्रेष्ठता को हृदयंगम कर परम हर्षित मन से उनके प्रति श्रद्धांजलि समर्पित करने लगे।

पंजाब की ओर

चांदपुर से दयानन्द सरस्वती सहारनपुर होते हुए वैशाख कृष्णा ५ सं० १९३४ (३१ मार्च सन् १८७७) के दिन लुधियाना पधारे। लुधियाना में मुंशी कन्हैयालाल अलखधारी दयानन्द सरस्वती के परम भक्त थे। दिल्ली दरबार के समय स्वामीजी के दरबार में उपस्थित सुधारकों में अलखधारी भी विद्यमान थे। वे पंजाब के हिन्दू धर्म के सुधारकों में प्रमुख समझे जाते थे। कुलियात-ए-अलखधारी नामक पुस्तक के रूप में इन्होंने अपने लेख प्रकाशित किये थे। इनमें दयानन्द सरस्वती के प्रति अलखधारी ने नीचे लिखे शब्दों में अपने भाव प्रकट किये थे—

"जो हिन्दू अपने आपको प्राचीन शास्त्रों का भक्त रखना चाहते हैं वे अगर किसी को अपना गुरु बनाना चाहें······या किसी समस्या के समाधान के इच्छुक हों तो······केवल एक

दयानन्द सरस्वती हैं।" अलखधारी के लेखों से पंजाब की शिक्षित हिन्दू धर्मप्रेमी जनता दयानन्द सरस्वती के दर्शन और उपदेश श्रवण की परम उत्सुक थी।

लुधियाना में अलखधारी ने स्वामीजी का परम सम्मान के साथ स्वागत किया। लाला वंशीधरजी के बाग में स्वामी जी के निवास का प्रबन्ध किया। जटमल खजांची के मकान पर व्याख्यानों का प्रबन्ध किया। सहस्रों व्यक्तियों ने व्याख्यानों का लाभ उठाया। यहां रामशरण नामक ब्राह्मण कुछ समय पूर्व ईसाई हो चुका था। वह एक ईसाई स्कूल में अध्यापक था। स्वामीजी के उपदेशामृत के पान से उसके हृदयमें वैदिक धर्म के प्रति श्रद्धा का अंकुर उत्पन्न हुआ। स्वामीजी ने पुन: उसे अपने धर्म में शरण प्रदान की।

वैशाख सुदी ६ सं० १९३४ (१९ अप्रैल सन् १८७७) के दिन स्वामीजी महाराज लाहौर पधारे। रेलवे स्टेशन पर पं० मनफूल भूतपूर्व मीर मुंशी पंजाब सरकार, मुंशी हर सुखराम, कोहनूर पत्र के अध्यक्ष, तथा ब्रह्मसमाज और सत्सभा के कुछ सदस्य स्वागत के लिए उपस्थित थे।

दीवान रतनचन्द दाढ़ीवाले के बाग में स्वामीजी के निवास का प्रबन्ध किया गया।

ब्रह्मसमाज के नेताओं का स्वामीजी को लाहौर बुलवाने का अभिप्राय उन्हें अपने समाज का सदस्य बनाकर ब्रह्मसमाज की शक्ति बढ़ाने का था। वे इसमें सफल न हुए। स्वामीजी सत्यवक्ता थे। वेदों को ईश्वरीय ज्ञान मानने में उनका पूर्ण विश्वास था। ब्रह्मसमाजी इससे सहमत न थे।

स्वामीजी के व्याख्यानों का प्रबन्ध बावली साहब में किया गया। अपने व्याख्यानों में स्वामीजी महाराज ने वेद के स्वरूप का प्रतिपादन करते हुए बतलाया कि वेद ईश्वरीय ज्ञान है।

वेदों के पढ़ने का अधिकार मनुष्यमात्र को समान रूप से है। देव कोई अलग योनि नहीं है। विद्वान् और आचारवान् पुरुष देव कहलाते हैं। वेद में जो अलंकार आए हैं, पुराणों में उन्हें कहानियों का रूप दे दिया गया है। यदि उन अलंकारों को समझने का प्रयत्न किया जाए तो रहस्यमय सत्य का प्रकाश होता है। वेद में वर्णव्यवस्था गुणकर्मानुसार प्रतिपादित है, जन्म से नहीं। इसी जन्म में गुणकर्मानुसार वर्णपरिवर्तन हो सकता है। एक वर्ण दूसरे वर्ण के हाथ का पकाया हुआ भोजन न खाए, ऐसा प्रतिबन्ध वेदों में कहीं नहीं है। बाल विवाह वेदों तथा प्राचीन शास्त्रों के विरुद्ध हैं, मनुष्य जाति के लिए हानिकारक है। मूर्तिपूजा का विधान वेदों में कहीं नहीं है। एक निराकार अजन्मा, अनन्त ईश्वर की आराधना मनुष्यमात्र को करनी चाहिये।

स्वामीजी की तर्कपूर्ण ओजस्विनी वाणी का श्रवणकर शिक्षित जनसमुदाय में वेदों तथा प्राचीन शास्त्रों के प्रति श्रद्धा का संचार होने लगा। ब्रह्मसमाज के नेताओं और पौराणिक पन्थी पुरोहितों के हृदयों में आतंक छाने लगा। वे दीवान रतनचन्द दाढ़ी वाले के पुत्र दीवान भगवानदास के पास पहुंचे। दयानन्द सरस्वती को अपनी कोठी से निकालने का अनुरोध किया। दीवान भगवानदास उनके कहने में आ गए। स्वामीजी से अपने निवास का अन्यत्र प्रबन्ध करने के लिए निवेदन किया। स्वामीजी निर्भय सत्यवक्ता थे। उनके मन में भय और चिन्ता का स्थान न था। उसी समय वे वहां से चल पड़े।

खान बहादुर डा० रहीमखां ने सहर्ष दयानन्द सरस्वती के निवास का प्रबन्ध अपनी कोठी में कर दिया। आर्यसमाज डा० रहीमखां के इस उदार कार्य के लिए सदा उनका कृतज्ञ रहेगा। अब यहीं स्वामीजी के व्याख्यान होने लगे। श्रद्धालु

जनों की संख्या में प्रतिदिन वृद्धि होने लगी।

एक दिन पं० मनफूल ने स्वामीजी महाराज से निवेदन किया—महाराज, यदि आप मूर्तिपूजा का खण्डन न करें तो कश्मीर नरेश आप से बहुत प्रसन्न होंगे। महाराज ने उत्तर दिया कि—मैं महाराजा कश्मीर को प्रसन्न करने का प्रयत्न करूं या वेदों में प्रतिपादित ईश्वर की आज्ञा का पालन कर उस विश्वपति परमपिता को प्रसन्न करूँ ?

डा० रहीमखां की कोठी पर ईसाई पादरियों के साथ भी स्वामी जी का वार्तालाप हुआ। उन्हें महाराज ने अश्वमेध आदि यज्ञों के स्वरूप को समझाते हुए बतलाया कि इनमें पशुवध का कहीं प्रतिपादन नहीं।

दो मास तक निरन्तर स्वामीजी के व्याख्यानों और भक्तजनों की शंकाओं के समाधान का यह परिणाम हुआ कि जनसाधारण की वैदिक धर्म में श्रद्धा बढ़ी। कुछ मूर्तिपूजकों ने अपने घरों में रखी हुई मूर्तियां रावी नदी में फेंक दीं।

जो नवशिक्षित जनसमुदाय हिन्दू धर्म की कुरीतियों को देखकर ईसाई धर्म की ओर झुक रहा था, उसके मन में वैदिक शास्त्रों के प्रति पुनः श्रद्धा की भावना जागृत हुई।

भक्तजनों ने दयानन्द सरस्वती से लाहौर में आर्यसमाज की स्थापना के लिए विनयपूर्वक प्रार्थना की। महाराज ने प्रसन्न होकर उनके प्रस्ताव को स्वीकृत किया।

ज्येष्ठ शुक्ला १३ सं० १९३४ (२४ जून सन् १८७७) के दिन लाहौर में डा० रहीमखां की कोठी पर आर्यसमाज की स्थापना हुई। सर्वप्रथम ईश्वरोपासना और हवन किया गया। उसके अनन्तर विधिवत् आर्यसमाज की स्थापना की घोषणा की गई।

बम्बई में आर्यसमाज की स्थापना के अवसर पर आर्य-

समाज के अट्ठाइस नियम प्रचारित किये गए थे। यहां उनमें संशोधन कर दस नियमों को स्वीकार किया गया। यही दस नियम आर्यसमाज में प्रवेश के लिए स्थायी नियम हैं। आर्य समाज के दस नियम यै हैं :

१—सब सत्य विद्याएं और जो पदार्थ विद्या से जाने जाते हैं उन सबका आदि मूल परमेश्वर है।

२—ईश्वर सच्चिदानन्द स्वरूप, निराकार, सर्वशक्तिमान्, न्यायकारी, दयालु, अजन्मा, निर्विकार, अनादि, अनुपम, सर्वाधार, सर्वव्यापक, सर्वान्तर्यामी, अजर, अमर, अभय, नित्य, पवित्र और सृष्टिकर्त्ता है। उसी की उपासना करनी योग्य है।

३—वेद सब सत्य विद्याओं का पुस्तक है : वेद का पढ़ना-पढ़ाना, सुनना-सुनाना सब आर्यों का परम धर्म है।

४—सत्य के ग्रहण करने और असत्य के छोड़ने में सर्वदा उद्यत रहना चाहिये।

५—सब काम धर्मानुसार अर्थात् सत्य-असत्य को विचार करके करने चाहियें।

६—संसार का उपकार करना इस समाज का मुख्य उद्देश्य है अर्थात् शारीरिक, आत्मिक और सामाजिक उन्नति करना।

७—सब से प्रीतिपूर्वक धर्मानुसार यथायोग्य वर्तना चाहिये।

८—अविद्या का नाश और विद्या की वृद्धि करनी चाहिये।

९—प्रत्येक को अपनी ही उन्नति में सन्तुष्ट नहीं रहना चाहिए किन्तु सबकी उन्नति में अपनी उन्नति समझनी चाहिये।

१०—सब मनुष्यों को सामाजिक सर्वहितकारी नियस पालने में परतंत्र रहना चाहिए और प्रत्येक हितकारी नियम में स्वतन्त्र रहें।

ब्रह्मसमाज के सदस्यों ने दयानन्द सरस्वती से निवेदन

किया कि यदि आप तृतीय नियम का निराकरण कर दें तो हम भी आर्यसमाज में सम्मिलित हो सकेंगे। स्वामीजी महाराज ने उनके इस निवेदन को स्वीकार नहीं किया।

पांच जुलाई सन् १८७७ के दिन दयानन्द सरस्वती लाहौर से अमृतसर पधारे। यहां अंग्रेजी दैनिक ट्रिब्यून के संस्थापक सरदार दयालसिंह मजीठिया ने स्वामीजी के निवास का प्रबन्ध मियां मुहम्मद जान रईस की कोठी पर किया। यहाँ भी नित्य व्याख्यान और शंका समाधान होते रहे। बारह अगस्त सन् १८७७ के दिन अमृतसर में भी आर्यसमाज की स्थापना हो गई। यहीं पर पन्द्रह अगस्त सन् १८७७ के दिन आर्योद्देश्य रत्न माला की रचना समाप्त हुई।

अमृतसर से श्रावण शुक्ला ६ सं० १६३४ (१८ अगस्त सन् १८७७) के दिन स्वामीजी महाराज गुरुदासपुर पधारे। कुछ दिन प्रचार कार्य के प्रभाव से २४ अगस्त सन् १८७० के दिन गुरुदासपुर में आर्यसमाज की स्थापना हो गई।

गुरुदासपुर से अमृतसर होते हुए सरस्वती जी जालन्धर पधारे। जालन्धर में सरदार सुचेतसिंह की कोठी पर निवास किया। यहाँ महाराज के ३५ व्याख्यान हुए। एक दिन सरदार विक्रमसिंह ने स्वामीजी महाराज से कहा कि आप ब्रह्मचर्य की महिमा का बहुत वर्णन करते हैं। हम कैसे समझें कि ब्रह्मचारी में अतुल्य बल होता है? उस समय महाराज शान्त रहे। एक दिन सरदार विक्रमसिंह दो घोड़ों की गाड़ी पर सवार हुए। महाराज ने चुपके से गाड़ी के पिछले पहिये को पकड़ लिया। कोचवान ने गाड़ी को चलाना चाहा, पर गाड़ी न चल सकी। घोड़ों को चाबुक लगाया पर घोड़े एक पग भी आगे न बढ़ सके। सरदार विक्रमसिंह ने पीछे की ओर देखा तो स्वामीजी महाराज गाड़ी का पहिया पकड़े हुए खड़े थे और

मुस्करा रहे थे। सरदार विक्रमसिंह ने ब्रह्मचर्य के बल का प्रत्यक्ष प्रमाण पाया। स्वामीजी महाराज के प्रति श्रद्धान्वित होकर उनके चरण स्पर्श किए।

यहाँ स्वामीजी ने एक ईसाई को शुद्ध कर पुनः वैदिक धर्म में प्रवेश कराया।

जालन्धर से लाहौर होते हुए छब्बीस अक्टूबर के दिन दयानन्द सरस्वती फीरोज़रपुर पधारे। यहां स्वामीजी महाराज के आठ व्याख्यान हुए। व्याख्यानों के साथ शङ्कासमाधान भी होते रहे। अपने एक भक्त स्वरूपसिंह को महाराज ने कुछ योग के रहस्य भी बतलाए। उनके जाने के बाद भक्तजनों ने पांच नवम्बर सन् १८७७ के दिन फीरोजपुर में आर्यसमाज की स्थापना की।

पांच नवम्बर को महाराज़ पुनः लाहौर पधारे। छः नवम्बर के दिन लाहौर आर्यसमाज की अन्तरङ्ग सभा में उपनियम स्वीकृत होने थे। सदस्यों ने महाराज से अन्तरङ्ग सभा में पधार कर उपनियमों के विषय में अपनी सम्मति प्रकट करने की प्रार्थना की, पर महाराज ने अन्तरङ्ग सभा का सदस्य न होने के कारण सम्मिलित होना स्वीकार न किया। इस पर उन्हें नियमानुसार सदस्य बनाकर अन्तरङ्ग सभा में उपस्थित होने के लिए विनति की। स्वामीजी महाराज के परामर्श के अनुसार उपनियम बनाए गए।

सात नवम्बर के दिन दयानन्द सरस्वती रावलपिण्डी पधारे। यहाँ मूर्तिपूजा के खण्डन के साथ ईसाई मुसलमानों के मत की बुराइयों का भी प्रदर्शन करते हुए वैदिक धर्म की प्रतिष्ठा पर अनेक व्याख्यान दिये। आर्यसमाज की स्थापना की। भक्त किशनचन्द आर्यसमाज के मन्त्री और ला० गोपीचंद सहकारी मन्त्री नियुक्त हुए।

तीस नवम्बर के दिन स्वामीजी महाराज रावलपिण्डी से जेहलम पधारे। यहाँ वैदिक धर्म का प्रचार और आर्यसमाज की स्थापना के अनन्तर तेरह जनवरी के दिन गुजरात पधारे।

गुजरात में शिक्षित हिन्दू वर्ग पर ईसाई धर्म का प्रभाव था। स्वामीजी महाराज ने ईसाई धर्म की बुराइयों और मिथ्या सिद्धान्तों का खण्डन किया। पादरियों से शास्त्रार्थ भी किया। हिन्दू धर्म की कुरीतियों पर भी प्रकाश डालते हुए वेद के महत्व ब्रह्मचर्य तथा सन्ध्या पर प्रभावशाली व्याख्यान दिये। महाराज के व्याख्यानों से प्रभावित होकर एक मौलवी ने गायत्री मन्त्र के जप का संकल्प किया।

यहाँ महाराज के व्याख्यानों में ईंट पत्थर की वर्षा भी हुई पर उन्होंने पुष्पवर्षा के समान अनुभव किया। मन में किसी प्रकार की उत्तेजना न थी, स्थिरचित्त होकर प्रचार करते रहे। यहां से वज़ीरावाद होते हुए गुजरांवाला पधारे। यहां भी ईसाई पादरी सोलफ़ीट के साथ स्वामीजी महाराज का, शास्त्रार्थ हुआ। शास्त्रार्थ का विषय था "जीव और ईश्वर में भेद और उनके परस्पर सम्बन्ध क्या हैं?" महाराज ने बहुत सरल तथा सरस तर्क के द्वारा वैदिक मत का प्रतिपादन किया। फाल्गुन कृष्णा ३ सं० १९३४ (३ मार्च सन् १८७७) के दिन यहाँ भी आर्यसमाज की स्थापना हो गई।

गुजरांवाला से लाहौर होते हुए स्वामीजी महाराज मुलतान पधारे। मुलतान में इन दिनों गोकुलिये गोसाइयों का बहुत प्रचार था। महाराज ने उनकी लीलाओं का खण्डन किया। छत्तीस दिन मुलतान में रहे। पैंतीस व्याख्यान दिये। व्याख्यानों में वैदिक सिद्धान्तों के महत्व और हिन्दू धर्म में पाई जाने वाली कुरीतियों पर प्रकाश डाला। ईसाई मुसलमानों के साथ धार्मिक विषयों पर वार्तालाप करते रहे। चार अप्रैल के दिन मुलतान

में आर्यसमाज की स्थापना की।

सोलह अप्रैल के दिन स्वामीजी महाराज पुनः लाहौर पधारे। चौदह मई तक लाहौर में अपनी अमृत वर्षा से भक्त-जनों को तृप्त करते रहे। यहां से अमृतसर में पदार्पण किया। अमृतसर में पुराणपन्थी पण्डितों और ईसाइयों ने महाराज के साथ शास्त्रार्थ के लिए कोलाहल तो बहुत किया, पर तैयार न हो सके। ईसाइयों ने अपने प्रचारक खंगसिंह को इसके लिए बुलवाया पर वह महाराज के दर्शन पाकर श्रद्धा से उनके चरणों में गिर पड़ा और वैदिक धर्म में शरण ले ली। खंगसिंह बारह वर्ष से ईसाई धर्म में रहकर उसका प्रचार करता रहा था। अन्य चालीस नवशिक्षित हिन्दू युवक जो ईसाई धर्म में प्रविष्ट होना चाहते थे, वे भी महाराज के भक्त बन गए।

पंजाब में दयानन्द सरस्वती की यह स्वल्पकाल की प्रचार यात्रा बहुत सफल रही। यहाँ इन दिनों ईसाई पादरियों ने अपने धर्म के प्रचार का जाल बिछा रखा था। ईसाइयों की ओर से नगरों और कस्बों में स्कूल खोले जा रहे थे। अंग्रेजी शिक्षा का क्षेत्र इन्हीं के हाथ में था। शिक्षित नवयुवकों को नौकरी का लालच दिया जाता था। हिन्दू धर्म में ऊँच-नीच का भेदभाव बहुत अधिक था। नीच समझे जाने वाले वर्ग के लिए हिन्दू धर्म का परित्याग कर ईसाई मत में आने के अति-रिक्त और कोई उन्नति का मार्ग न था। वे सम्मानपूर्वक जीवन व्यतीत करने के लिए ईसाई धर्म में प्रवेश कर रहे थे। हिन्दूधर्म में पाखण्ड लीला का प्रसार था। सामाजिक कुरीतियों और संकुचित दृष्टिकोण के कारण समझदार हिन्दू युवक इस धर्म से विमुख हो रहे थे।

पंजाब की जनता स्वभावतः श्रद्धालु और सहृदय है। स्नेह और विवेकपूर्ण युक्तिवाद के द्वारा उनके मस्तिष्क पर

विजय पाई जा सकती है। पंजाबी एक बार सोच समझ कर निश्चय कर ले तो उस काम के करने में विलम्ब नहीं करता।

दयानन्द सरस्वती का ऊँचा कद, सुसंगठित मांसपेशियाँ, तेजोमय मुखमण्डल और गेरूए वस्त्रों की आभा देखते ही जन-साधारण श्रद्धा से नतमस्तक हो जाता था। वे सत्य के निर्भय वक्ता थे। स्वार्थ और लोभ का लेश न था। जन-कल्याण की कामना थी। वैदिक धर्म के पुनरुत्थान की भावना थी। भारत के प्राचीन गौरव को जागृत करने की लालसा थी। वेद और प्राचीन शास्त्रों के वे प्रकाण्ड पण्डित थे। अनुपम सूझ थी। प्रतिभाशाली तार्किक थे।

पंजाब की जनता ने वैदिक धर्म के सत्यस्वरूप को दयानन्द सरस्वती की ओजस्विनी वाणी द्वारा सुना। उसे हृदयंगम किया। ईसाई धर्म की ओर बहती हुई धारा सहसा रुक गई। हिन्दू धर्म की पाखण्ड लीला और कुरीतियों से विरक्त जन-समुदाय दयानन्द सरस्वती की शरण में आया। उत्साह भरे हृदय से दयानन्द सरस्वती का स्वागत किया। प्रत्येक नगर में आर्यसमाज की स्थापना होने लगी। वेदों का डंका बजने लगा। सारे भारत में पंजाब महर्षि दयानन्द सरस्वती के भक्तों में अग्रगण्य हो गया।

उत्तरप्रदेश-विहार

अमृतसर से लुधियाना तथा अम्बाला होते हुए दयानन्द सरस्वती श्रावण वदी १५ सं० १९३५ के दिन रुड़की पधारे। रुड़की में दिल्लीनिवासी ला० शम्भुनाथजी की कोठी पर निवास किया। स्वामीजी महाराज के यहां पहुँचते ही सर्वत्र उनके आगमन का समाचार फैल गया। उनका प्रथम व्याख्यान अपने निवास स्थान पर "ईश्वरोक्त ज्ञान" पर हुआ। अगले दिन से आरमन स्कूल के समीप के मैदान में व्याख्यानों का

प्रबन्ध किया गया। व्याख्यानों के विषय थे—सत्यधर्म और वेद, मूर्ति पूजा, आवागमन, इंजील और कुरान की शिक्षा, पाश्चात्य दर्शन, डार्विन के सिद्धान्त, पुराणों में बुद्धिविरुद्ध गाथाएं।

वैदिक धर्म के सिद्धान्तों पर प्रकाश डालते हुए दयानन्द सरस्वती ने निर्भयतापूर्वक कुरान और इंजील के उद्धरण देते हुए उनके दार्शनिक सिद्धान्तों को तर्कविरुद्ध सिद्ध किया। दोनों धर्मों के चित्र खींचकर श्रोताओं के समक्ष रखते हुए वैदिक धर्म की श्रेष्ठता का प्रतिपादन किया। प्रचलित हिन्दू धर्म की कुप्रथाओं और कपोलकल्पित गाथाओं की कड़ी आलोचना की। इन व्याख्यानों में साधारण जनता के साथ इंजिनीयरिंग कालेज के छात्र, प्रोफेसर तथा अन्य शिक्षितजन भी उत्साह के साथ बड़ी संख्या में आते थे। वे सभी दयानन्द सरस्वती की सरल तथा मनोरंजक विषय-निरूपण शैली और विवेकपूर्ण-तर्क से प्रभावित थे।

इंजिनीयरिंग कालेज के छात्र तथा प्रोफेसर स्वामीजी महाराज के साथ वैज्ञानिक विषयों पर भी वर्तालाप करते रहे। दयानन्द सरस्वती ने उन्हें वेद मन्त्रों के उद्धरण देकर बतलाया कि वैज्ञानिक सिद्धान्तों के आधार वेदों में सूत्र रूप से विद्यमान हैं।

एक मास तक रुड़की में वैदिक धर्म का प्रचार करते हुए यहां आर्यसमाज की स्थापना की।

रुड़की से प्रस्थान कर दयानन्द सरस्वती अलीगढ़ रुक कर हुए भाद्रपद वदी १३ सं० १९३५ (२६ अगस्त सन् १८७८) के दिन मेरठ पधारे। यहां बाबू दामोदरदास की कोठी पर निवास किया। एक सितम्बर से स्वामीजी महाराज के व्याख्यानों और शङ्कासमाधान का सिलसिला शुरू हो गया। धर्माधर्म का स्वरूप, ईश्वर स्तुति, प्रार्थना उपासना, मृतक श्राद्ध

का खण्डन आदि विषयों पर प्रभावशाली व्याख्यान हुए। २९ सितम्बर सन् १८७८ के दिन यहां आर्यसमाज की स्थापना हो गई। प्रारम्भ में ८१ सदस्य बने। ला० रामशरणदास प्रधान चुने गए।

आश्विन सुदी १२ सं० १९३५ (९ अक्टूबर सन् १८७८) के दिन स्वामीजी महाराज मेरठ से दिल्ली पधारे। यहां सब्जीमण्डी में ला० बालमुकुन्द केशरीचन्द के उद्यान में निवास किया। १३ अक्टूबर से मोहल्ला शाहजी के छत्ते में महाराज के व्याख्यान होने लगे। उपदेशों के अनुपम प्रभाव से नवम्बर के अन्तिम सप्ताह में दिल्ली में आर्यसमाज की स्थापना हो गई।

दिल्ली से अजमेर, मसूदा, नसीराबाद छावनी, जयपुर, रिवाड़ी में वैदिक धर्म का प्रचार करते हुए दयानन्द सरस्वती पुनः दिल्ली पधारे। दिल्ली में दो-तीन व्याख्यान देकर सं० १९३६ के हरिद्वार में कुम्भ के मेले के अवसर पर प्रचार के निमित्त चल दिये। मार्ग में मेरठ, सहारनपुर, रुड़की में भक्तजनों के साथ धर्मालाप करते हुए फाल्गुन शुक्ला ६ सं० १९३५ (२० फरवरी सन् १८७९) के दिन ज्वालापुर पहुँचे। यहाँ मूला मिस्त्री के उद्यान में कुछ दिन निवास किया। २७ फरवरी के दिन हरिद्वार में मूला मिस्त्री के खेत में निर्मलों की छावनी के सामने बुचनाले के पार छप्परों का विश्राम-गृह बनाकर डेरा लगाया।

मेले में सर्वत्र दयानन्द सरस्वती के आगमन का समाचार फैल गया। नित्य धर्मोपदेश, परस्पर वार्तालाप और शङ्का समाधान होते रहे। प्रातः सात बजे से ग्यारह बजे तक, एक बजे से पांच बजे तक, पुनः सायं सात बजे से रात्रि नौ बजे तक स्वामीजी महाराज का प्रचार कार्य चलता रहता था। नौ बजे के पश्चात्

कुछ घण्टे ही महाराज शयन करते थे। शेष समय ध्यान समाधि और भगवद् भजन में रत रहते थे। निरन्तर कठिन परिश्रम के कारण स्वामीजी महाराज रोगग्रस्त भी हो गए।

हरिद्वार में कुम्भ के मेले के अवसर पर प्रचार कार्य समाप्त कर दयानन्द सरस्वती वैशाख वदी ८ सं० १९३६ के दिन देहरादून पधारे। रोगग्रस्त होने के कारण कुछ दिन विश्राम कर उपदेश देना आरम्भ कर दिया। वैशाख सुदी ९ सं० १९३६ के दिन भक्तजनों ने यहां आर्यसमाज की स्थापना कर दी। देहरादून निवासकाल में स्वामीजी महाराज ने एक जन्म के मुसलमान मुहम्मद उमर को वैदिक धर्म की दीक्षा देकर उसका नाम अलखधारी रखा।

देहरादून से वैशाख सुदी १० सं १९३६ के दिन दयानन्द सरस्वती सहारनपुर पधारे। सहारनपुर में अमरीका से थियासोफिकल सोसाइटी के प्रवर्त्तक कर्नल अल्काट और मैडम ब्लैवट्सकी महाराज से मिलने आए हुए थे। दोनों विशिष्ट अतिथियों के साथ स्वामीजी महाराज ने वैशाख सुदी १२ के दिन मेरठ में पदार्पण किया। मेरठ में दयानन्द सरस्वती को दो पश्चिम देश निवासी शिष्यों के साथ देखकर भक्तजनों का मन अत्यन्त हर्ष और उत्साह से उल्लासपूर्ण था। स्वामीजी महाराज तथा दोनों विशिष्ट अतिथियों का पृथक् निवास का प्रबन्ध किया गया। वैशाख सुदी ९ से महाराज के व्याख्यानों का सिलसिला जारी हो गया। कर्नल अल्काट और मैडम ब्लैवट्सकी के भी व्याख्यान होने लगे। इन दोनों ने भी ईसाई मत की तर्कविरुद्ध बातों पर प्रकाश डालते हुए वेदों के महत्त्व का निरूपण किया।

कर्नल अल्काट और मैडम ब्लैवट्सकी स्वामीजी के निवास स्थान पर आकर उनके साथ शास्त्र चर्चा तथा

योगाभ्यास के विषय में वार्तालाप करते रहते थे। एक दिन उन्होंने स्वामीजी से विनयपूर्वक पूछा—महाराज ! आचार्य शङ्कर ने अपनी आत्मा को अपने शरीर से निकाल कर एक राजा के शरीर में प्रविष्ट किया, इस विषय में आपके क्या विचार हैं ? महाराज ने उत्तर दिया कि शङ्कराचार्य का इस प्रकार परकाया-प्रवेश एक ऐतिहासिक विषय है। इतना तो मैं भी दिखला सकता हूं कि जिस अङ्ग में चाहूं अपनी जीवन शक्ति केन्द्रीभूत कर दूं। शेष शरीर जीवनशून्य प्रतीत होगा।

कुछ दिन तक स्वामीजी महाराज के सत्संग का लाभ उठा कर दोनों अतिथि महोदय बम्बई चले गए।

मेरठ से दयानन्द सरस्वती अलीगढ़ और जलेसर होते हुए मुरादाबाद पधारे। यहां अपने भक्त जयकिशनदास के बंगले पर निवास किया। मेरठ से प्रस्थान के बाद दयानन्द सरस्वती कुछ रोगग्रस्त हो गए थे, अतः निर्बलता के कारण यहां तीन व्याख्यान ही दे सके। एक व्याख्यान मुरादाबाद के कलक्टर स्पेडिङ्ग महोदय की प्रार्थना पर छावनी में हुआ। इसमें कुछ अंग्रेज पदाधिकारी भी उपस्थित थे। स्वामीजी महाराज ने राजधर्म के ऊँचे सिद्धान्तों का निरूपण करते हुए शासकों के कर्त्तव्यों पर प्रकाश डाला। शासन में पक्षपात आदि दोषों को दूर करने का अनुरोध किया।

स्पेडिङ्ग महोदय इस व्याख्यान से बहुत प्रभावित हुए। उन्होंने स्वामीजी महाराज का धन्यवाद करते हुए कहा कि यदि इस नीति के अनुसार शासकों के जनता के साथ सम्बन्ध हो जाएं तो कभी विद्रोह न होने पाएं। प्रजा सुखी रहे।

श्रावण सुदी १ सं० १९३६ (२० जुलाई सन् १८७९) के के दिन राजा जयकिशनदास के बङ्गले पर विधिवत् यज्ञ करके आर्यसमाज की स्थापना की गई। स्वामीजी महाराज ने सब

सदस्यों को परस्पर मिलते समय सम्मान और स्नेह प्रकट करने के लिए "नमस्ते" शब्द के प्रयोग का आदेश दिया।

कायमगंज निवासी श्री रामलालजी स्वामीजी महाराज से यज्ञोपवीत ग्रहण करना चाहते थे। महाराज ने उन्हें विधिवत् यज्ञोपवीत धारण करा गायत्री मन्त्र का सस्वर उच्चारण कर उसका अर्थ समझाया।

एक दिन रामलालजी ने महाराज से विनम्रभाव से बात-चीत के सिलसिले में निवेदन किया कि आप ऐसे सुयोग्य शिष्यों का प्रशिक्षण क्यों नहीं करते जो आपके इस महान् कार्य का संचालन करे। त्यागभाव के साथ आपके आदर्श का पालन करते हुए वैदिक धर्म की ध्वजा को सर्वत्र फहराएं ?

महाराज ने कहा—प्रिय रामलाल ! मैंने इसके लिए बहुत प्रयत्न किया। वाराणसी आदि स्थानों में पाठशालाएं खोलीं। विद्वान् पण्डितों को वहाँ विद्यादान के लिए बिठाया, पर पण्डित-गण स्वार्थवश तथा परम्परागत अज्ञानवश पुराणपन्थी ही बने रहे। वे वैदिक आदर्श के प्रतिकूल ही शिष्यों को शिक्षा देते रहे। अब मुझे निश्चय हो गया है कि इस जन्म में तो मुझे सुपात्र शिष्य नहीं मिल सकता। मैंने अपने यौवनकाल में वैराग्य भावना से माता-पिता का परित्याग किया। उनकी सेवा सुश्रूषा नहीं की। पितृ ऋण से मुक्त नहीं हो सका। मृत्यु पर विजय प्राप्त करने की इच्छा से योगाभ्यास की ओर प्रवृत्त रहा। इन कर्मों के कारण मैं विश्वासी सुपात्र शिष्य नहीं प्राप्त कर सका। मुझे आशा है कि भविष्य में आर्यसमाज में ऐसे उत्साही, त्यागी विद्वान् पुरुष अवश्य प्रकट होंगे जो वैदिक आदर्श का विश्व में विस्तार करेंगे।

मुरादाबाद से दयानन्द सरस्वती श्रावण सुदी १३ सं० १९३६ के दिन बदायूं पधारे। बदायूं में महाराज के आगमन से पूर्व

ही आर्यसमाज स्थापित हो चुकी थी। यहां भक्तजनों को अपने उपदेशामृत से तृप्त कर भाद्रपद वदी १२ के दिन बरेली में पदार्पण किया। बरेली में बेगमबाग में ला० लक्ष्मीनारायण की कोठी पर निवास किया।

चांदपुर के "मेला ब्रह्म विचार" के अवसर पर बरेली के ईसाई पादरी स्काट महोदय का दयानन्द सरस्वती के साथ संवाद हुआ था। उसी समय से स्काट महोदय स्वामीजी के श्रद्धालु भक्त हो गए थे। बरेली में स्काट महोदय का स्वामी जी के साथ पुनः कुछ विषयों में प्रेमपूर्ण संवाद हुआ।

एक दिन स्वामीजी के व्याख्यान की समाप्ति पर भक्तजनों ने प्रार्थना की कि महाराज ! कल रविवार है। यदि आप अपने व्याख्यान का समय एक घण्टा पहले करदें तो अनुग्रह होगा। व्याख्यान का स्थान निवास-स्थान से दूर था। ला० लक्ष्मी नारायण ने कहा कि मैं अपनी गाड़ी आपके पास समय से एक घण्टा पूर्व भेज दूंगा। गाड़ी समय पर न पहुंची। श्रोतागण व्याख्यान-स्थली पर स्वामीजी महाराज की प्रतीक्षा कर रहे थे। स्वामीजी समय का व्यतिक्रम नहीं किया करते थे। बहुत समय तक प्रतीक्षा करने के बाद वे पैदल चल पड़े। मार्ग में गाड़ी मिली। व्याख्यान प्रारम्भ करते समय स्वामीजी ने कहा— उपस्थित सज्जनो ! इस विलम्ब में मेरा दोष नहीं। बहुत समय तक प्रतीक्षा करने के बाद मैं पैदल चल पड़ा। मार्ग में गाड़ी मिली। पौन घण्टा विलम्ब हो गया। यह दोष बच्चों के बच्चों का है। बाल-विवाह की सन्तानों में ऐसी निर्बलताएं स्वाभाविक हैं।

स्वामीजी के एक व्याख्यान में पादरी स्काट के साथ बरेली के कमिश्नर मि० ऐडवर्ड, कलक्टर मि० रेड तथा अन्य पन्द्रह बीस अंग्रेज सज्जन उपस्थित थे। स्वामीजी पुराणों की

असम्भव कथाओं का खण्डन कर रहे थे। पुराणों में वर्णित पंचकुमारियों की चर्चा करते हुए महाराज ने पौराणिकों की बुद्धि पर खेद प्रकट किया और कहा कि ये लोग द्रौपदी के पांच पति मानते हुए भी उसे कुमारी कहते हैं। इन के विश्वास के अनुसार कुन्ती, तारा, मन्दोदरी भी कुमारी थीं। इस प्रकार की कथाएं पौराणिक आचारवाद को कितना हीन बना देती हैं?

अंग्रेज श्रोतागण इन आलोचनाओं को सुनकर विनोदपूर्ण परिहास कर रहे थे। पौराणिक लीला का वर्णन कर स्वामीजी ने कहा—'यह तो पुराणियों की लीला है, अब किरानियों (ईसाइयों) की लीला सुनो। ये लोग कुमारी के गर्भ से पुत्र की उत्पत्ति मानते हैं और दोष सर्वज्ञ, शुद्ध स्वरूप परमात्मा पर लगाते हैं। ऐसा घोर पाप करते हुए तनिक भी लज्जित नहीं होते।'

अपने मत की यह आलोचना सुनकर कमिश्नर और कलक्टर महोदय का विनोदपूर्ण मुखमण्डल क्रोधावेश में परिणत हो गया। महाराज उसी प्रकार शान्त और गम्भीर भावना के साथ ईसाई मत की आलोचना करते रहे।

दूसरे दिन कमिश्नर महोदय ने ला० लक्ष्मीनारायण को बुलवाकर कहा कि पण्डित दयानन्द से कह दो कि वे इतने कठोर शब्दों में आलोचना न किया करें। हम ईसाई पुरुष तो सभ्य और सहनशील हैं परन्तु अशिक्षित हिन्दू और मुसलमानों में उत्तेजना फैल गई तो पण्डित दयानन्द के व्याख्यान बन्द हो जायेंगे।

ला० लक्ष्मीनारायण दुविधा में पड़ गए। दयानन्द सरस्वती को कमिश्नर का सन्देश देने का उनमें साहस न था। कमिश्नर महोदय की आज्ञा का पालन भी उनके लिए आवश्यक था।

अपने मित्रों से उन्होंने प्रार्थना की कि वे कमिश्नर महोदय का सन्देश स्वामीजी तक पहुँचा दें, पर कोई इस प्रकार का साहसी पुरुष न था जो इस निर्भय सिंह के सामने कुछ बोल सके। अन्त में ला० लक्ष्मीनारायण एक साथी के साथ दयानन्द सरस्वती के निवास स्थान पर पहुँचे। कुछ समय सिर खुजलाते रहे। बोलने की चेष्टा करने लगे पर वाणी में स्पन्दन न हुआ। बहुत कठिनाई से लड़खड़ाती वाणी में कहा—महाराज ! यदि बोलने में सख़्ती न की जाये तो क्या हर्ज़ है ? इससे असर अच्छा पड़ता है। अंग्रेज़ों को नाराज़ करना भी अच्छा नहीं।

स्वामीजी महाराज मुस्कराकर बोले—तुम्हें साहब ने कहा होगा कि तुम्हारा पण्डित कठोर शब्दों में आलोचना करता है। उसके व्याख्यान बन्द हो जायेंगे। यह होगा, वह होगा। अरे भाई मैं कोई हव्वा तो नहीं हूं जो तुम्हें खा जाऊंगा। उसने तुमसे कहा, तू मुझ से कह देता। व्यर्थ समय क्यों गंवाया ?

एक विश्वासी पुरुष भी वहां बैठा था। वह बोला—देखो यह तो कोई अवतारी पुरुष है जो मन की बात जान जाता है।

उसी दिन स्वामीजी का "आत्मा के स्वरूप" पर व्याख्यान हुआ। पादरी स्काट के अतिरिक्त अन्य सब अंग्रेज व्याख्यान में उपस्थित थे। स्वामीजी महाराज सत्य के महत्व पर प्रकाश डालते हुए सिंह गर्जना के साथ बोले—लोग कहते हैं सत्य को प्रकट न करो। कमिश्नर अप्रसन्न होगा। कलक्टर पीड़ा देगा। अरे चक्रवर्ती राजा भी क्यों न अप्रसन्न हो हम तो सत्य ही कहेंगे। इसके बाद उपनिषद् का एक वाक्य पढ़ते हुए उपस्थित जनता को समझाया कि इस आत्मा को कोई हथियार छेद नहीं सकता। इसे आग जला नहीं सकती। यह शरीर तो अनित्य है। इसकी रक्षा में प्रवृत्त होकर अधर्म करना व्यर्थ है। इसे जिसका जी चाहे नष्ट कर दे। इसके अनन्तर चारों ओर

ग्रपने ग्रोजस्विनी नेत्रों की ज्योति का प्रकाशकर घोषणा की कि मुझे वह शूरवीर दिखलाग्रो जो यह कहता हो कि वह मेरे ग्रात्मा का नाश कर सकता है ? जब तक ऐसा वीर पुरुष संसार में नहीं दिखाई देता तब तक मैं सोचने के लिए भी तैयार नहीं हूं कि मैं सत्य को दबाऊं या नहीं।

स्वामीजी की इस निर्भय घोषणा को सुनकर श्रोताजनों में सन्नाटा छा गया।

इन दिनों स्वर्गीय स्वामी श्रद्धानन्द (महात्मा मुंशीराम) भी बरेली में थे। उनके पिता यहां शहर कोतवाल थे। नवयुवक मुंशीराम बनारस में एक कालेज में शिक्षा ग्रहण कर रहे थे। पाश्चात्य शिक्षा में दीक्षा पा रहे इस नवयुवकमें नास्तिकता का समावेश हो गया था। प्राचीन संस्कृत ग्रन्थों में उसकी ग्रश्रद्धा थी। कालेज में ग्रवकाश के कारण बरेली में पिता के पास ग्राए थे। एक दिन पिता-पुत्र दोनों इकट्ठे इस गेरुवे वस्त्रधारी बाबा के उपदेश सुनने गए। मुंशीराम पर इस बाबा की वाणी के चमत्कार का प्रभाव पड़ा। वह प्रतिदिन नियमानुसार व्याख्यान सुनने ग्राने लगा। दयानन्द सरस्वती के "ईश्वर के स्वरूप" के विषय में व्याख्यान को सुनकर उसका नास्तिकता विषयक तर्क कुण्ठित हो गया। स्वामीजी महाराज के चरणों में ग्राकर मुंशीराम ने ईश्वर की सत्ता के विषय में ग्रपने संशयों को प्रस्तुत किया। सर्वथा निरुत्तर होने पर स्वामी जी महाराज से निवेदन किया —महाराज ! ग्रापकी विवेक पूर्ण तर्क शक्ति ग्रद्‌भुत है। उसके सामने कोई टिक नहीं सकता, परन्तु मेरा मन ईश्वर पर विश्वास के लिए तैयार नहीं। यह ग्रविश्वासी मन किस प्रकार उस पर विश्वास करेगा ?

स्वामीजी महाराज ने कहा—मुंशीराम ! मैं तो तुम्हारी युक्तियों का उत्तर देकर संशय निवारण कर सकता हूं। जिस

सच्चाई को तुम तर्क द्वारा समझ लो उस पर विश्वास करके चलो। परमपिता परमात्मा की कृपा से तुम्हारे अन्दर उसकी ज्योति जगमगाएगी। उसकी कृपा से ही वह विश्वास दृढ़ बन जायेगा।

यही नवयुवक मुंशीराम के साथ हुआ। वह अविश्वासी युवक मुंशीराम महात्मा बना। महात्मा श्रद्धानन्द बना।

दयानन्द सरस्वती रात्रि को दो तीन बजे के बीच में उठकर अपने निवास स्थान से परे कुछ घण्टों के लिए चले जाया करते थे। एक दिन युवक मुंशीराम के मन में आया कि देखूं, यह साधु इस रात्रि के समय कहां जाता है और क्या करता है ? वह रात्रि के ढाई बजे स्वामीजी के निवास स्थान पर पहुंच गया। दयानन्द सरस्वती उस समय एकमात्र कौपीन धारण कर भ्रमणार्थ चल पड़े। युवक मुंशीराम भी पीछे-पीछे चल दिया। साधु की गति इतनी तीव्र थी कि वह उसके पीछे न चल सका। दूसरे दिन पुनः रात्रि के बारह बजे मार्ग के मध्य भाग में आकर खड़ा हुआ। साधु का पीछा किया। साधु के आसन जमा कर समाधिस्थ हो जाने पर वह वापिस घर आ गया।

बरेली में अमृत वर्षा करने के अनन्तर दयानन्द सरस्वती शाहजहांपुर, लखनऊ, फर्रुखाबाद, कानपुर, प्रयाग, मिर्जापुर होते हुए दानापुर पधारे। यहां आर्यसमाज की स्थापना पहले ही हो चुकी थी। दानापुर में वैदिक धर्म के प्रचार के साथ इस्लाम और ईसाई धर्म की तीव्र आलोचना करते रहे। ईसाई धर्म की आलोचना के समय जनरल रौबर्ट्स (जङ्गी लाट) भी व्याख्यान में उपस्थित थे। स्वामीजी की निर्भयता को देख जङ्गीलाट अत्यन्त प्रसन्न हुआ।

दानापुर से स्वामीजी ने कार्तिक सुदी चतुर्दशी सं० १९३६

के दिन काशी में पदार्पण किया। मार्गशीर्ष सुदी दो के दिन कर्नल अल्काट और मैडम ब्लैवट्सकी भी स्वामीजी से मिलने के लिए काशी आए। यहां महाराज के साथ ज्ञान चर्चा तथा योगविषयक वार्ता करते रहे। महाराज का जीवन चरित्र भी उनके मुखारविन्द से सुनकर लिखते रहे। माघ सुदी के दिन दयानन्द सरस्वती ने काशी में वैदिक यन्त्रालय की स्थापना की। चैत्र सुदी छः के दिन यहां आर्यसमाज की स्थापना की।

काशी से दयानन्द सरस्वती फर्रुखाबाद होते हुए मैनपुरी पधारे। मैनपुरी में भक्तजनों को अमृत वर्षा से हर्षित करते रहे। मैनपुरी से प्रस्थान के कुछ दिनों के अनन्तर यहां आर्य समाज की स्थापना हो गई।

मैनपुरी से दयानन्द सरस्वती आषाढ़ सुदी एक सं० १९३७ के दिन मेरठ पधारे। मेरठ छावनी में ला० रामशरणदास की कोठी में निवास किया। यहां आर्यसमाज की ओर से एक कन्या पाठशाला का भी संचालन हो रहा था। पाठशाला में एक योग्य संस्कृत अध्यापिका की आवश्यकता थी। महाराज को पता लगा कि कलकत्ता में एक महाराष्ट्र महिला रमाबाई संस्कृत की विदुषी रहती है। उन्होंने उसे इस कार्य के लिए मेरठ बुलवाया। स्वामीजी कीं विद्वत्ता से प्रभावित होकर वह उनसे वैशेषिक दर्शन पढ़ने लगी। पं० भीमसेन, पं० ज्वालादत्त, बाबू ज्योतिप्रसाद भी रमाबाई के साथ महाराज से वैशेषिक दर्शन पढ़ते रहे। स्वामीजी महाराज चाहते थे कि यह विदुषी महिला ब्रह्मचारिणी रहकर कन्याविद्यालय में कन्याओं को संस्कृत पढ़ाये तथा वैदिक धर्म का प्रचार करे। वह इसके लिए सहमत न हुई। रमाबाई एक बंगाली कायस्थ युवक से विवाह करना चाहती थी। स्वामीजी ने आर्य सदस्यों को आज्ञा देकर उसे सम्मानपूर्वक कलकत्ता जाने के लिए विदाई दिलवाई।

बाद में रमाबाई ने ईसाई धर्म की दीक्षा ले ली ।

कर्नल अल्काट और मैडम ब्लैवट्सकी इन दिनों शिमला जा रहे थे। दयानन्द सरस्वती से मिलने के लिए मेरठ ठहर गए। बाबू छेदीलाल की कोठी पर इनके ठहरने का प्रबन्ध किया गया। भारत आने से पूर्व कर्नल और मैडम दोनों ने दयानन्द सरस्वती को जो पत्र लिखे थे, उनमें उन्होंने वेदों को ईश्वरीय ज्ञान मानना स्वीकार किया था। ईश्वर में पूर्ण विश्वास प्रकट किया था। दयानन्द सरस्वती को अपना आध्यात्मिक गुरु मानकर उनसे पथ-प्रदर्शन की मांग की थी। इसी आधार पर अमरीका तथा अन्य विदेशों में थियासोफिकल सोसाइटी का नाम थियासोफिकल सोसाइटी ऑफ आर्यसमाज रखकर इसे आर्यसमाज की शाखा के तौर पर घोषित किया था।

भारत में आने पर कुछ समय बाद इनके विचारों में परिवर्तन हो गया। इनमें मान और प्रतिष्ठा का ज़ोरदार उभार हुआ। आर्यसमाज का वह संघर्ष का युग था। हिन्दू जाति में नाना प्रकार के सम्प्रदायों का जाल बिछा हुआ था। सभी सम्प्रदायों में गुरु प्रथा का प्रचार था। वैदिक आदर्श का लोप हो चुका था। मनुष्य जाति में जन्म से जातिभेद की मान्यता के कारण निम्न वर्ग के हिन्दू ईसाई, मुसलमान हो रहे थे। हिन्दू जाति के माननीय पण्डितों और पुजारियों को इस वर्ग के लोगों का विधर्मियों में प्रवेश आपत्तिजनक नहीं प्रतीत होता था। अपने धर्म में सुधार करने के लिए वे किसी प्रकार सहमत न थे। नाना प्रकार की मूर्तियों की पूजा तथा नाना प्रकार के साम्प्रदायिक तिलक धारण करने के कारण इनमें अन्दर और बाहर फूट तथा वैमनस्य की भावना बढ़ रही थी। शैव और वैष्णव तो एक दूसरे के कट्टर शत्रु बने हुए थे। निम्न वर्ग के साथ उच्च वर्ग के

अंग्रेजी शिक्षा तथा पश्चिमीय विचारों में दीक्षित हिन्दू भी अपने धर्म में कुरीतियों को देखकर ईसाई धर्म में प्रवेश कर रहे थे।

ऐसी अवस्था में दयानन्द सरस्वती का जीवन संघर्षमय था। उन्हें हिन्दू धर्म में फैली हुई मिथ्या भावनाओं को नष्ट कर वैदिक धर्म के विशुद्ध स्वरूप को स्थापित करना था। ईसाई और मुसलमानों के धर्मों में पाई जाने वाली बुराइयों और तर्क विरुद्ध असत्य सिद्धान्तों को प्रकाश में लाकर वैदिक धर्म के महत्व को विश्व में प्रकाशित करना था।

कर्नल अल्काट और मैडम ब्लैवट्सकी का दयानन्द सरस्वती की शिष्यता स्वीकार करके आर्यसमाज में प्रवेश का एकमात्र उद्देश्य आत्मप्रतिष्ठा को बढ़ावा देना था। अमरीका में उन्हें इसमें सफलता नहीं मिली थी। आर्यसमाज के बाहर भारतीयों में गुरु प्रथा के कारण सभी सम्प्रदायों में अन्धविश्वास था। सभी सम्प्रदायों के आचार्यों ने अपने-अपने धर्म संस्थापकों के चमत्कारों की कहानियां कल्पित कर रखी थी। कर्नल अल्काट और मैडम ब्लैवट्सकी ने भारतीयों की इस अन्ध श्रद्धा से लाभ उठाना शुरू किया। कर्नल और मैडम ने भारतवासियों को मृतात्माओं के आह्वान और उनके साथ वार्तालाप के रूप में चमत्कार दिखाने शुरू किये। ईश्वर पर उनका विश्वास नहीं था। मेरठ निवास के समय एक दिन मैडम ने पं० पाली राम को स्पष्ट शब्दों में कहा कि जहाँ तक ईश्वरोपासना का सम्बन्ध है, मेरा उसमें विश्वास नहीं है। मैं किसी ईश्वर में विश्वास नहीं करती। ईश्वर है ही नहीं। मैं सन्ध्योपासना के केवल उस भाग पर विश्वास करती हूँ जहाँ तक वह योगाभ्यास का अङ्ग है। बाबू छेदीलाल से भी बातचीत के सिलसिले में कर्नल और मैडम ने ईश्वर पर अविश्वास प्रकट किया।

दयानन्द सरस्वती सत्य के पुजारी थे। वे जिस सिद्धान्त को सत्य समझते थे उसमें अडिग रहते थे। गुरु प्रथा के कट्टर विरोधी थे। ईश्वर में उनकी परम आस्था थी। मैडम और कर्नल के चमत्कार प्रदर्शन को असत्य पर आधारित समझते थे।

इस प्रकार परस्पर विचारभेद के कारण आर्यसमाज और थियासोफिकल सोसाइटी में सदा के लिए सम्बन्ध विच्छेद हो गया।

मेरठ से दयानन्द सरस्वती कुछ दिनों के लिए मुज़फ्फरनगर धर्मप्रचार के निमित्त गए। मुज़फ्फरनगर से पुनः आर्य समाज के वार्षिक समारोह में भाग लेने के लिए मेरठ पधारे। इस उत्सव में स्वामीजी ने स्पष्ट शब्दों में आर्यसमाज और थियासोफ़िकल सोसाइटी के मतभेदों को प्रकट करते हुए आर्य पुरुषों को सावधान कर दिया कि वे किसी प्रकार धोखे में आकर थियासोफिकल सोसाइटी को आर्यसमाज की शाखा समझ कर उस के सदस्य न बनें।

मेरठ से दयानन्द सरस्वती देहरादून पधारे। देहरादून से पुनः मेरठ होते हुए आगरा में पदार्पण किया। यहां कुछ दिन धर्म प्रचार के अनन्तर स्वामीजी के भक्तों ने पौष वदी नौ सं० १९३७ के दिन आर्यसमाज की स्थापना की। यहाँ रहते हुए स्वामीजी ने "गोकरुणानिधि" पुस्तक की रचना की। गोरक्षा के प्रचार के निमित्त गोकृष्यादि रक्षिणी सभा की स्थापना की। मुंशी गिरधारीलाल वकील इस सभा के मन्त्री निर्वाचित हुए।

सन् १८८१ में भारत में जनगणना होनी थी। मुलतान आर्यसमाज के मन्त्री दयाराम के एक पत्र के उत्तर में दयानन्द सरस्वती ने उन्हें ३१ दिसम्बर १८८० के दिन पत्र लिखा :—

मुंशी दयाराम ! आनन्दित रहो।

विदित हो कि आपका पत्र आया। हाल मालूम हुआ। आपने जो नक़शा मर्दुम शुमारी का लिखा सो उसकी खाना-पूरी इस प्रकार करो :—

मजहब फिरके मजहबी	....	वैदिक
असल कौम	....	आर्य
जाति या फिरका	....	ब्राह्मण क्षत्रिय आदि
गोत्र या शाखा	....	जो अपना गोत्र हो

जिसको अपने गोत्र का स्मरण न हो वह कश्यप या पाराशर गोत्र लिखवा दे।

इस प्रकार आगरा में आर्यसमाज और गोकृष्यादि सभा की स्थापना कर स्वामीजी महाराज ने राजस्थान की ओर प्रस्थान किया।

४. वीरभूमि राजस्थान में निर्वाण

राजस्थान प्रचार यात्रा—अजमेर में पं० लेखराम—मेवाड़ के महाराणा सज्जनसिंह : एकलिंग मंदिर की महन्ती – वेद भाष्य—परोपकारिणी सभा की स्थापना—जोधपुर का निमंत्रण और वहाँ न जाने का पुनः पुनः अनुरोध—जोधपुर में राजधर्म पर प्रकाश : स्वदेश-प्रेम, प्रजापालन, न्याय-व्यवस्था के लिए परामर्श—आचरण-शुद्धता पर बल और वेश्यावृत्ति का विरोध – मृत्यु को निमंत्रण—विष प्रयोग, संन्यासी का धर्म क्षमा, विपरीत चिकित्सा—ईश्वर ! तेरी इच्छा पूर्ण हो।

राजस्थान-प्रचारयात्रा

राजस्थान के प्राचीन वीरतापूर्ण इतिहास से दयानन्द सरस्वती प्रभावित थे। वे समझते थे कि यदि राजस्थान के राजाओं और ठाकुरों में वैदिक धर्म का प्रचार कर उनके जीवन को सुधार की दिशा में लाया जाये तो देश की अधिक उन्नति हो सकती है। राजा को देखकर प्रजा के दृष्टिकोण में परिवर्तन हो सकता है। प्रजा सुखी और समृद्ध भी हो सकती है। राजस्थान से दयानन्द सरस्वती को निमन्त्रण भी आ रहे थे।

आगरा से प्रस्थान कर स्वामीजी महाराज फाल्गुन शुक्ला दस स० १९३७ (दस मार्च सन् १८८१) के दिन भरतपुर पधारे। दस दिन तक यहां रहकर वार्तालाप द्वारा भक्तजनों को वैदिक आदर्शों के विषय में उपदेश देते रहे।

भरतपुर से चैत्र वदी पांच सं० १९३७ के दिन जयपुर के

लिए प्रस्थान किया। यहां गङ्गापोल के बाहर अचरोल के ठाकुर के उद्यान में निवास किया। एक दिन अचरोल के ठाकुर की हवेली में व्याख्यान दिया। जिज्ञासुजनों की शंकाओं का समाधान करते हुए उनकी ज्ञानपिपासा को शान्त किया। वैदिक धर्म के स्थायी तौर पर प्रचार के लिए "वैदिक धर्म सभा" की स्थापना की। यह सभा भविष्य में आर्यसमाज के रूप में परिणत हो गई।

जयपुर से वैशाख सुदी सप्तमी सं० १९३८ के दिन अजमेर पदार्पण किया। यहां सेठ फतहचन्द के उद्यान में डेरा लगाया। महाराज के पधारने से कुछ मास पूर्व ही अजमेर में आर्यसमाज की स्थापना हो चुकी थी। महाराज के आगमन की सब ओर प्रसिद्धि हो गई। वैशाख सुदी दस से प्रतिदिन महाराज के व्याख्यान प्रारम्भ हो गए। व्याख्यान सरस और सरल भाषा में होते थे। साधारणजन भी शास्त्र के गूढ़ विषयों को भली-भांति समझ सकते थे। बाइस दिनों में स्वामीजी ने छब्बीस व्याख्यान दिये। श्रोतागण नित्य बड़ी संख्या में अमृतपान करने आते थे। वे इस अमृत रस में इतना आनन्द अनुभव करने लगे कि व्याख्यान के समय के पूर्व ही सभास्थल पर पहुँचने का यत्न करते और अन्त तक शान्त भाव से श्रवण कर अपने घरों की ओर प्रस्थान करते थे।

वैदिक धर्म के प्रचार और प्रसाररूपी यज्ञ में हुतात्मा पं० लेखराम इन दिनों पेशावर में रहते थे। उनके मन में चिरकाल से स्वामी जी महाराज के दर्शनों की अभिलाषा बनी हुई थी। वे पेशावर से प्रस्थान कर ज्येष्ठ वदी चार सं० १९३८ के दिन प्रातःकाल महाराज की सेवा में उपस्थित हुए। दिव्य मूर्ति के दर्शन कर चरणस्पर्श के साथ अभिवादन किया। महाराज के आशीर्वाद के अनन्तर अपनी शंकाओं का निवारण

किया। अन्य प्रश्नों के साथ महाराज से यह भी पूछा कि अन्य धर्मावलम्बियों को शुद्ध कर अपने समाज में सम्मिलित करना चाहिये या नहीं ? महाराज ने कहा कि वैदिक धर्म में विश्वास रखने वाले अन्य धर्मावलम्बियों को शुद्ध कर अवश्य अपने समाज में सम्मिलित करना चाहिये। अन्त में महाराज ने पं० लेखराम को आदेश दिया कि पच्चीस वर्ष की आयु से पूर्व विवाह न करना। विदाई के समय महाराज ने उपहार के रूप में पण्डितजी को अष्टाध्यायी की एक प्रति प्रदान की।

मसूदा राज्य के ठाकुर साहब स्वामीजी महाराज के परम भक्त थे। उन्होंने अपने एक प्रतिष्ठित कर्मचारी को महाराज की सेवा में अजमेर भेजकर उनसे विनयपूर्वक प्रार्थना की कि महाराज मसूदा में पधार कर अपने अमृत रस से हमारी ज्ञान पिपासा को शान्त करें। महाराज ने मौन स्वीकृत प्रदान की।

आषाढ़ वदी बारह सं० १९३८ के दिन अजमेर से प्रस्थान कर स्वामीजी ने मसूदा में पदार्पण किया। ठाकुर साहब ने रामबाग की बारादरी में महाराज के निवास का प्रबन्ध किया। यहां ब्यावर के ईसाई पादरी शूलब्रेड तथा बिहारीलाल से महाराज की धर्म चर्चा हुई। जैन साधु सिद्धकरणजी से भी लिखित रूप में कुछ प्रश्नोत्तर हुए। मसूदा के किले में महाराज के व्याख्यानों का प्रबन्ध किया गया। उपदेशामृत का पान कर कुछ भक्त जनों ने महाराज से यज्ञोपवीत ग्रहण करने की प्रार्थना की। विधिवत् यज्ञशाला का निर्माण कर उसे अलंकृत किया गया। चांदी के चमचे बनवाए गए। अजमेर से हवन सामग्री मंगवाई गई। प्रथम दिन बत्तीस भक्तजनों ने यज्ञोपवीत धारण किया। इनमें अधिक संख्या जैनियों की थी। कुछ दिनों के अनन्तर पुनः महाराज से प्रार्थना कर सोलह भक्तजनों ने यज्ञोपवीत ग्रहण किया। इनमें भी अधिक संख्या जैनियों

की थी।

मसूदा में मुसलमान बादशाहों के शासन काल में कुछ हिन्दू मुसलमान हो गए थे। इन मुसलमानों को अपनी जाति के हिन्दू अपनी कन्याएं विवाह के निमित्त अभी तक देते चले आते थे। महाराज ने उन्हें बुलवाकर समझाया कि अपनी कन्याओं को विधर्मियों को देकर क्यों अपनी जाति का नाश करते हो? अपनी कन्याओं को स्वयं धर्मभ्रष्ट करते हो। यह अत्यन्त लज्जाजनक कार्य है। उस दिन से मसूदा में यह प्रथा बन्द हो गई। भविष्य के लिए हिन्दू कन्याओं का उद्धार हो गया।

मसूदा से भाद्रपद कृष्णा ९ सं० १९३८ के दिन स्वामीजी महाराज रामपुर पधारे। रामपुराधीश राव हरीसिंह के राज्य मन्त्री इलाहीवक्ष थे। इलाहीवक्ष के सहकारी उसके भतीजे करीमवक्ष थे। स्वामीजी महाराज ने राव हरीसिंह को कहा कि आपको यवनों को राज्य मन्त्री नहीं बनाना चाहिये। इससे राज्य की और धर्म की हानि होगी। वैसे भी ये सभी दासी पुत्र हैं। कुरान शरीफ के अनुसार इब्राहीम की दो स्त्रियां थी। एक विवाहित "सारा" दूसरी सारा की दासी "हाजिरा"। हाजिरा के गर्भ से इब्राहीम को पुत्र सन्तान प्राप्त हुई। पुत्र का नाम इस्माइल रखा गया।

रामपुर में रहते हुए स्वामीजी ने वेदाङ्ग प्रकाश का लेखन समाप्त किया। रामपुर से ब्यावर, मसूदा, बनेड़ा होते हुए दयानन्द सरस्वती कार्तिक सुदी ५ सं० १९३८ (२६ अक्टूबर सन् १८८१) के दिन चित्तौड़ पधारे।

मेवाड़ के अधिपति महाराणा सज्जनसिंह एक नवयुवक व्यक्ति थे। उनका झुकाव कुछ नास्तिकता की ओर था। यद्यपि उदयपुर का राजधर्म शैव था पर शैव कहलाते हुए भी उनकी शैवमत में विशेष अभिरुचि नहीं थी। उनके निकट दो

मुसलमान मनोविनोद के लिए रहते थे। वेश्याओं में उनका विशेष अनुराग था। उदयपुर के प्रतिष्ठित व्यक्ति मोहनलाल विष्णुलाल पाण्ड्या और कविराज श्यामलदास महाराणा की यह अवस्था देखकर दुःखित थे। वे महाराणा के पास जाकर कभी-कभी रामायण आदि धर्मग्रन्थों का पाठ सुनाने का प्रयत्न करते थे। समाचारपत्रों में से दयानन्द सरस्वती के संवाद भी पढ़कर सुनाया करते थे। महाराणा दयानन्द सरस्वती के संवादों को रुचिपूर्वक सुनते थे। पाण्ड्याजी ने महाराणा को सत्यार्थ प्रकाश की भी एक प्रति भेंट की। सत्यार्थप्रकाश के कुछ अंश पढ़कर महाराणा के हृदय में दयानन्द सरस्वती के प्रति श्रद्धा के भाव अंकुरित हुए। वे दयानन्द सरस्वती के दर्शनों के लिए उत्सुक हो गए।

उस समय के भारत सरकार के प्रतिनिधि लार्ड रिपन महाराणा सज्जनसिंह को जी. सी. ऐस आई. की उपाधि देना चाहते थे। महाराणा प्रताप के वंशज अपने आप को राजवंश के सूर्य समझते थे। वे इस प्रकार की उपाधि ग्रहण करना अपने सम्मान के अनुकूल नहीं समझते थे। पर लार्ड रिपन ने महाराणा को इसके लिए बाध्य किया और यह आश्वासन दिया कि वे स्वयं चित्तौड़ आकर सम्मानपूर्वक उन्हें इस उपाधि से विभूषित करेंगे। इस अवस्था में महाराणा को भी स्वीकृति प्रदान करनी पड़ी। इस समारोह के लिए तेईस नवम्बर सन् १८८१ का दिन निश्चित किया गया था।

समारोह में सम्मिलित होने के लिए मेवाड़ के सभी ठाकुर तथा सरदार चित्तौड़ आए हुए थे। शाहपुराधीश महाराजा नाहरसिंह भी इन दिनों चित्तौड़ में थे।

इस अवसर का पूरा सदुपयोग करने के लिए दयानन्द सरस्वती पाण्ड्या जी और कविराज जी के निमन्त्रण पर चित्तौड़

पधारे। गम्भीरी नदी के किनारे रुद्रेश्वर महादेव के मन्दिर के निकट महाराणा की अनुमति से स्वामीजी महाराज के निवास के लिए डेरे लगवा दिये गए। स्वामीजी के चित्तौड़ आगमन का समाचार नगर में सर्वत्र प्रसारित हो गया। भक्तजन महाराज के उपदेशों का श्रवण करने आने लगे। सभी ठाकुर सरदार, जागीरदार भी महाराज के दर्शन कर अपने आपको कृतार्थ समझने लगे। शाहपुराधीश महाराजा नाहरसिंहजी स्वामीजी महाराज के डेरे पर उनके अमृतमय वचनों से अपने हृदय की ज्ञानपिपासा को शान्त करने आए। महाराजा नाहर सिंह स्वामीजी महाराज के परम भक्त बन गए। आजीवन उनके पदचिह्नों के अनुगामी बने रहे।

लार्ड रिपन के दरबार की समाप्ति के अनन्तर महाराणा सज्जनसिंह ने स्वामीजी महाराज को अपने दरबार में आमन्त्रित किया। स्वामीजी महाराज के दर्शन कर महाराणा ने नतमस्तक हो उनकी अभिवन्दना की। सम्मान के साथ उनसे आसन ग्रहण करने की प्रार्थना की। स्वयं शिष्य भावना के साथ उनके समीप बैठ गए।

दयानन्द सरस्वती ने महाराणा को राजनीति के विषय में उपदेश दिया। सदाचार के नियमों का प्रतिपादन करते हुए मद्यसेवन तथा वेश्या-संग के दोषदर्शन करवाए। दयानन्द सरस्वती के लागलपेट से रहित निर्भय प्रवचन को सुनकर महाराणा बहुत प्रभावित हुए। अब तक उन्होंने ऐसा स्पष्ट वक्ता उपदेष्टा नहीं देखा था।

चार दिसम्बर १८८१ के दिन महाराणा सज्जनसिंह स्वयं स्वामीजी के डेरे पर पधारे। परम श्रद्धा के साथ महाराज के पास बैठकर धर्म और राजनीति के विषय में वार्तालाप करते रहे।

एक दिन दयानन्द सरस्वती कुछ राजाओं और जागीरदारों के साथ भ्रमण के लिए जा रहे थे। मार्ग में एक मन्दिर के पास कुछ बालबालिकाएँ खेल रहे थे। इन में एक चार वर्ष की बालिका नग्नवेश में थी। स्वामीजी का मस्तक झुक गया। उनके साथ जाने वालों में से एक व्यक्ति ने कहा कि महाराज आप मूर्तिपूजा का खण्डन करते हैं ? पर मन्दिर के सामने तो आपका मस्तक भी झुक गया। यह देव मूर्तियों का प्रभाव है।

स्वामीजी वहीं खड़े हो गए और उस नग्न कन्या की ओर संकेत करते हुए बोले—"देखो यह मातृशक्ति है जिसने हम सबको जन्म दिया है। मैं इसके प्रति सम्मान प्रदर्शित कर रहा हूं। पत्थर की मूर्ति के प्रति नहीं।

चित्तौड़ से प्रस्थान कर उदयपुर जाने से पूर्व महाराणा ने दयानन्द सरस्वती से उदयपुर पधारने की प्रार्थना की। स्वामी जी महाराज को बम्बई जाना था। वहां आर्यसमाज का वार्षिकोत्सव था। किसी अन्य अवसर पर उदयपुर आने के लिए महाराणा को वचन देकर स्वामीजी महाराज इन्दौर होते हुए पौष सुदी एकादशी के सं० १९३८ के दिन बम्बई पहुँच गए। कर्नल अल्काट तथा बम्बई आर्यसमाज के सदस्य रेलवे स्टेशन पर महाराज के स्वागत के लिए उपस्थित थे। बालुकेश्वर में गोशाला के स्थान पर महाराज ने आसन ग्रहण किया। कर्नल अल्काट भी बालुकेश्वर ठहरे हुए थे।

बम्बई की इस यात्रा में स्वामी जी महाराज ने यहां व्याख्यान वार्तालाप तथा विद्वानों के साथ शास्त्रचर्चा द्वारा वैदिक धर्म के आदर्श को जनसाधारण के सामने रखा। बम्बई आर्यसमाज स्थापना के अवसर पर आर्यसमाज के १८ नियम स्थिर किये गए थे। लाहौर में इन नियमों में परिवर्तन कर दस नियम स्वीकार किये गए थे। बम्बई आर्यसमाज में भी इन दस नियमों

को स्वीकृति प्रदान की गई। थियासोफिकल सोसाइटी के आर्य-समाज के साथ सदा के लिए सम्बन्ध विच्छेद की घोषणा की गई। परिणामस्वरूप कर्नल अल्काट और मैडम ब्लेवट्सकी का बम्बई में प्रभाव शिथिल पड़ गया। वे यहाँ से मद्रास चले गए।

भारत में गोहत्या को देखकर दयानन्द सरस्वती का मन बहुत चिन्तित था। वे गोवंश को देश का प्राण समझते थे। गोवंश जहां अमृतमय दुग्ध से हम सब को तृप्त करता है वहां कृषि आदि कार्य भी इनके बिना नहीं हो सकते। इस प्रकार यह देश का अन्नदाता भी है।

स्वामीजी महाराज ने गोरक्षा के विषय में सब धर्माव-लम्बियों के साथ विचारविमर्श कर लार्ड रिपन के द्वारा महा-रानी विक्टोरिया के पास भेजने के लिए एक निवेदन पत्र तैयार किया। वे चाहते थे कि इस निवेदन पत्र पर करोड़ों की संख्या में सभी विचारों के भारतीयों के हस्ताक्षर करवाकर महारानी की सेवा में प्रस्तुत किया जाए। इसी उद्देश्य से भारत के विभिन्न भागों में हस्ताक्षर करवाने के निमित यह निवेदन पत्र भेजा गया। दुर्भाग्यवश सं० १९४० के दीपावली के अवसर पर स्वामीजी महाराज इस भौतिक देह का परित्याग कर परम-पिता प्रभु की शरण में चले गए। इस से इस निवेदन पत्र का उद्देश्य पूर्ण न हो सका।

बम्बई में महाराज दिन का अधिक समय वेद-भाष्य लिखाने में व्यतीत करते थे।

बम्बई से दयानन्द सरस्वती खण्डवा, इन्दौर, रतलाम, जाबरा आदि नगरों में भक्तजनों को उपदेशामृत का पान कराते हुए श्रावण सुदी ९ सं० १९३९ के दिन पुनः चित्तौड़ पहुँचे। दो सप्ताह यहीं निवास किया। चित्तौड़ के प्राकृतिक दृश्यों और प्राचीन वीरतामय इतिहास से प्रभावित होकर

दयानन्द सरस्वती चाहते थे कि यहां वेदादि शास्त्रों के स्वाध्याय के निमित्त एक गुरुकुल की स्थापना की जाए। स्वामीजी महाराज के अनन्यभक्त ब्रह्मचारी युधिष्ठिर (स्वामी ब्रह्मानन्द जी) ने उनकी इस इच्छा को क्रियात्मक रूप प्रदान किया।

चित्तौड़ से प्रस्थान कर श्रावण वदी बारह सं० १९३९ (११ अगस्त सन् १८८२) के दिन स्वामीजी महाराज उदयपुर पहुंच गए)। उदयपुर में महाराणा सज्जनसिंह की ओर से नौलखा बाग (सज्जन-विलास) में महाराज के निवास का प्रबंध किया गया।

महाराज के पधारने के दूसरे दिन महाराणा सज्जनसिंह कुछ प्रतिष्ठित राजकर्मचारियों के साथ उनसे मिलने के लिए आए। बाद में प्रतिदिन एक दिन प्रातः, दूसरे दिन सायंकाल महाराणा स्वामीजी महाराज के निवास स्थान पर उनसे मिलने आया करते थे। उदयपुर में महाराज प्रतिदिन प्रातःकाल गोवर्धन पर्वत पर भ्रमणार्थ जाया करते थे। वापिस आते समय बाग के एक गोल चबूतरे पर पद्मासन लगाकर ध्यानावस्थित हो प्रभु की उपासना में रत रहते थे। किसी दिन महाराणा सज्जनसिंह प्रातः समय से पूर्व आ जाते और स्वामीजी महाराज को ध्यानावस्थित अवस्था में देखते तो कुछ समय पास ही बैठकर प्रतीक्षा करते। स्वामीजी महाराज के उपासना से निवृत्त होने पर महाराणा उनके साथ बाग में घूमते हुए विविध विषयों पर वार्तालाप करते।

एक दिन महाराणा सज्जनसिंह ने संस्कृत पढ़ने की इच्छा प्रकट की। महाराज ने सहर्ष स्वीकार कर उन्हें सरल विधि से संस्कृत का बोध कराते हुए मनुस्मृति के ७, ८, ९ अध्याय पढ़ाए। महाभारत के उद्योग पर्व और वन पर्व में से कुछ चरित्र-गठन और राजनीति विषयक सन्दर्भ सुनाए। विदुर नीति के

मर्म भी समझाए।

महाराणा की दैनिक चर्या को नियन्त्रित किया। राजभवन में प्रतिदिन नियमानुसार अग्निहोत्र करने का आदेश दिया। एक बार राज्य में बृहद् यज्ञ करवाया जिस में महाराणा से पूर्णाहुति दिलवाई। महाराणा को वेश्यावृत्ति तथा अन्य अनाचारों से परे रहने का आदेश दिया, जिसका महाराणा ने यथावत् पालन किया।

एक दिन महाराणा ने एकान्त में विनम्रभाव से दयानन्द सरस्वती से निवेदन किया—महाराज ! नीति की दृष्टि से हिन्दुओं में जागृति लाने के लिए यदि आप मूर्तिपूजा का खण्डन न करें तो इस जाति का महान् कल्याण होगा। मेरा यह राज्य एकलिङ्ग महादेव के प्रति समर्पित है। आप एकलिङ्ग मंदिर के महन्त बनकर यहां विराजमान रहें। इसकी कई लाख रुपये की सम्पत्ति है। यह आपकी हो जायेगी। यह राज्य भी धार्मिक दृष्टि से आपके अधीन हो जायेगा।

महाराणा के इस प्रस्ताव को सुनकर स्वामीजी महाराज गम्भीर होकर बोले – महाराणा ! आप मुझे प्रलोभन देकर उस सर्वशक्तिमान् जगन्नियन्ता प्रभु की आज्ञा को भङ्ग करवाना चाहते हैं ? यह छोटा-सा राज्य व इस मन्दिर की सम्पत्ति मुझे उस सर्वनियन्ता की आज्ञा का उल्लघंन करने की ओर प्रवृत्त नहीं कर सकते। मैं एक दौड़ में आपके राज्य से बाहर जा सकता हूं, पर विश्वव्यापी परमेश्वर की छत्रछाया से परे नहीं हो सकता। वेद की आज्ञा उसकी आज्ञा है। मैं उसका परित्याग नहीं कर सकता। कोई शक्ति मुझे सत्यमार्ग से विचलित कर असत्य की ओर झुका नहीं सकती। असत्य का खण्डन और सत्य का प्रकाश करना मेरा कर्त्तव्य है। भविष्य में आप मुझ से इस प्रकार की बात कभी न कहियेगा।

दयानन्द सरस्वती की निर्भय गर्जना को सुनकर महाराणा स्तम्भित रह गए। अभी तक उन्होंने अपनी हां में हां मिलाने वाले प्रशंसावादी पण्डित ही देखे थे। स्वामीजी महाराज के इस उत्तर को सुनकर क्षमायाचना करते हुए महाराणा बोले— महाराज ! मैं यह देखना चाहता था कि आप अपने सिद्धान्तों पर कितने दृढ़ हैं ! मुझे परम सन्तोष है कि आप किसी प्रलोभन अथवा भय के कारण सत्य से विचलित नहीं हो सकते। मेरा अपराध क्षमा कीजिये।

एक दिन मोहनलाल पाण्ड्या ने स्वामीजी महाराज से प्रश्न किया कि आर्यावर्त देश का पूर्ण हित और जातीय उन्नति कब होगी ?

महाराज ने कहा—प्रिय मोहनलाल, इस देश का उत्थान तभी सम्भव है जब हमारा एक धर्म, एक भाषा और एक लक्ष्य हो। यदि सभी नरेश अपने राज्यों में धर्म, भाषा और भाव की एकता स्थापित् करने का यत्न करें तो इस देश का भविष्य उज्ज्वल बन सकता है और यह देश उन्नति की ओर बढ़ सकता है।

मोहनलाल ने महाराज के कथन पर आशंका प्रकट करते हुए कहा—महाराज! जिस रूप में आप भावों में एकता चाहते हैं उस दृष्टि से फिर मतमतान्तरों का खण्डन क्यों करते हैं। इससे परस्पर भेद भावना को प्रोत्साहन मिलता है।

महाराज ने कहा—देखो ! जब धर्माचार्यों और देश के नेताओं की असावधानता, अविवेक एवं प्रमाद से जाति के आचार-विचार तथा आदर्श दूषित हो जाते हैं तब उनमें भावों की एकता नहीं रह सकती। आर्य जाति इस समय पतन की दिशा में जा रही है। हमारे धर्माचार्यों के अविवेकपूर्ण और संकीर्ण दृष्टिकोण से करोड़ों की संख्या में आर्य सन्तान आज

मुसलमान और ईसाई हो रही है। यदि इसे संभाला न गया तो इसका शीघ्र ही अन्त हो जाएगा। अपनी स्वार्थ-सिद्धि के निमित्त जाति को विनाश की दिशा में ले जाने वाले इन धर्माचार्यों का दृष्टिकोण तभी बदल सकता है जब सत्य की तीक्ष्ण असिधारा से असत्य, पापाचरण, अनैतिक प्रथाओं और कुरीतियों का समूल उच्छेद किया जाय। इसके लिए कठोर और कटुतापूर्ण उपायों का आश्रय लेने के सिवाय कोई उपाय नहीं। मैं किसी स्वार्थवश यह कार्य नहीं कर रहा। इस कार्य में मैं अनेक कष्ट सहन कर रहा हूँ। स्वार्थी पुरुष मुझे गालियाँ देते हैं। ईंट पत्थर मारते हैं। सभी तरह से मेरे प्राण-हरण का प्रयत्न करते हैं। तलवार का भय दिखाते हैं। चोरी से खाने की वस्तुओं में विष देते हैं। प्रलोभन भी देते हैं। आर्य जाति की रक्षा तथा वैदिक धर्म के पुनरुत्थान के लिए मैं यह सब सहन करता हूँ और करूँगा।

दयानन्द सरस्वती के वचन सुनकर भक्त मोहनलाल पाण्ड्या का हृदय द्रवित हो गया। नेत्रों में अश्रु बहने लगे। श्रद्धा से सिर झुक गया। महाराज से निवेदन किया—प्रभो! यदि आप जैसे दो-तीन धर्माचार्यों का इस देश में अवतरण हो जाय तो वास्तव में आर्य जाति की यह डूबती नैय्या शीघ्र सकुशल पार हो जाय।

एक दिन कविराज श्यामलदास ने महाराज से निवेदन किया कि—महाराज! भक्तजन आपके स्मारक चिह्न का निर्माण करना चाहते हैं।

महाराज ने उसे सावधान करते हुए कहा—ऐसा कभी न करना। मेरे भौतिक देह के त्याग के बाद इसकी भस्म को किसी खेत में डाल देना। स्मारक बनाने से भविष्य में उसके द्वारा मूर्तिपूजा को प्रोत्साहन मिलता है।

दयानन्द सरस्वती दूरदर्शी थे, ऋषि थे, कोई इस प्रकार की प्रथा नहीं स्थापित करना चाहते थे जिन से आने वाले भक्तजनों में मिथ्याचार का प्रचार हो।

उदयपुर में रहते हुए दयानन्द सरस्वती अधिक समय वेद-भाष्य की रचना में व्यतीत करते थे।

परोपकारिणी सभा

दयानन्द सरस्वती जी महाराज जब जुलाई से सितम्बर सन् १८८० में मेरठ में थे तब उन्होंने परोपकारिणी सभा की स्थापना का निश्चय किया था। कोई मनुष्य इस संसार में सदा बना नहीं रहता। जिसने जन्म लिया है उसे इस जीवन का अन्त भी देखना पड़ेगा। दयानन्द सरस्वती का जीवन सदा संकटमय बना हुआ था। ईसाई, मुसलमान, पौराणिकपन्थी तथा चक्राङ्कित सम्प्रदाय सभी उनके इस शरीर का विनाश करने के लिए उद्योगशील थे। कई बार उन्हें विष दिया गया। उन पर घातक आक्रमण की चेष्टा की गई।

इन परिस्थितियों में वे चाहते थे कि इस शरीर से मुक्ति पाने के अनन्तर उनका काम यथावत् चालू रहे। वैदिक ग्रन्थों के निर्माण और प्रकाश का कार्यक्रम सदा जारी रहे। भारत के बाहर विदेशों में भी वैदिक धर्म के प्रचार का विस्तार किया जाए। अनाथ और दीनजनों की शिक्षा और पालन की ओर विशेष ध्यान दिया जाय। धर्म और परमार्थ का काम उत्साह, पुरुषार्थ, गम्भीरता और उदारता के साथ सदा होता रहे।

अपने शेष जीवनकाल में तथा इस देह के परित्याग के बाद इन उद्देश्यों की पूर्ति के लिए दयानन्द सरस्वती ने एक स्वीकार पत्र (वसीयतनामा) बनाया। तेइस सज्जनों की एक "परोपकारिणी सभा" का निर्माण कर उसे अपनी सम्पत्ति का अधिकारी बना दिया।

इन तेईस व्यक्तियों में उदयपुर के महाराणा सज्जनसिंह को इस सभा का प्रधान नियुक्त किया। अन्य सदस्यों में शाहपुराधीश महाराजा नाहरसिंह, प्रसिद्ध समाज सुधारक राव बहादुर गोविन्द रानाडे पूना, औक्सफोर्ड यूनिवर्सिटी के संस्कृत के प्रोफेसर श्यामजी कृष्ण वर्मा, बम्बई कौंसिल के सदस्य राव बहादुर पं० गोपालराव देशमुख, स्वामीजी के भक्त राजा जय किशनदास मुरादाबाद, ला० साईंदास लाहौर आदि थे।

स्वीकारपत्र के नियमों में प्रथम नियम, जिसमें इसके उद्देश्यों को स्पष्ट किया गया है, इस प्रकार हैं :—

उक्त सभा जैसे कि मेरी जीवित अवस्था में मेरे समस्त पदार्थों की रक्षा करके निम्नलिखित परोपकार के कामों में लगाने का अधिकार रखती हैं वैसे ही मेरे पीछे अर्थात् मरने के पश्चात् भी लगाया करे।

१. वेद और वेदाङ्गादि शास्त्रों के प्रचार, अर्थात् उनकी व्याख्या करने कराने, पढ़ने पढ़ाने, सुनने सुनाने, छापने छपवाने आदि में।

२. वेदोक्त धर्म के उपदेश और शिक्षा, अर्थात् उपदेश मण्डली नियत करके देश-देशान्तर और द्वीप-द्वीपान्तरों में भेज कर सत्य के ग्रहण और असत्य के त्याग आदि में।

३. आर्यावर्त के अनाथ और दीन जनों की शिक्षा और पालन में खर्च करे और करावे।

इन उद्देश्यों का स्पष्टीकरण करते हुए तेरह अन्य नियम कार्य संचालन के लिए बनाए।

फाल्गुन वदी सात सं० १९३९ वि० स्वामीजी महाराज उदयपुर में रहे। विदाई के समय महाराणा ने स्वामीजी महाराज को एक कृतज्ञतासूचक सम्मानपत्र प्रदान किया। उसके साथ आशा प्रकट की कि वे पुनः अपने दर्शन से कृतार्थ करते

रहेंगे।

उदयपुर से प्रस्थान कर चित्तौड़ होते हुए दयानन्द सरस्वती फाल्गुन की अमावस्या के दिन शाहपुरा पहुँचे। लार्ड रिपन के दरबार के समय चित्तौड़ में शाहपुराधीश महाराजा नाहर सिंह दयानन्द सरस्वती के सत्सङ्ग से लाभ उठाया करते थे। उनके सत्योपदेश से प्रभावित होकर शाहपुराधीश ने स्वामीजी महाराज से प्रार्थना की थी—भगवन्, आप कृपा करके हमारे राज्य में भी पधारकर प्रजाजनों को अपने उपदेशामृत से तृप्त करें। स्वामीजी महाराज ने शाहपुराधीश की विनीत प्रार्थना को स्वीकार करते हुए निकट भविष्य में अवसर पाकर आने के लिए आशा प्रकट की थी।

शाहपुरा में राजकीय उद्यान में डेरा डालकर स्वामीजी महाराज के निवास का प्रवन्ध किया गया। सायंकाल के समय शाहपुराधीश महाराजा नाहरसिंह राज्य के सम्मानित व्यक्तियों के साथ महाराज की सेवा में कुशल क्षेम पूछने के निमित्त आए।

यहां रहते हुए महाराज का अधिक समय वेदभाष्य में व्यतीत होता था। कुछ समय श्रद्धालु भक्तजनों को उपदेश देते और उनकी शंकाओं का समाधान करते थे।

सायंकाल छः बजे से नौ बजे तक शाहपुराधीश स्वामीजी महाराज के चरणों में बैठकर उनसे शिक्षा ग्रहण करते थे। एक घण्टा धर्म चर्चा तथा धर्म सम्बन्धी संशयों का निवारण होता था। दो घण्टे शास्त्रों के अध्ययन के निमित्त निश्चित थे। इस समय में महाराज ने शाहपुराधीश को मनुस्मृति, पातंजल योगदर्शन और वैशेषिक दर्शन के कुछ अंशों का अध्ययन कराया। प्राणायाम विधि का भी उपदेश दिया।

स्वामीजी महाराज के उपदेशों से प्रभावित होकर महाराजा

ने राजभवन में यज्ञशाला का निर्माण कराया, यहाँ नित्य हवन होने लगा।

जोधपुर

जोधपुर में कर्नल सर प्रतापसिंह तथा रावराजा तेजसिंह दयानन्द सरस्वती के परमभक्त थे। दयानन्द सरस्वती के उदयपुर निवास के दिनों में उन्होंने स्वामीजी महाराज से जोधपुर पधारने के लिए विनयपूर्वक प्रार्थना की थी। कर्नल सर प्रतापसिंह और रावराजा तेजसिंह ने जोधपुराधीश महाराजा जसवन्तसिंह से निवेदन कर स्वामीजी महाराज को जोधपुर पधारने के लिए निमन्त्रण भिजवाया। दयानन्द सरस्वती राजस्थान के राजाओं में प्राचीन वैदिक आदर्श को पुनः स्थापित करना चाहते थे। जोधपुर नरेश का निमन्त्रण पाकर उन्होंने जोधपुर जाने का निश्चय कर लिया। ज्येष्ठ वदी चार सं० १९४० वि० का दिन भी प्रस्थान के लिए निश्चित हो गया।

शाहपुराधीश महाराजा नाहरसिंह को जिस समय यह सूचना मिली, वे स्वामीजी महाराज के चरणों में आए। चिन्ता भरे चित्त से विनयपूर्वक महाराज से प्रार्थना की: 'महाराज! आप वहां वेश्याओं के विषय में आलोचना न कीजियेगा।' जोधपुराधीश का नन्हीं जान वेश्या से स्नेह सम्बन्ध था। शाहपुराधीश जानते थे कि स्वामीजी महाराज निर्भय सत्य के वक्ता हैं। वे इसी सोच में थे कि कहीं निर्भय सत्यवक्ता होने के कारण उनके शरीर को कोई अनाचारी स्वार्थ के वशीभूत होकर हानि न पहुंचाए।

स्वामीजी महाराज ने अपने स्वभाव के अनुसार साहसपूर्ण उत्तर दिया—मैं कंटीले वृक्षों को नहुरने से नहीं काटता। उसके लिए अति तीक्ष्ण शस्त्रों की आवश्यकता होगी।

शाहपुरा से जोधपुर के लिए प्रस्थान करते समय स्वामीजी

महाराज अजमेर पधारे। यहां सेठ फतहमल की कोठी पर विश्राम किया। स्वामीजी महाराज के भक्त रावबहादुर गोपालराव हरि देशमुख के सुपुत्र लक्ष्मणराव (खानदेश के असिस्टैण्ट कलक्टर) अजमेर में स्वामीजी महाराज से योगाभ्यास के रहस्यों को समझने के लिए आए। महाराज ने उन्हें एकान्त में योगविषयक शिक्षा दी।

अजमेर से जोधपुर की ओर प्रस्थान करने से पूर्व भक्त मण्डली ने महाराज से विनयपूर्वक निवेदन किया—गुरुवर! आप मारवाड़ प्रान्त में पधार रहे हैं। वहां के मनुष्य गंवार और उजड्ड हैं। वे अपने हित और अहित को नहीं समझते। आपका जीवन हम लोगों के लिए अमूल्य है। यदि आप वहां न जाएँ तो अत्यन्त अनुग्रह होगा।

महाराज ने गर्जना के साथ उत्तर दिया—"यदि वे लोग हमारी अंगुलियों की बत्तियां बनाकर जला दें, तो भी कोई चिन्ता नहीं। मैं वहां जाकर अवश्य सत्योपदेश दूंगा।"

अजमेर से पाली स्टेशन तक महाराज रेल में आए। उन दिनों पाली से जोधपुर तक रेलवे लाइन न थी। पाली में जोधपुराधीश की ओर से एक हाथी, तीन रथ, एक सेज गाड़ी, तीन ऊंट, ऊंटों के साथ चार सवार तैयार थे। मार्ग में वर्षा के कारण एक दिन रोपट में विश्राम कर दूसरे दिन ज़ोधपुर के लिए प्रस्थान किया। जब जोधपुर दो कोस रह गया, महाराज सवारी से उतर कर पैदल चल पड़े।

जोधपुर में नज़र बाग के सामने फैज़ुल्लाखां की कोठी पर महाराज के निवास का प्रबन्ध था। रावराजा जवानसिंह राज्य की ओर से स्वामीजी महाराज के स्वागत के किए कोठी से कुछ आगे मार्ग पर चले गए। कर्नल प्रतापसिंह और राव राजा तेजसिंह, महाराज के स्वागत के लिए कोठी पर प्रतीक्षा

कर रहे थे।

सामने से काषाय वस्त्र धारण किये, हाथ में दण्ड लिए ऊँचे कद का संन्यासी आ रहा था। उन्नत मस्तक, गौरवर्ण, तेजस्वी मुखमण्डल था। प्रातःकालीन सूर्य की ज्योति से इसकी छवि अवर्णनीय थी। मांसपेशियां सुसंगठित थीं। छाती ताने चल रहा था। गति में उत्साह था। होंठों में मृदुहास्य था। ईश्वर विश्वास और सत्य की उपासना की आभा थी। शान्ति और सन्तोष की भावना थी। कर्नल और रावराजा इस मूर्ति को देखकर स्तम्भित हो गए। विश्वामित्र ऋषि के ये शब्द उन के सामने अंकित हो गए—

"धिग्बलं क्षत्रियबलं, ब्रह्मतेजो बलं बलम्।"

इस ब्रह्म तेज के सामने क्षत्रियों की शक्ति तुच्छ है, नगण्य है।

श्रद्धाभरी भावना से भक्त मण्डली ने महाराज की अभिवन्दना की। महाराज ने भी "नमस्ते" शब्द से उनका अभिवन्दन किया।

स्वामीजी महाराज के निवास और भोजन आदि की सुव्यवस्था कर दी गई। जोधपुर नरेश महाराज जसवन्तसिंह कुछ अस्वस्थ थे। उनके गले में पीड़ा थी, अतः वे कुछ दिन महाराज की सेवा में नहीं आ सके। स्वास्थ्य लाभ होने पर महाराज जसवन्तसिंह शिष्ट मण्डल के साथ स्वामीजी महाराज के निवास स्थान पर दर्शन के लिए गए। चरणों में प्रणाम कर आसन ग्रहण किया। कुशल क्षेम के प्रश्नोत्तर के बाद महाराजा ने अमृतोपदेश श्रवण करने की इच्छा प्रकट की। स्वामीजी महाराज ने मनुस्मृति के अनुसार राजधर्म का उपदेश दिया। स्वदेश प्रेम, प्रजापालन, न्याय व्यवस्था आदि के सम्बन्ध में उचित परामर्श दिया। देशद्रोह और पारस्परिक फूट के दोषों पर प्रकाश डाला। तीन घण्टे तक महाराजा को

राजनीति के तत्वों को समझाते रहे।

दूसरे दिन से फैज़ुल्लाखाँ की कोठी पर स्वामीजी महाराज के व्याख्यानों का प्रबन्ध हो गया। प्रतिदिन सायंकाल महाराज अपने निवास स्थान पर भक्तजनों को उपदेश देते और उनके संशयों का निवारण करते। दिन के समय नित्य कर्मों से निवृत्त होकर वेदभाष्य लिखवाते तथा सत्यार्थप्रकाश और संस्कार विधि के प्रूफों का संशोधन करते थे।

जोधपुर निवासियों के लिए स्वामीजी महाराज के व्याख्यानों में नवीनता थी। वे एक निराकार ईश्वर की उपासना, सदाचार और गोरक्षा पर विशेष बल देते थे। बाल-विवाह, मृतक श्राद्ध आदि दूषित प्रथाओं का खण्डन करते। मूर्तिपूजा और मृतक श्राद्ध के खण्डन से यहाँ के पुजारी और पुरोहित महाराज के विरुद्ध हो गए। इससे उनकी जीविका पर आघात पहुँचता था। चक्रांकित सम्प्रदाय का भी जोधपुर में बहुत प्रचार था। एक दिन महाराज ने अपने व्याख्यान में इस सम्प्रदाय की भी कड़ी आलोचना की। चक्रांकित सम्प्रदाय को मानने वाला जन समुदाय भी महाराज से रुष्ट हो गया।

फैज़ुल्लाखां जोधपुर के राजकर्मचारियों में थे। जोधपुर नरेश इन्हें बहुत मान्यता देते थे। इसलिए प्रजा में इनका प्रभाव था। एक दिन महाराज अपने व्याख्यान में ईसाई धर्म की आलोचना कर रहे थे, व्याख्यान के बीच में फैज़ुल्लाखां का भतीजा मोहम्मद हुसैन तलवार की मूठ पर हाथ रखकर खड़ा हो गया और बोला–आप इस्लाम के विषय में कुछ न कहियेगा। महाराज ने निर्भय होकर कहा तुम अभी अनुभवहीन बच्चे हो। तुम्हें केवल तलवार की मूठ पर हाथ धरना ही आता है। उसे म्यान से निकाल नहीं सकते। मैं इन गीदड़ भभकियों से भयभीत होने वाला नहीं हूं। इसके अनन्तर इस्लाम धर्म की खूब

आलोचना की। इस प्रकार मुसलमान भी महाराज के वैरी बन गए।

एक दिन फैजुल्लाखां ने महाराज से मिलने पर कहा कि यदि आज मुसलमानों का राज्य होता तो आप इस प्रकार का भाषण न कर पाते। यदि आप ऐसा करते तो आपको जीवित न रहने दिया जाता।

महाराज ने कहा—मैं उस समय भी ऐसा ही करता और दो राजपूतों की पीठ ठोक कर उन्हें सामना करने के लिए तैयार कर देता।

वेश्यावृत्ति के महाराज परम विरोधी थे। जोधपुर नरेश और वहां के रईस इस रोग के असाध्य रोगी थे। क्षत्रियों के आचार और कर्त्तव्य पर उपदेश देते हुए स्वामीजी महाराज वेश्यावृत्ति का कठोर शब्दों में विरोध करते थे।

जोधपुर में इन दिनों चार प्रकार की जनशक्ति थी। पुराणापन्थी हिन्दू, चक्रांकित, मुसलमान और ज़ागीरदार। सभी अपने स्वार्थों और कुरीतियों के खण्डन से दयानन्द सरस्वती के विरोधी हो गए।

उदयपुर और शाहपुरा निवास के समय दयानन्द सरस्वती को वहां के नरेशों का सक्रिय सहयोग प्राप्त हुआ था। वहां के नरेशों ने महाराज के उपदेशों को श्रद्धा से सुना। उसके अनुसार आचरण किया। मद्यपान और वेश्यासग आदि दुर्व्यसनों का परित्याग किया। प्राचीन राजनीति और धर्म सम्बन्धी ग्रन्थों का स्वाध्याय आरम्भ किया। इस प्रकार उनके जीवन में सुधार हुआ। प्रजा की उन्नति और न्याय व्यवस्था में भी उनका ध्यान अधिक आकर्षित हुआ।

जोधपुर की स्थिति इससे सर्वथा भिन्न थी। जोधपुर नरेश महाराजा जसवन्तसिंह नन्हीं जान नामक वेश्या में आसक्त

थे। उन पर महाराज के उपदेशों का इस दिशा में कोई प्रभाव न पड़ा। वे वेश्या के पंजे से छुटकारा न पा सके।

दयानन्द सरस्वती राजस्थान के महाराजाओं को सुधार की दिशा में ले जाने के इच्छुक थे। इसी उद्देश्य से वे अन्य प्रान्तों के निमन्त्रण आने पर भी वहां नहीं गए। राजस्थान में ही अपना कार्यक्रम निश्चित रखा।

स्वामीजी महाराज के उपदेशों से जोधपुर की प्रजा में धार्मिक दृष्टि से क्रान्ति हो गई। उनके सामने इस्लाम और ईसाई धर्म का खोखलापन आ गया। पुराणपन्थ और चक्रांकितों की लीलाओं के कुत्सित स्वरूप को भी वे समझने लगे। जागीरदारों के वेश्यासंग आदि अनाचारों के प्रति उनकी आदर भावना न रही। वैदिक सत्य धर्म का धीमा प्रकाश उनके हृदयों में समा गया। इस कारण वहां के सभी सम्प्रदायों के नेता और जागीरदार दयानन्द सरस्वती के विरोधी बन गए।

जोधपुर नरेश की उदासीन वृत्ति के कारण दयानन्द सरस्वती जोधपुर छोड़कर अन्यत्र जाने का विचार करने लगे। चार मास के जोधपुर निवास काल में महाराजा जसवन्तसिंह स्वामीजी महाराज के पास तीन वार मिलने आए। स्वामीजी महाराज भी तीन वार जोधपुर नरेश के भवनमें गए। सभी अवसरों पर स्वामी जी महाराजने उन्हें राजधर्म क्षत्रियों के कर्त्तव्य और सदाचार के विषय में उपदेश दिया। महाराजा जसवन्तसिंह ने श्रद्धा से स्वामीजी महाराज के उपदेशों का श्रवण किया, पर उनके अनुसार अपना आचरण न बना सके। नन्ही जान वेश्या में उनकी आसक्ति बनी रही। इतना अवश्य हुआ कि दयानन्द सरस्वती के प्रति उनकी भक्ति भावना दृढ़ हो गई।

एक बार दयानन्द सरस्वती के देहावसान के बाद भाटी अर्जुनसिंह और नन्हीं जान परस्पर वार्तालाप कर रहे थे।

उन्होंने दयानन्द सरस्वती के विषय में कुछ अनुचित शब्दों का प्रयोग किया। महाराजा जसवन्तसिंह ने सुन लिया और आवेश भरे शब्दों में कहा—कि "तुम उनके महत्व को नहीं जानते। यदि मैं महाराजा तख्तसिंह (उनके पिता) का सच्चे अर्थों में पुत्र हूं तो सत्य कहता हूं कि यदि स्वामी दयानन्द इस समय जीवित होते तो मैं संन्यास ग्रहण कर उनके साथ चला जाता।"

सन् १८९१ की जनगणना के समय जब जोधपुर के एक उच्च पदाधिकारी हरदयालसिंह ने नन्हीं जान से पूछा कि महाराजा जसवन्तसिंह का धर्म क्या लिखवाया जाए तो नन्हीं जानने कहा कि वैष्णव लिख दो। महाराजा ने इसका विरोध करते हुए कहा कि वैष्णव नहीं, वैदिक धर्म लिखो।

दयानन्द सरस्वती ने जोधपुर नरेश को उनकी अपने आचरणों के सुधार के प्रति उपेक्षावृत्ति को देखते हुए कई पत्र लिखे। अन्त में एक पत्र लिखा जिसमें राज्य के शासन सुधार तथा प्रजाहित के सम्बन्ध में परामर्श देते हुए उनके निजी आचरणों पर प्रकाश डाला और स्पष्ट शब्दों में लिखा कि वेश्या नन्हीं जान के प्रति आप की विशेष आसक्ति है और राज-वंशीय महारानियों के प्रति उपेक्षावृत्ति है। यह आप जैसे महाराजा को शोभा नहीं देता। उनके प्रति आपका जो व्यवहार है उससे आप अपनी मान-मर्यादा को भङ्ग कर रहे हैं। जिस प्रकार पागल कुत्ते का विष शरीर में फैल जाता है तो उससे छुटकारा पाना कठिन हो जाता है, उसी प्रकार वेश्याओं की संगति, मद्यपान, पतङ्ग उड़ाने में समय का व्यर्थ यापन, चौपड़ तथा इसी प्रकार के अन्य दुर्व्यसनों में मग्न रहना अत्यन्त हानिकारक है, ये जीवन को नाश की दिशा में ले जाते हैं। राज्य को अधोगति की ओर ले जाते हैं। मुझे बहुत आश्चर्य होता है कि आप जैसे बुद्धिमान्, साहसी और सद्गुण

सम्पन्न व्यक्ति इस प्रकार के दुर्व्यसनों का परित्याग नहीं करते। यदि आप इन दुर्व्यसनों में फंसे रहेंगे तो आपकी संतान भी ये अवगुण आप से सीखकर पतनोन्मुख बनी रहेगी।

आप कृपा करके राजकुमार को शिक्षा देने के लिए मुसलमान और ईसाई शिक्षक नियुक्त न करें अन्यथा वे उनको बुराइयों के शिकार बन जाएंगे। अपनी राजकीय शुभ परम्पराओं को भूल जाएंगे, वैदिक धर्म से भी विमुख हो जाएंगे। जो शिक्षा उन्हें ईसाई और मुसलमान शिक्षकों से मिलेगी, उसके अनुसार इनके संस्कार दृढ़ हो जाएँगे। भविष्य में उनसे छुटकारा पाना कठिन हो जाएगा। आपको महाराजकुमार के सब संस्कार वैदिक विधि से करने चाहियें। उसे पच्चीस वर्ष तक ब्रह्मचर्यपूर्वक रहने दीजिएगा। जैसे कि आपने गणेश पुरी (यह एक चक्राङ्कित महाराजा का मिथ्या प्रशंसावादी था) का संग छोड़ दिया है उसी प्रकार इन मधुरभाषिणी धोखा देने वाली वेश्याओं का संग क्यों नहीं छोड़ते? आपको वेश्याओं की संगति में रहकर अपने बहुमूल्य समय और सद्गुणों को नहीं खोना चाहिये। आपका जीवन इन्द्रियलोलुपता और विलास के लिए नहीं है। यह जीवन लाखों प्रजाजनों का भला करने, राज्यकार्य में कठिन परिश्रम करने, प्रजापालन में रत रहने और उचित न्याय प्रदान करने के लिए है।

मनुस्मृति के सप्तम, अष्टम और नवम अध्यायों में राजा के कर्तव्यों और न करने योग्य कार्यों का प्रतिपादन किया गया है। आप उनका अध्ययन करें। मुझे विश्वास है कि आप मेरे इन परामर्शों पर पूर्ण विचार करेंगे। मेरे परामर्श कटु अवश्य हैं, पर इनसे आपका कल्याण होगा। आप वास्तविक शान्ति प्राप्त करेंगे।

महर्षि की जीवनकथाओं में वर्णन आया है कि—एक दिन

की घटना है—दयानन्द सरस्वती जब जोधपुर नरेश के भवन में उनसे मिलने गए, उस समय उनकी प्रिय वेश्या नन्हीं जान महाराजा के पास बैठी हुई थी। दयानन्द सरस्वती को आते देखकर महाराजा ने नौकरों से कह कर नन्हीं जान को डोली में बिठाकर बाहर भेजने का प्रयत्न करते हुए डोली पर अपना कंधा भी लगाया। स्वामीजी महाराज ने यह देख लिया। उन्हें इस घटना को देखकर बहुत दुःख हुआ। वे एक क्षत्रिय नरेश का इस प्रकार पतन नहीं सह सकते थे। उन्होंने जोधपुर नरेश महाराजा जसवन्तसिंह को दो-तीन घण्टे राजनीति और क्षत्रियोचित आचार-व्यवहार पर उपदेश देते हुए कहा—क्षत्रिय राजा सिंह के समान समझे जाते हैं। वेश्याओं का स्थान समाज में कुतियों के समान है। सिंहों का कुतिया के साथ सम्बन्ध कहां तक शोभा देता है ?

महाराजा जसवन्तसिंह का सिर लज्जा से झुक गया। नन्हीं जान को जब यह समाचार मिला तो उसके क्रोध की सीमा न रही। उस के मन में यह भय उत्पन्न हो गया कि कहीं महाराजा जसवन्तसिंह उसे छोड़ न दें। वैर और बदला लेने की भावना उसके मन में दृढ़ हो गई।

विष-प्रयोग

पच्चीस सितम्बर की रात्रि के समय स्वामीजी महाराज का सेवक कल्लू कहार उनके छः सात सौ रुपये का सामान चोरी करके खिड़की के मार्ग से भाग गया। यह कहार महाराज की परिश्रम और प्रेम से सेवा करता था। ब्रह्मचारी रामानन्द (स्वामीजी का शिष्य) को स्वामी जी महाराज ने आदेश दे रखा था कि वह खिड़की के आगे सोया करे। वह भी उस दिन वहां न सोया। जिस कोठी में महाराज निवास कर रहे थे, उस के पहरेदार भी उसी दिन निद्रा के वशीभूत हो गए।

कल्लू कहार स्वामीजी महाराज के साथ ही पहली बार जोधपुर आया था। वह जोधपुर के अन्दर बाहर से अपरिचित था।

जोधपुर का शहर कोतवाल मोहिनुद्दीनखां तथा अन्य पुलिस अधिकारी शीघ्र सूचना पाने पर भी चोर की तलाश करने में असमर्थ रहे। इसमें क्या रहस्य है यह इतिहास के सूक्ष्म विवेचक ही बतला सकते हैं।

स्वामीजी महाराज से पूछा गया कि आप किस-किस व्यक्ति पर चोरी में भाग लेने का सन्देह करते हैं? महाराज ने अपने सरल स्वभाव के अनुसार किसी पर सन्देह प्रकट नहीं किया।

आश्विन वदी चौदह सं० १६४० वि०(२६ सितम्बर सन् १८८३) की रात्रि के समय स्वामीजी महाराज ने रसोइये से दूध लेकर पिया और सो गए। अर्ध रात्रि के समय तीव्र उदर शूल प्रारम्भ हो गया। महाराज की निद्रा भंग हो गयी। तीन बार वमन हुआ, पर उन्होंने रात्रि के समय किसी को जगाकर कष्ट देना उचित न समझा। तीस सितम्बर प्रातःकाल महाराज विलम्ब से उठे। उठते ही पुनः वमन हुआ। उन्हें सन्देह हो गया कि किसी ने दूध में विष मिला कर दिया है। विषदोष के निराकरण के लिए महाराज ने जलपान कर पुनः वमन किया। शूल वेदना बढ़ती ही गई।

विष मिश्रित दूध पिलाने वाले रसोइये का नाम धौल मिश्र था या जगन्नाथ, इस विषय में लेखकों की भिन्न-भिन्न राय है। प्रचलित कथा तो यही है कि उनके रसोइये जगन्नाथ ने वेश्या नन्हीं जान द्वारा प्रलोभन दिये जाने पर दयानन्द सरस्वती को दूध में विष मिलाकर दिया।

पं० नानूराम ब्रह्मावर्त दयानन्द सरस्वती को शाहपुरा से

जोधपुर लाने के लिए गया था। उसकी घोषणा के अनुसार नन्हीं जान के प्रोत्साहन पर कलिया उपनाम जगन्नाथ ने वहां के माली के साथ गुप्त मन्त्रणा कर दयानन्द सरस्वती को दूध में विष मिलाकर पीने के लिए दिया था।

जोधपुर के प्रसिद्ध इतिहासवेत्ता देवीप्रसाद का भी यही मत है कि नन्हीं जान ने वहाँ के माली को प्रलोभन दिया और माली ने स्वामीजी महाराज के रसोइये कलिया को महाराज को विष देने के लिए तैयार कर लिया।

राजकोट के एक महाशय की सूचना के आधार पर 'सद्धर्म प्रचारक' समाचारपत्र में इस विषय में जो समाचार प्रकाशित हुआ उसके अनुसार भी ब्राह्मणवंशीय जगन्नाथ ने, जो महाराज की पाकशाला में पाचन क्रिया भी किया करता था, किसी के बहकाने पर प्रलोभनवश दयानन्द सरस्वती को दूध में विष मिलाकर पिलाने का महापातक किया। ज्ञात होने पर महाराज ने उसे सर्वथा क्षमा प्रदान कर कुछ रुपये दिये और तुरन्त जोधपुर राज्य की सीमा पारकर नेपाल जाने का आदेश दिया।

पापी ने अपना पापकर्म न छोड़ा। संन्यासी ने अपने क्षमा-धर्म का परित्याग न किया। दया के सागर दयानन्द ने विष देकर मारने वाले जगन्नाथ को अपना दया का पात्र बनाकर जीवन-दान दिया।

दयानन्द सरस्वती के समीपवर्ती शिष्यजनों ने महाराज की तीव्र वेदना में किसी प्रकार की कमी न देखकर रावराजा तेजसिंह को बुलवाया। स्वामीजी महाराज किसी हिन्दू चिकित्सक से ही चिकित्सा कराना चाहते थे। रावराजा ने जोधपुर जेल के डाक्टर सूरजमल को बुलवाया। इस समय महाराज को वमन के साथ अतिसार भी शुरू हो गया था। ज्वरांश भी था। डॉ० सूरजमल की औषधि से ज्वर का वेग

तो कुछ कम हुआ पर उदरशूल में कमी न हुई। कर्नल सर प्रतापसिंह ने डा० अलीमर्दानखां को महाराज की चिकित्सा के लिए भेजा। डा० अलीमर्दानखां एक साधारण सब असिस्टैण्ट सर्जन था। मिथ्या प्रशंसावादी होने से राजकर्मचारियों का मुंह लगा था। डॉ० अलीमर्दानखां की चिकित्सा सर्वथा प्रतिकूल सिद्ध हुई। ज्यों-ज्यों औषधि दी गई महाराज का रोग बढ़ता गया।

दो अक्टूबर के दिन डा० अलीमर्दानखां ने महाराज को विरेचक औषधि दी। औषधि की मात्रा चारगुनी थी। महाराज के पूछने पर उसने कहा कि इससे आपको छः सात वार विरेचन होगा। तीन अक्टूबर प्रातः दस बजे तक तो विरेचन नहीं हुआ परन्तु उसके बाद चार अक्टूबर प्रातःकाल तक चालीस वार विरेचन हुआ। दिनभर विरेचन होता रहा। सायंकाल महाराज अपने आपको अत्यन्त निर्बल अनुभव करने लगे। मूर्छा आने लगी। तीव्रशूल और अतिसार के साथ महाराज के गले, जिह्वा, तालु तथा मुख में छाले पड़ गए। हिचकियां शुरू हो गई। सोलह अक्टूबर तक डा० अलीमर्दानखां की चिकित्सा चालू रही। प्रतिदिन दस पन्द्रह विरेचन होते रहे। शूल में किसी प्रकार की कमी न हुई। हिचकियां और छाले बढ़ते गए। अवस्था अधिक गम्भीर हो गई।

इस कष्टमय अवस्था में भी दयानन्द सरस्वती शान्त थे। चिकित्सक के मन में क्या भावना थी यह तो इतिहास के सूक्ष्म विवेचक ही बतला सकेंगे, पर स्वीमाजी के मन में किसी प्रकार की सन्देह भावना न थी। डा० अलीमर्दानखां राजकर्मचारियों को यही कहता रहा कि किसी प्रकार की चिन्ता की बात नहीं, दयानन्द सरस्वती शीघ्र स्वस्थ हो जायेंगे।

बारह अक्टूबर तक दयानन्द सरस्वती की रुग्णता का समा-

चार जोधपुर के बाहर किसी को ज्ञात न हुआ। इसी दिन राजपूताना-गजट में प्रथम वार महाराज के रोगी होने का समाचार प्रकाशित हुआ। अजमेर के एक भक्तजन की दृष्टि इस समाचार पर पड़ी। आर्यसमाज के सदस्यों में इस समाचार से हलचल होने लगी। लाला जेठमल को जोधपुर भेजा गया। जोधपुर पहुँच कर ला० जेठमल महाराज की दशा देखकर अत्यन्त उद्विग्न हो गए। दयानन्द सरस्वती को प्रणाम कर निवेदन किया—महाराज ! आप इस प्रकार कष्टमय अवस्था में हैं पर आपने किसी आर्यसमाज को अपने रोग-ग्रस्त होने की सूचना नहीं दी।

महाराज ने उत्तर दिया—प्रिय जेठमल ! दुःख-सुख तो शरीर के साथ बने रहते हैं। मेरी कष्टमय अवस्था को देखकर आप सब भी अपने आपको दुःखी अनुभव करते। अपने कष्ट के साथ सबको कष्ट देने की मेरी इच्छा नहीं थी।

ला० जेठमल ने उसी समय बम्बई, फर्रुखाबाद, मेरठ, लाहौर, अजमेर तथा अन्य स्थानों की आर्यसमाजों को तार द्वारा महाराज के रोग की गम्भीर अवस्था की सूचना दी। सारे आर्य जगत में शोक व अशान्ति छा गई। सब ओर से महाराज के स्वास्थ्य की जानकारी के लिए तार आने लगे।

यह देखकर सब भक्तजन आश्चर्य में थे कि हम सब के नव-जीवन देने वाले परम श्रद्धेय गुरु के जीवन के साथ जोधपुर में खिलवाड़ हो रहा है। जोधपुर में उस समय डा० रोडमस और डा० नवीनचन्द्र गुप्त दो सुयोग्य प्रथम श्रेणी के चिकित्सक थे। इस गम्भीर अवस्था में भी महाराज की सम्भाल करने वाले रावराजा तेजसिंह तथा कर्नल सर प्रतापसिंह ने इन दोनों में से किसी डाक्टर को महाराज की चिकित्सा में परामर्श के लिए नहीं बुलवाया। एक साधारण तृतीय श्रेणी के सब असिस्टैण्ट

डा० अलीमर्दानखां के हाथ दयानन्द सरस्वती के जीवन की बागडोर सम्भाल कर निश्चिन्त हो गए। रावराजा तेजसिंह प्रतिदिन महाराज की दशा देखने आते थे पर उनकी बिगड़ती हुई दशा देखकर भी उन्होंने किसी योग्य चिकित्सक को चिकित्सा परामर्श के लिए बुलवाने का यत्न नहीं किया। कर्नल सर प्रतापसिंह और जोधपुर नरेश महाराजा जसवन्त सिंह तो स्वामीजी महाराज की स्वास्थ्य दशा देखने भी कभी नहीं आए।

ला० जेठमल ने दयानन्द सरस्वती के रोग की गम्भीर दशा देखकर उन्हें यथासम्भव शीघ्र अजमेर ले जाना चाहा। पन्द्रह अक्टूबर के दिन डा० अलीमर्दानखां भी महाराज के रोग की गम्भीर दशा देखकर डर गया। वह नहीं चाहता था कि स्वामीजी महाराज जोधपुर में ही शरीर त्याग करें और उसे इस अपयश का भागी बनना पड़े। डा० अलीमर्दानखां ने दयानंद सरस्वती को वायु परिवर्तन के लिए आबू ले जाने का परामर्श दिया। इस दिन प्रथम वार जोधपुर राज्य के प्रधान चिकित्सक डा. रोडमस को दयानंद सरस्वती की स्वास्थ्य-परीक्षा के लिए बुलवाया गया। उसने भी महाराज को आबू भेजने के लिए सहमति प्रकट की। आबू में जोधपुर राज्य के भवन में महाराज के निवास का प्रबन्ध किया गया।

सोलह अक्टूबर के दिन मध्याह्नोत्तर काल में जोधपुर नरेश महाराजा जसवन्तसिंह तथा कर्नल सर प्रतापसिंह दयानन्द सरस्वती को विदा करने के लिए उनके निवास स्थान पर आए। महाराज की गम्भीर दशा देखकर चिन्ता प्रकट की। महाराज के आबू तक जाने के लिए सभी प्रकार की सुविधाओं का प्रबन्ध किया। महाराजा जसवन्तसिंह ने २५००) रु० तथा दो शाल महाराज को भेंट किये। अपनी फलालैन की पेटी अपने हाथ से

महाराज को बांधी जिससे उन्हें लेटने में कष्ट न हो तथा पेट पर शीतल वायु का बुरा प्रभाव भी न पड़े। डा० सूरजमल और चारण नवलदान को आबू रोड तक स्वामीजी महाराज के साथ जाने का आदेश दिया।

दयानन्द सरस्वती को धीरे से पालकी पर लिटाया गया। सम्मान प्रदर्शन के लिए जोधपुर नरेश ने भी पालकी पर कंधा लगाया। अपने कर्मचारियों के साथ कोठी के द्वार तक स्वामीजी महाराज को छोड़ने गए। विदाई के समय जोधपुर नरेश ने स्वामीजी महाराज के स्वास्थ्य लाभ करने पर पुनः जोधपुर पधारने की प्रार्थना की।

मार्ग लम्बा था। देह की दशा गम्भीर थी। अतिसार, वमन और उदरशूल सभी कष्ट उग्र अवस्था में थे। महाराज का चित्त शान्त था। किसी प्रकार की आह न थी।

डा० सूरजमल की पत्नी जोधपुर में रोग पीड़ित थी, अतः महाराज ने आधे मार्ग में ही उन्हें जोधपुर वापिस जाने का आदेश दिया।

जिला अलीगढ़ के प्रतिष्ठित ठाकुर भूपालसिंह महाराज के परम भक्त थे। वे महाराज की सेवा करने के लिए आबू के मार्ग में ही महाराज के पास पहुँच गए। उन्होंने सेवा का संपूर्ण कार्य अपने हाथ में ले लिया। जीवन के अन्तिम समय तक महाराज को उठाना, बिठाना, मलमूत्र साफ करना, वस्त्र धोना आदि सभी कार्य वे अपने हाथ से करते रहे। आबू पर्वत पर मेरठ से म० लक्ष्मणस्वरूप, फर्रुखाबाद से ला० शिवदयाल, बम्बई से श्रीकृष्णदास भी महाराज की सेवा में आ पहुँचे। जोधपुर से कर्नल सर प्रतापसिंह भी महाराज के दर्शन करने आबू पधारे।

इक्कीस अक्टूबर के दिन प्रातःकाल स्वामीजी महाराज

आबू रोड पहुँचे। यहाँ कुछ विश्राम करने के अनन्तर उन्हें पुनः पालकी पर लिटा दिया गया। महाराज की पालकी आबू रोड से आबू पर्वत जा रही थी। पंजाब के ज़िला शाहपुर के निवासी डा० लछमनदास आबू पर्वत से अजमेर जाने के लिए आबूरोड की ओर आ रहे थें। वे राजकीय अस्पताल में काम करते थे। उन्हें आबू से अजमेर के अस्पताल में सेवा के निमित्त जाने के लिए आदेश दिया गया था।

मार्ग में स्वामीजी महाराज को पालकी में ले जाते हुए देखकर पूछताछ करने पर उन्हें ज्ञात हुआ कि इसमें दयानन्द सरस्वती विराजमान हैं। उनकी दशा गम्भीर है। डा० लछमन दास उसी समय महाराज़ के साथ वापिस आबू पर्वत की ओर चल पड़े। मार्ग में आवश्यक चिकित्सा व्यवस्था भी करते रहे। आबू पर्वत पहुँचने पर भी डा० लछमनदास की चिकित्सा जारी रही। इससे महाराज को कुछ शान्ति मिली। वमन अतिसार में भी बहुत लाभ हुआ। चौबीस अक्टूबर के दिन महाराज़ को नींद भी आई।

राजस्थान के चीफ़ मैडिकल ऑफिसर कर्नल स्पैंसर की आज्ञानुसार डा० लछमनदास को अजमेर जाना था। दयानन्द सरस्वती जैसे महापुरुष की सेवा और चिकित्सा का सौभाग्य किसी विरले भाग्यवान मनुष्य को ही प्राप्त हो सकता था। डा० लछमनदास ने कर्नल से प्रार्थना की कि उन्हें अपने गुरु दयानन्द सरस्वती की सेवा के लिए दो मास का अवकाश दिया जाये। कर्नल ने अवकाश की प्रार्थना स्वीकार न की। डा० लछमनदास ने सेवा से त्यागपत्र देने का निश्चय किया, पर जब दयानन्द सरस्वती को इसका पता लगा तो उन्होंने त्याग पत्र फाड़ कर फेंक दिया और डा० लछमनदास को अजमेर जाने का आदेश दिया। भक्त डा० लछमनदास का मन न

माना। उसने फिर त्यागपत्र लिखकर कर्नल स्पैंसर की सेवा में प्रस्तुत किया। कर्नल स्पैंसर ने त्यागपत्र अस्वीकृत करते हुए कहा कि तुम्हें अजमेर जाना पड़ेगा। मैं तुम्हारे गुरु की चिकित्सा स्वयं करूँगा।"

डा० लछमनदास को न चाहते हुए भी अजमेर जाना पड़ा। महाराज का भी यही आदेश था।

कर्नल स्पैंसर की चिकित्सा महाराज को अनुकूल न पड़ी। पुनः रोग ने उग्ररूप धारण कर लिया। स्वामीजी महाराज के भक्त भूपालसिंह ने महाराज से अजमेर चलने के लिए निवेदन किया। बम्बई के श्री सेवकराम कर्शनदास ने भी महाराज से नम्रतापूर्वक अजमेर चलने के लिए अनुरोध किया। महाराज की इच्छा न थी कि शरीर की इस विषम अवस्था में भक्तजनों को कष्ट दिया जाये। न चाहते हुए भी भक्तजनों का अनुरोध स्वीकार करना पड़ा। कार्तिक वदी ग्यारह (२६ अक्टूबर) के दिन महाराज ने आबू पर्वत से प्रस्थान किया। अगले दिन चार बजे ब्राह्म मुहूर्त के समय अजमेर पहुंच गए। वहां आगरा दरवाजे के बाहर भिनाई हाउस में महाराज के विश्राम का प्रबन्ध किया गया।

डा० लछमनदास को पुनः चिकित्सा के निमित्त बुलवाया गया। स्वास्थ्य में उतराव-चढ़ाव दीखते रहे, पर महाराज अनुभव करने लगे कि अब इस देह के त्याग का समय आ गया है। विष का प्रभाव सारे शरीर में व्याप्त हो गया था। उदर-शूल के साथ कफ का प्रकोप भी होने लगा। अन्तर्दाह बढ़ता गया। सारे शरीर में छाले फैलने लगे।

दीपमालिका के एक दिन पूर्व लाहौर से पं० गुरुदत्त एम० ए० (साईंस) तथा ला० जीवनदास भी महाराज के दर्शनों के निमित्त अजमेर पहुंच गए। उदयपुर से महाराणा सज्जनसिंह

ने मोहनलाल विष्णुलाल पाण्ड्या को महाराज के स्वास्थ्य समाचार जानने के लिए भेजा, साथ ही कहलाया कि महाराज की चिकित्सा में कोई कमी न होने पाये।

सभी समागन्तुक भक्तजन महाराज की गम्भीर अवस्था को देख कर अधीर हो उठे। इस आतुर अवस्था में महाराज अपनी शान्त दृष्टि से सब को धीरज बंधा रहे थे। ला० जीवन लाल ने महाराज से पं० गुरुदत्त का परिचय कराया।

कार्तिक अमावस्या (३० अक्टूबर) के दिन डा० लछमनदास ने महाराज के जीवन की सब आशाएँ छोड़ दीं। भक्तजनों से अनुरोध किया कि किसी अन्य सुयोग्य डाक्टर को भी महाराज को दिखाने के लिए बुलवाया जाये। अजमेर के सिविल सर्जन डा० न्यूमैन को बुलाया गया। डा० न्यूमैन महाराज की दशा देखकर आश्चर्य में था। विष का प्रभाव सारे शरीर में छाया हुआ था। रोम-रोम में अन्तर्दाह था। इस कष्टदायी गम्भीर अवस्था में यह साधु शान्त था। साहस और सहनशीलता की पराकाष्ठा थी। डा० न्यूमैन ने रोग परीक्षा के बाद डा० लछमनदास के चिकित्सा-क्रम से सहमति प्रकट करते हुए छाती में कफ के प्रकोप को कम करने के लिए पुलटिस लगाने का परामर्श दिया। पर दशा में कोई परिवर्तन न हुआ।

दीपमालिका का दिन
"ईश्वरेच्छा में"

यद्यपि आज के दिन दशा अधिक गम्भीर थी। पर दयानन्द सरस्वती अपने आपको कुछ अच्छा अनुभव कर रहे थे। प्रातः-काल ही नाई को बुलवाया। अजमेर आर्यसमाज के मन्त्री बाबू मथुराप्रसाद नाई की तलाश में गए। नाई ने कहा—आज दीपमालिका का दिन है, मैं क्षौर-कर्म के पांच रुपये लूंगा। वे उसे महाराज के पास ले आए। क्षौर-कर्म के अनन्तर महाराज

ने स्वयं मथुराप्रसाद से कहा कि इसे पांच रुपये दे दो। कमरे के बाहर आने पर उसे एक रुपया दिया गया। वह पुनः महाराज के पास आया। महाराज ने उसे चार रुपये और दिला दिये।

ग्यारह बजे के समय महाराज ने शौच के निमित्त उठना चाहा। चार जनों ने उन्हें उठाया। निवृत्त होने पर पुनः पलङ्ग पर लिटा दिया। इस समय श्वास की गति तीव्र थी। भक्तजनों ने महाराज से पूछा—आप कैसा अनुभव कर रहे हैं ?

महाराज ने शान्त भाव से उत्तर दिया—आज मैं अच्छा अनुभव कर रहा हूं। एक मास के बाद आज का दिन आराम का है।

लाला जीवनदास ने पूछा—आप कहां है ?

महाराज ने कहा—"ईश्वरेच्छा में"

चार बजे के समय महाराज ने अपने शिष्य आत्मानन्द को बुलाया। उसे अपनी पीछे सिर के पास बैठने का आदेश दिया। उससे पूछा—आत्मानन्द ! तुम क्या चाहते हो ?

आत्मानन्द ने कहा—महाराज ! मैं ईश्वर से यही प्रार्थना करता हूँ कि आप अच्छे हो जायें।

महाराज ने उसे सान्त्वना देते हुए कहा—यह देह पांचभौतिक है। इस का अच्छा क्या होगा ? पुनः उसके सिर पर आशीर्वाद का हाथ रखकर कहा—आनन्द से रहना।

महाराज के दर्शनार्थ काशी से स्वामी गोपालगिरि भी आए हुए थे। उन्हें भी इसी प्रकार आशीर्वाद दिया।

इसके अनन्तर दो सौ रुपये और दो दुशाले मंगाकर कहा—आत्मानन्द और भीमसेन दोनों को ये दे दो।

दूर प्रदेशों से आए हुए सभी भक्तजन शोकार्द्र चित्त श्रद्धा-

भरी भावना से महाराज़ के सामने खड़े हो गए। महाराज ने उन्हें कृपाभरी दृष्टि से देखा, मानो मौन उपदेश कर रहे हों—भक्त पुरुषो! धैर्य और साहस धारण करो। अधीर न बनो। उदास होने का कोई कारण नहीं। यह शरीर तो नाशवान् है।

महाराज का मुखमण्डल शान्त और प्रसन्न था। किसी प्रकार के शोक अथवा खेद का चिह्न न था। किसी प्रकार की आह न थी। धैर्य के साथ भक्तजनों से बात कर रहे थे। इसी समय अलीगढ़ से महाराज के सर्वप्रथम भक्त शिष्य सुन्दरलाल भी आ गए।

पांच बजे के पश्चात् महाराज ने सब समागत भक्तजनों को आदेश दिया कि वे उनके पीछे खड़े हो जायें। दरवाजे और रोशनदान खुलवा दिये। पूछा—आज कौन-सा मास, पक्ष और दिन है?

किसी भक्त ने कहा—महाराज़, आज कार्तिक मास की अमावस्या का दिन है। मङ्गलवार है।

यह सुनकर महाराज ने ऊपर की ओर दृष्टिपात किया, पुनः चारों ओर चमत्कारभरी दृष्टि से देखा और वेद मन्त्रों का पाठ करना आरम्भ कर दिया। कुछ समय वेदमन्त्र पाठ कर संस्कृत में ईश्वर की स्तुति की। गुणगान के साथ आनन्द मग्न होकर गायत्री मन्त्र का उच्चारण किया और शान्त समाधिस्थ हो गए। पुनः आंखें खोलकर "ओ३म्" का उच्चारण किया और कहा—

'हे दयामय सर्वशक्तिमान् ईश्वर! तेरी यही इच्छा है, तेरी यही इच्छा है, तेरी इच्छा पूर्ण हो। जद्भुत तेरी लीला है।"

इन शब्दों के साथ स्वयं करवट ली। एक वार श्वास को

रोक कर पुनः सदा के लिए बाहर निकाल दिया। दीपमालिका के दिन सायंकाल छः बजे का समय था। दयानन्द सरस्वती इहलीला समाप्त कर ज्योतिर्मय प्रभु की शरण में चले गए।

भक्तजन निहारते रह गए। पं० गुरुदत्त विद्यार्थी प्रथम वार दयानन्द सरस्वती के दर्शन करने आए थे। पाश्चात्य विज्ञान के विद्यार्थी थे। ईश्वर पर विश्वास कुछ कम था। भक्त-जनों के साथ इस योगी की लीला देख रहे थे। असह्य वेदना और अन्तर्दाह में भी यह योगी आनन्दमग्न है। कोई दिव्य शक्ति इसका आह्वान कर रही है। यह उसकी शरण में प्रसन्नचित्त जा रहा है। यमराज खड़ा हुआ देख रहा है। यह योगी सदा के लिए अमर पद प्राप्त कर रहा है।

गुरुदत्त को भी इस दिव्य शक्ति के दर्शन हो गए। अन्ध-कार नष्ट हुआ। दिव्य ज्योति का अन्तःप्रवेश हो गया। आज से वह पूर्ण आस्तिक हो गया। ईश्वर-विश्वासी बन गया।

सभी समुपस्थित भक्तजनों के नेत्र इस योगी की वेदनामय विदाई से अश्रुपूर्ण थे। पर इस विदाई के दिव्यतापूर्ण दृश्य को देखकर वे अपने हृदयों में अद्‌भुत ज्योति के प्रवेश का गौरव अनुभव कर रहे थे। यद्यपि उनके मृण्मय घरों में आज अन्धकार था पर हृदयों में दीपावलि का अमिट प्रकाश था।

अगले दिन इस योगी के शरीर की अन्त्येष्टि क्रिया की तैय्यारी हुई। काष्ठमय अर्थी को केले के पत्तों और पुष्पों से सजाया गया। शरीर पर चन्दन का लेप किया गया। अर्थी पर रखकर एक विशाल शोभा-यात्रा (जुलूस) के साथ श्मशान-घाट पर ले जाया गया। इस शोभा-यात्रा में अजमेर की जनता के साथ वहां रहने वाले बङ्गाली, पंजाबी, दाक्षिणात्य तथा अन्य भक्त पुरुष बड़ी संख्या में सम्मिलित हुए। श्री हरविलास

शारदा भी इस अर्थी के साथ थे। उनके कथनानुसार सोलह पुरुष एक समय में उस अर्थी को उठाकर ले जा रहे थे। सभी सज्जन क्रमशः कंधा दे रहे थे। साथ-साथ वेद मन्त्रों का उच्च स्वर से गान हो रहा था।

श्मशान घाट पर अन्त्येष्टि क्रिया के निमित्त विशेष रूप से वेदी का निर्माण किया गया। संस्कार-विधि के अनुसार वैदिक विधि से अन्त्येष्टि क्रिया की गई।

जिस तेजस्वी विशाल काया को देखकर सभी भक्तजन नत-मस्तक होकर अभिवन्दना करते थे, आज उसे अपने हाथों से चिता में रखकर अग्नि की ज्वालाओं को समर्पित कर रहे थे। सब के नेत्रों में अश्रु भरे थे। वाणी में स्पन्दन नहीं। मन में शोकावेग से चिन्तन नहीं। अन्त्येष्टि क्रिया की समाप्ति पर मूक भावना के साथ सभी समुपस्थित जन धीमी गति से अपने-अपने घरों को चले गए।

महर्षि दयानन्द

विचार और दर्शन खंड

१. सत्य : वेद

२. तीन अनादि :
ईश्वर—जीव—प्रकृति

३. जगत् और मुक्ति

४. समाज व्यवस्था :
वर्ण—आश्रम—राज्य—आचार

सत्य

सत्य भावना—सत्यासत्य परीक्षा—ईश्वरीय ज्ञान वेद

सत्य भावना

"सत्य को ग्रहण करने और असत्य को छोड़ने में सदा तत्पर रहना चाहिये।"

—'आर्यसमाज के नियम' ४

"सब काम धर्मानुसार अर्थात् सत्य और असत्य को विचार कर करने चाहियें।"

—'आर्यसमाज क नियम' ५

'मेरा इस ग्रन्थ (सत्यार्थप्रकाश) के बनाने का मुख्य प्रयोजन सत्य सत्य अर्थ का प्रकाश करना है। अर्थात् जो सत्य है उसको सत्य और जो मिथ्या है उसको मिथ्या ही प्रतिपादन करना सत्य अर्थ का प्रकाश समझा है।".........

"जो मनुष्य पक्षपाती होता है वह अपने असत्य को भी सत्य और दूसरे विरोधी मत वाले के सत्य को भी असत्य सिद्ध करने में प्रवृत होता है".........

"यद्यपि आजकल बहुत से विद्वान् प्रत्येक मतों में हैं, वे पक्षपात छोड़ सर्वतन्त्र सिद्धान्त अर्थात् जो जो बातें सबके अनुकूल सबमें सत्य हैं, उनका ग्रहण और जो एक दूसरे से विरुद्ध बातें हैं उनका त्याग कर परस्पर प्रीति से वर्तें वर्तावें तो जगत् का पूर्ण हित होवे। क्योंकि विद्वानों के विरोध से अविद्वानों में

विरोध बढ़कर अनेकविध दुःख की वृद्धि और सुख की हानि होती है।"

—'सत्यार्थप्रकाश' भूमिका

जब तक इस मनुष्य जाति में परस्पर मिथ्या मतमतान्तर का विरुद्ध वाद न छूटेगा तब तक अन्योन्य को आनन्द न होगा। यदि हम सब मनुष्य और विशेष विद्वज्जन ईर्ष्या द्वेष छोड़ सत्यासत्य का निर्णय करके सत्य का ग्रहण और असत्य का त्याग करना कराना चाहें तो हमारे लिए यह बात असाध्य नहीं है। यह निश्चय है कि इन विद्वानों के विरोध ही ने सबको विरोध जाल में फंसा रखा है। यदि ये लोग अपने प्रयोजन में न फंसकर सबके प्रयोजन को सिद्ध करना चाहें तो अभी ऐक्यमत हो जाए।

—'सत्यार्थप्रकाश' अनुभूमिका एकादश समुल्लास

"मैं अपना मन्तव्य उसी को जानता हूँ जो तीन काल में सबको एकसा मानने योग्य है। मेरा कोई नवीन कल्पना वा मत मतान्तर चलाने का लेशमात्र भी अभिप्राय नहीं है। किन्तु जो सत्य है उसको मानना मनवाना और जो असत्य है उसको छोड़ना छुड़वाना मुझ को अभीष्ट है।"

—'स्वमन्तव्यामन्तव्यप्रकाश'

महर्षि दयानन्द के इन ऊपर के लेखांशों से उनकी सत्य के प्रति भावनाएँ स्वयं स्पष्ट हो जाती हैं। वे असत्य के प्रसार को सहन नहीं कर सकते थे। असत्य का खंडन निर्भयता के साथ करते थे। सत्य को मानने और मनवाने में पूर्ण निष्ठा से प्रयत्न करते थे। उन्हें किसी नवीन मत की योजना बनाकर गुरु बनने अथवा प्रतिष्ठा प्राप्त करने की इच्छा न थी। ईश्वरीय ज्ञान वेद और प्राचीन ऋषियों के बनाए हुए ग्रन्थों में उनकी आस्था थी। पाखण्डमयी प्रथाओं के वे विरोधी थे। वेद और

ऋषिकृत ग्रन्थों में उन्हें सत्य का प्रकाश दीख रहा था। इन्हीं ग्रन्थों से ज्ञान प्राप्त कर तर्क के आधार पर उन्होंने मानव समाज के सम्मुख सत्यार्थ का प्रकाश किया। इसी में वे मानव कल्याण समझते थे।

असत्य के खण्डन और निवारण में निर्भय और कठोर तथा असत्य के प्रसार में असहिष्णु दयानन्द अपने व्यावहारिक जीवन में परम सहिष्णु तथा क्षमाशील थे।

महर्षि के जीवन की इस प्रकार की अनेक घटनाएँ पीछे दी चुकी हैं जिन में महर्षि ने अपने विष देने वाले विरोधियों को क्षमा प्रदान की। उनके साथ प्रेम और सहानुभूति का व्यवहार किया। उन्हें किसी प्रकार का कष्ट नहीं होने दिया।

महर्षि की असत्य के प्रति असहिष्णुता का कारण भी मानव के प्रति परम करुणा की भावना थी। वे नहीं चाहते थे कि मानव अन्धकार परम्परा में बहता हुआ दुःख सागर में डूबे।

अपने जीवन को संकटों में डालकर भी वे मानवहित के लिए असत्य का खण्डन और सत्यार्थ का प्रकाश जीवन पर्यन्त करते रहे। सत्य के प्रकाश के लिए संकटों के साथ संघर्ष करने में वे वीर थे, आत्मविश्वासी थे। सत्यार्थ के प्रकाश के लिए उनका जीवन था। इसी के लिए उन्होंने अपने जीवन की आहुति दी। महर्षि का एकमात्र ध्येय जीवन के अन्तिम क्षण तक यह रहा कि

निन्दन्तु नीति निपुणाः यदि वा स्तुवन्तु
लक्ष्मी समाविशतु गच्छतु वा यथेष्टम्
अद्यैव वा मरणमस्तु युगान्तरे वा
न्यायात्पथः प्रविचलन्ति पदं न धीराः ॥

भर्तृहरि का यह श्लोक अपने आदर्श के रूप में महर्षि ने स्वमन्तव्यामन्तव्यप्रकाश में उद्धृत किया है।

न्याय्य (सत्य) मार्ग पर चलते हुए निन्दा और स्तुति की

उन्हें चिन्ता न थी। लक्ष्मी आती है या जाती है इसका ध्यान न था। मृत्यु सामने खड़ी है इसका भी भय न था। युग-युग जीने का प्रलोभन न था। एक ही ध्येय था कि धीर तथा सत्य निष्ठावान पुरुष न्याय्य (सत्य) मार्ग से विचलित नहीं होता।

सत्यासत्य परीक्षा

महर्षि दयानन्द के विचारों के अनुसार 'पांच प्रकार की परीक्षाओं से सत्यासत्य का निश्चय मनुष्य कर सकता है अन्यथा नहीं।"

"एक—जो जो ईश्वर के गुण, कर्म, स्वभाव और वेदों के अनुकूल हो वह वह सत्य और उससे विरुद्ध असत्य हैं।"

"दूसरी—जो जो सृष्टिक्रम से अनुकूल वह वह सत्य और जो जो सृष्टिक्रम के विरुद्ध है वह असत्य है, जैसे कोई कहे कि बिना माता-पिता के योग से लड़का उत्पन्न हुआ ऐसा कथन सृष्टिक्रम के विरुद्ध होने से सर्वथा असत्य है।"

"तीसरी—'आप्त' अर्थात् जो धार्मिक, विद्वान, सत्यवादी निष्कपटियों का संग उपदेश के अनुकूल हो वह वह ग्राह्य और जो जो विरुद्ध वह वह अग्राह्य है।"

"चौथी—अपनी आत्मा की पवित्रता, विद्या के अनुकूल अर्थात् जैसा अपने को सुख प्रिय और दुःख अप्रिय है वैसे ही सर्वत्र समझ लेना कि मैं भी किसी को सुख वा दुःख दूँगा तो वह भी प्रसन्न और अप्रसन्न होगा।"

"पांचवीं—आठों प्रमाण अर्थात् प्रत्यक्ष, अनुमान, उपमान, शब्द, ऐतिह्य, अर्थापत्ति, सम्भव और अभाव"

—'सत्यार्थप्रकाश' तृतीय समुल्लास

प्रमाण आठ अथवा चार

महर्षि दयानन्द गौतम मुनि प्रणीत न्याय दर्शन के अनुसार आठ प्रमाणों की व्याख्या करते हैं। प्राचीन छः दर्शनों में न्याय

दर्शन ही तर्क प्रणाली का प्रतिपादन करने वाला मुख्य ग्रन्थ है। सत्यासत्य के निश्चय के लिए पाँच परीक्षाओं का वर्णन करते हुए महर्षि दयानन्द आठ प्रमाणों के लक्षण और उनकी व्याख्या इस प्रकार करते हैं :—

१. प्रत्यक्ष

इन्द्रियार्थसन्निकर्षोत्पन्नं ज्ञानमव्यपदेश्यमव्यभिचारि व्यवसायात्मकम्प्रत्यक्षम् ।'—न्यायदर्शन १.१.४

जो श्रोत्र, त्वचा, चक्षु, जिह्वा, और घ्राण का शब्द, स्पर्श, रूप, रस और गन्ध के साथ अव्यवहित अर्थात् आवरण रहित सम्बन्ध होता है, इन्द्रियों के साथ मन का और मन के साथ आत्मा के संयोग से ज्ञान उत्पन्न होता है उसको प्रत्यक्ष कहते हैं परन्तु जो व्यपदेश्य अर्थात् संज्ञा-संज्ञी के संबंध से उत्पन्न होता है वह ज्ञान न हो।

जैसा किसी ने किसी से कहा कि "तू जल ले आ" वह जल लाके उसके पास धर के बोला कि 'यह जल है" परन्तु वहाँ "जल" इन दो अक्षरों की संज्ञा लाने वा मंगाने वाला नहीं देख सकता है, किन्तु जिस पदार्थ का नाम जल है वही प्रत्यक्ष होता है। जो शब्द से ज्ञान उत्पन्न होता है वह शब्द प्रमाण का विषय है।

"अव्यभिचारि" जैसे किसी ने रात्रि में खम्भे को देख के पुरुष का निश्चय कर लिया, तब दिन में उसको देखा तो रात्रि का पुरुष-ज्ञान नष्ट होकर स्तम्भ-ज्ञान रहा, ऐसे विनाशी ज्ञान का नाम 'व्यभिचारी' है। सो प्रत्यक्ष नहीं कहाता।

"व्यवसायात्मक" किसी ने दूर से नदी की बालू को देख के कहा कि 'वहां वस्त्र सूख रहे हैं, जल है वा कुछ है', 'वह देवदत्त खड़ा है वा यज्ञदत्त' जब तक यह एक निश्चय न हो तब तक वह प्रत्यक्ष ज्ञान नहीं है।

जो अव्यपदेश्य, अव्यभिचारि और निश्चयात्मक ज्ञान है उसी को प्रत्यक्ष कहते हैं।"

२. अनुमान

अथ तत्पूर्वकं त्रिविधमनुमानं पूर्ववच्छेषवत्सामान्यतो दृष्टंच।

—न्यायदर्शन १.१.५

जो प्रत्यक्षपूर्वक अर्थात् जिसका कोई एक देश वा सम्पूर्ण द्रव्य किसी स्थान व काल में प्रत्यक्ष हुआ हो उसका दूर देश से सहचारी एक देश के प्रत्यक्ष होने से अदृष्ट अवयवी का ज्ञान होने को अनुमान कहते हैं। जैसे पुत्र को देख के पिता, पर्वतादि में धूम को देख के अग्नि, जगत् में सुख दुःख देखके पूर्वजन्म का ज्ञान होता है। वह अनुमान तीन प्रकार का है।

एक 'पूर्ववत्', जैसे बादलों को देख के वर्षा, विवाह को देख के सन्तानोत्पत्ति, पढ़ते हुए विद्यार्थियों को देख के विद्या होने का निश्चय होता है इत्यादि। जहां-जहाँ कारण को देख के कार्य का ज्ञान हो वह 'पूर्ववत्'।

दूसरा 'शेषवत्' अर्थात् जहां कार्य को देख के कारण का ज्ञान हो। जैसे नदी के प्रवाह की बढ़ती देख के ऊपर से हुई वर्षा का, पुत्र को देख के पिता का, सृष्टि को देखके अनादि कारण का और पाप पुण्य के आचरण देख के सुख दुःख का ज्ञान होता है इसी को 'शेषवत्' कहते है।

तीसरा 'सामान्यतः दृष्ट, जो किसी का कार्य कारण न हो परन्तु किसी प्रकार का साधर्म्य एक दूसरे के साथ हो, जैसे कोई भी बिना चले दूसरे स्थान को नहीं जा सकता वैसे ही दूसरों का भी स्थानान्तर में जाना बिना गमन के कभी नहीं हो सकता।

अनुमान शब्द का अर्थ यही है कि 'अनु अर्थात् प्रत्यक्षस्य पश्चान्मीयते ज्ञायते येन तदनुमानम्' जो प्रत्यक्ष के पश्चात् ज्ञान

उत्पन्न हो, जैसे धूम के प्रत्यक्ष देखे बिना अदृष्ट अग्नि का ज्ञान कभी नहीं हो सकता।"

३. उपमान

"प्रसिद्धसाधर्म्यात् साध्यसाधनमुपमानम्"

—न्यायदर्शन १-१-६

जो प्रसिद्ध प्रत्यक्ष साधर्म्य से साध्य अर्थात् सिद्ध करने योग्य ज्ञान की सिद्धि करने का साधन हो उसको उपमान कहते हैं। 'उपमीयते येन तदुपमानम्' जैसे किसी ने किसी भृत्य से कहा कि 'तू विष्णुमित्र को बुला ला'। वह बोला कि 'मैंने उस को 'कभी नहीं देखा'। उसके स्वामी ने कहा कि 'जैसा यह देवदत्त है वैसा ही विष्णुमित्र है' वा जैसी यह गाय है वैसी ही गवय अर्थात् नीलगाय होती है। जब वह वहां गया और देवदत्त के सदृश उसको देख कर निश्चय कर लिया कि यही विष्णुमित्र है, उसको ले आया। अथवा किसी जंगल में जिस पशु को गाय के तुल्य देखा उसको निश्चय कर लिया कि इसी का नाम 'गवय' है।

४. शब्द

"आप्तोपदेशः शब्दः"

—न्यायदर्शन १-१-७

जो आप्त अर्थात् पूर्ण विद्वान, धर्मात्मा, परोपकारप्रिय, सत्यवादी, पुरुषार्थी जितेन्द्रिय पुरुष जैसा अपनी आत्मा में जानता हो और जिस से सुख पाया हो उसी के कथन की इच्छा से प्रेरित सब मनुष्यों के कल्याणार्थ उपदेष्टा हो अर्थात् [जो] जितने पृथिवी से लेके परमेश्वर पर्यन्त पदार्थों का ज्ञान प्राप्त होकर उपदेष्टा होता है। जो ऐसे पुरुष और पूर्ण आप्त परमेश्वर के वेद हैं उन्हीं को प्रमाण जानो।

—सत्यार्थप्रकाश तृतीय समुल्लास

न्यायदर्शन में गौतम मुनि ने कुछ दार्शनिकों का मत प्रदर्शित करते हुए लिखा है :—

"न चतुष्ट्वमैतिह्यार्थापत्तिसम्भवाभावप्रामाण्यात्"

—न्यायदर्शन २-२-१

प्रमाण चार ही नहीं, ऐतिह्य, अर्थापत्ति, सम्भव और अभाव ये चार भी पृथक् प्रमाण हैं। इस प्रकार प्रत्यक्ष, अनुमान, उपमान और शब्द के साथ इन चारों प्रमाणों के मिलाने से आठ प्रमाण बन जाते हैं। इन पीछे के चार प्रमाणों की व्याख्या महर्षि दयानन्द इस प्रकार करते :—

५. ऐतिह्य

जो 'इति ह आस' अर्थात् इस प्रकार का था, उसने इस प्रकार किया, अर्थात् किसी के जीवनचरित्र का नाम ऐतिह्य है।

६. अर्थापत्ति

'अर्थादापद्यते सा अर्थापत्तिः' केनचिदुच्यते 'सत्सु घनेषु वृष्टिः सति कारणे कार्यं भवति इति किमत्र प्रसज्यते, असत्सु घनेषु वृष्टि-रसति कारणे च कार्यं न भवति।'

जैसे किसी ने कहा कि 'बद्दल के होने से वर्षा और कारण के होने से कार्य उत्पन्न होता है' इस से बिना कहे यह दूसरी बात सिद्ध होती है कि बिना बद्दल वर्षा और बिना कारण के कार्य कभी नहीं हो सकता।"

७. सम्भव

'सम्भवति यस्मिन् स सम्भवः'

कोई कहे कि माता पिता के विना सन्तान हुई, किसी ने मृतक जिलाए, पहाड़ उठाए, समुद्र में पत्थर तराए, चन्द्रमा के टुकड़े किये, परमेश्वर का अवतार हुआ, मनुष्य के सींग देखे और वन्ध्या के पुत्र और पुत्री का विवाह किया इत्यादि सब

असम्भव हैं। क्योंकि ये सब बातें सृष्टिक्रम के विरुद्ध हैं। और जो बात सृष्टिक्रम के अनुकूल हो वही सम्भव है।

८. अभाव

'न भवन्ति यस्मिन् सोऽभावः'

जैसे किसी ने किसी से कहा कि 'हाथी ले आ।' वह वहाँ हाथी का अभाव देखकर जहाँ हाथी था वहीं से ले आया।

"ये आठ प्रमाण। इनमें से जो शब्द में ऐतिह्य और अनुमान में अर्थापत्ति, सम्भव और अभाव की गणना करें तो चार प्रमाण रह जाते हैं।"

इन पाँच प्रकार की परीक्षाओं से सत्यासत्य का निर्णय मनुष्य कर सकता है अन्यथा नहीं।

—'सत्यार्थप्रकाश' तृतीय समुल्लास

ईश्वरीय ज्ञान
चार वेद

महर्षि दयानन्द चार वेदों ऋग्वेद, यजुर्वेद, सामवेद, अथर्ववेद को ईश्वरप्रणीत तथा स्वतःप्रमाण मानते हैं। वे स्पष्ट शब्दों में लिखते हैं :—

"चारों वेदों (विद्या धर्मयुक्त ईश्वरप्रणीत संहिता मन्त्र भाग) को मैं निर्भ्रान्त स्वतःप्रमाण मानता हूँ। वे स्वयं प्रमाण रूप हैं कि जिनको प्रमाण होने में किसी अन्य ग्रन्थ की अपेक्षा नहीं। जैसे सूर्य वा प्रदीप अपने स्वरूप से स्वतः प्रकाशक और पृथिव्यादि लोक के भी प्रकाशक होते हैं वैसे चारों वेद हैं। और चारों वेदों के ब्राह्मण, छः अङ्ग, छः उपाङ्ग चार उपवेद और ११२७ (ग्यारह सौ सत्ताईस) वेदों की शाखा जो कि वेदों के व्याख्यान रूप ब्रह्मादि महर्षियों के बनाए ग्रन्थ हैं उनको परतः प्रमाण अर्थात् वेदों के अनुकूल होने से प्रमाण और इनमें जो वेद

विरुद्ध वचन हैं उनका अप्रमाण करता हूँ।"

—'स्वमन्तव्यामन्तव्यप्रकाश' २

वेदों का निर्माण ईश्वर ने किया है इस विषय में महर्षि दयानन्द ऋग्वेदादिभाष्य-भूमिका में वेदों का प्रमाण देते हुए लिखते हैं :—

"तस्माद् यज्ञात् सर्वहुत ऋचः सामानि जज्ञिरे।
छन्दांसि जज्ञिरे तस्माद् यजुस्तस्मादजायत ॥

यजुर्वेद अ. ३१ मं० ७

यस्माद् ऋचोऽपातक्षन् यजुर्यस्मादपाकषन्।
सामानि यस्य लोमानि अथर्वाङ्गिरसो मुखम्।
स्कम्भं तं ब्रूहि कतमः स्विदेव सः।"

अथर्ववेद कां. १० प्रपा. २३ अनु. ४ सूक्त ७ मं·२०

(तस्माद्यज्ञात् सर्व···) सत् जिसका कभी नाश नहीं होता, चित् जो सदा ज्ञानस्वरूप है, जिसको अज्ञान का लेश भी कभी नहीं होता, आनन्द जो सदा सुखस्वरूप और सबको सुख देने वाला है इत्यादि लक्षणों से युक्त पुरुष जो सब जगत् में परिपूर्ण हो रहा है जो सब मनुष्यों के उपासना के योग्य इष्टदेव और सब सामर्थ्य से युक्त है उसी परब्रह्म से (ऋचः) ऋग्वेद (यजुः) यजुर्वेद (सामानि) सामवेद और (छन्दांसि) इस शब्द से अथर्व भी ये चारों वेद उत्पन्न हुए हैं। ··

(यस्मादृचो अपा०) जो सर्वशक्तिमान् परमेश्वर है उसी से (ऋचः) ऋग्वेद (यजुः) यजुर्वेद (सामानि) सामवेद (अथर्वाङ्गिरसः) अथर्ववेद ये चारों उत्पन्न हुए हैं। इसी प्रकार रूपकालङ्कार से वेदों की उत्पत्ति का प्रकाश ईश्वर करता है कि अथर्ववेद मेरे मुख के समतुल्य, सामवेद लोमों के समान, यजुर्वेद हृदय के समान और ऋग्वेद प्राण की नाईं है। (ब्रूहि कतमः स्विदेव सः) चारों वेद जिससे उत्पन्न हुए वह कौनसा

देव है उसको तुम मुझ से कहो। इस प्रश्न का उत्तर यह है कि (स्कम्भं तं) जो जगत् का धारणकर्ता है उसका नाम स्कम्भ है। उसी को तुम वेदों का कर्ता जानो।"

—'ऋग्वेदादिभाष्यभूमिका' वेदोत्पत्ति विषय

वेद ही ईश्वरीय ज्ञान क्यों ?

ईश्वरीय ज्ञान वही हो सकता है जो सृष्टि के आरम्भ में प्रकाश में आये। वेद के अतिरिक्त किसी अन्य धार्मिक ग्रन्थ की यह मान्यता नहीं कि उसका प्रकाश सृष्टि के आरम्भ में हुआ। यदि सृष्टि-रचना के पीछे के समयों में ईश्वर अपने ज्ञान का प्रकाश करता है तो वह उन मनुष्यों के प्रति अन्यायी बन जाता है जो उसके ज्ञान के प्रकाश के पूर्व उत्पन्न हुए तथा मर्त्यलोक को पहुँच गए। ईश्वरीय ज्ञान सभी मनुष्यों के लिए सब कालों में प्राप्त रहना चाहिये। यह तभी हो सकता है जब वह ज्ञान सृष्टि के आरम्भ में हो।

मनुष्यों में यद्यपि पूर्व जन्म के संस्कार तो बने रहते हैं जिससे उनमें प्रसुप्त अवस्था में ज्ञान विद्यमान रहता है परन्तु यह वैसा ही है जैसे काष्ठ में अग्नि। काष्ठ में अग्नि का विकास तभी होता है जब उसका बाह्य अग्नि से स्पर्श हो। इसी प्रकार नव-जात बच्चे में भी जब तक माता पिता और आचार्य अपने ज्ञान ज्योति का समावेश नहीं करते उनके प्रसुप्त ज्ञान का उद्बोधन नहीं होता।

महर्षि दयानन्द ऋग्वेदादिभाष्यभूमिका में प्रश्नोत्तर के रूप में इस विषय को स्पष्ट करते हुए लिखते हैं।

"प्रश्न—जैसे व्याकरण आदि शास्त्र रचने में मनुष्यों का सामर्थ्य होता है वैसे वेदों के रचने में भी जीव का सामर्थ्य हो सकता है।"

"उत्तर—नहीं, किन्तु जब ईश्वर ने प्रथम वेद रचे हैं उनको

पढ़ने के पश्चात् ग्रन्थ रचने का सामर्थ्य किसी मनुष्य को हो सकता है। उसके पढ़ने और ज्ञान के बिना कोई भी मनुष्य विद्वान् नहीं हो सकता। जैसे इस समय में किसी शास्त्र को पढ़के, किसी का उपदेश सुन के और मनुष्यों के परस्पर व्यवहारों को देख के ही मनुष्यों को ज्ञान होता हैं अन्यथा कभी नहीं होता। जैसे किसी मनुष्य के बालक को जन्म से एकान्त में रख के उसको अन्न जल युक्ति से देवे, उसके साथ भाषणादि व्यवहार लेशमात्र भी कोई मनुष्य न करे कि जब तक उसका मरण न हो तब तक उसको इसी प्रकार से रखे तो मनुष्यपने का भी ज्ञान नहीं हो सकता। तथा जैसे बड़े वन में मनुष्यों को बिना उपदेश के यथार्थ ज्ञान नहीं होता किन्तु पशुओं की नाईं उनकी प्रवृत्ति देखने में आती है वैसे ही वेदों के उपदेश के बिना भी सब मनुष्यों की प्रवृत्ति हो जाती फिर ग्रन्थ रचने के सामर्थ्य की तो कथा क्या ही कहनी है। इससे वेदों को ईश्वर के रचित मानने से ही कल्याण है अन्यथा नहीं।"

—'ऋग्वेदादिभाष्यभूमिका' वेदोत्पत्ति प्रकरण

"सृष्टि के आरम्भ में पढ़ने और पढ़ाने की कुछ भी व्यवस्था नहीं थी तथा विद्या का कोई ग्रन्थ भी नहीं था। उस समय ईश्वर के किये वेदोपदेश के बिना विद्या के नहीं होने से कोई मनुष्य ग्रन्थ की रचना कैसे कर सकता? क्योंकि सब मनुष्यों को सहायकारी ज्ञान में स्वतंत्रता नहीं है और स्वाभाविक ज्ञान मात्र से विद्या की प्राप्ति किसी को नहीं हो सकती। इसी लिए ईश्वर ने सब मनुष्यों के हित के लिए वेदों की उत्पत्ति की है।"

— 'ऋग्वेदादिभाष्यभूमिका' वेदोत्पत्ति प्रकरण

योगदर्शन में पतञ्जलि मुनि ने इसी विचारधारा का समर्थन करते हुए लिखा है :—

"स पूर्वेषामपि गुरुः कालेनानवच्छेदात्"

—'योगदर्शन'

गुरु के बिना ज्ञान प्राप्ति नहीं हो सकती। वह गुरु माता, पिता अथवा आचार्य कोई भी हो सकता है। ज्ञान प्राप्त करने के लिए उनके सम्पर्क में रहना ही पड़ेगा। गुरु परम्परा से ही ज्ञान का संचार या विकास होता चला आ रहा है। इसमें सदेह नहीं कि एक बार गुरु ने ज्ञान ज्योति से जगमगाते अपने गर्भ में रखकर शिष्य को ज्योतिर्मय कर दिया तो वह ज्योति बढ़ती हुई चली जायगी। गुरु के सम्पर्क में ज्योति को प्राप्त करने के लिए शिष्य को जाना ही पड़गा। सृष्टि के आदि में ज्ञान ज्योति के द्वारा मनुष्यों को ज्योतिर्मय बनाने के लिए प्रथम गुरु की आवश्यकता है। वह हमारे सब पूर्वजों का गुरु परमेश्वर है। उसी ने मनुष्यों के उपकार के लिए चारों वेदों का चार ऋषियों के द्वारा प्रकाश किया। ये चार ऋषि थे अग्नि, वायु, आदित्य, अङ्गिरा।

ईश्वर ने वेदों का प्रकाश क्यों किया ?

इस विषय में महर्षि लिखते हैं—

"जैसे अपने सन्तानों के ऊपर पिता और माता सदैव करुणा को धारण करते हैं कि सब प्रकार से हमारे पुत्र सुख पायें वैसे ही ईश्वर भी सब मनुष्यादि सृष्टि पर कृपा दृष्टि सदैव रखता है। इससे ही वेदो का उपदेश हम लोगों के लिए किया है। जो परमेश्वर वेद विद्या का उपदेश मनुष्यों के लिए न करता तो धर्म, अर्थ, काम, मोक्ष की सिद्धि किसी को यथावत् प्राप्त न होती। उसके बिना परम आनन्द भी किसी को नही होता।"

"जैसे परम कृपालु ईश्वर ने प्रजा के सुख के लिए कन्द, मूल, फल और घास आदि छोटे-छोटे भी पदार्थ रचे हैं सो ही

ईश्वर सब सुखों के प्रकाश करने वाली सब सत्य विद्याओं से युक्त वेद विद्या का उपदेश भी सुख के लिए क्यों न करता। क्योंकि जितने ब्रह्माण्ड में उत्तम पदार्थ हैं उनकी प्राप्ति में जितना सुख होता है सो सुख विद्या प्राप्ति के सुख के हजारवें अंश के भी समतुल्य नहीं हो सकता। ऐसा सर्वोत्तम विद्या-पदार्थ जो वेद है उसका उपदेश परमेश्वर क्यों न करता ? इस से निश्चय करके यह जानना कि वेद ईश्वर के ही बनाए हैं।"

—'सत्यार्थप्रकाश' सप्तम समुल्लास

वेद ईश्वरीय ज्ञान है। परमेश्वर ने मनुष्यों के उपकार के लिए, मनुष्यों में सत्य ज्ञान के प्रकाश के लिए वेदों को सृष्टि के प्रारम्भ में रचा। इसलिए महर्षि ने आर्यसमाज के नियमों में तृतीय नियम यह रखा कि :—

"वेद सब सत्य विद्याओं का पुस्तक है। वेद का पढ़ना, पढ़ाना और सुनना, सुनाना सब आर्यों का परम धर्म है।"

तीन अनादि

ईश्वर—जीव : आत्मा—
प्रकृति : सृष्टि का मूल कारण

महर्षि दयानन्द के सिद्धान्त के अनुसार विश्व में तीन अनादि पदार्थ हैं। वे लिखते हैं :—

'जो ईश्वर, जीव और सब जगत् का कारण (उपादान कारण) है—ये तीन स्वरूप से अनादि हैं।'

—आर्योद्देश्य रत्नमाला ५२

अनादि पदार्थ तीन हैं। एक ईश्वर, द्वितीय जीव, तीसरा प्रकृति अर्थात् जगत् का कारण। इन्हीं को नित्य भी कहते हैं। जो नित्य पदार्थ हैं उनके गुण, कर्म, स्वभाव भी नित्य हैं।

—'स्वमन्तव्यामन्तव्यप्रकाश' ६

प्रवाह से अनादि—जो कार्य जगत्, जीव के कर्म और उनका संयोग, वियोग है—ये तीन परम्परा से अनादि हैं।

—'आर्योद्देश्यरत्नमाला' ५३

सत्यार्थप्रकाश के अष्टम समुल्लास में महर्षि दयानन्द ईश्वर, जीव और जगत् का कारण (प्रकृति) इन तीन पदार्थों को अनादि मानते हुए उसका वेद और उपनिषदों द्वारा समर्थन करते हैं :—

"द्वा सुपर्णा सयुजा सखाया समानं वृक्षं परिषस्वजाते।
तयोरन्यः पिप्पलं स्वाद्वत्ति अनश्नन्नन्योऽभिचाकशीति ॥"

—ऋग्वेद मं. १. सू० १६४ मं. २०

"(द्वा) जो ब्रह्म और जीव दोनों (सुपर्णा) चेतनता और पालनादि गुणों से सदृश (सयुजा) व्याप्य-व्यापक भाव से संयुक्त (सखाया) परस्पर मित्रतायुक्त सनातन अनादि हैं और (समानं) वैसा ही (वृक्षं) अनादि मूल कारण और शाखा रूप कार्य युक्त वृक्ष अर्थात् जो स्थूल होकर प्रलय में छिन्न-भिन्न हो जाता है वह तीसरा अनादि पदार्थ इन तीनों के गुण, कर्म, स्वभाव भी अनादि हैं। इन जीव और ब्रह्म में से एक जो जीव है वह इस वृक्ष रूप संसार में पाप पुण्य रूप फलों को (स्वादु अत्ति) अच्छे प्रकार भोगता है। और दूसरा परमात्मा कर्मों के फलों को (अनश्नन्) न भोगता हुआ चारों ओर अर्थात् भीतर बाहर सर्वत्र प्रकाशमान् हो रहा है।

"जीव से ईश्वर, ईश्वर से जीव और दोनों से प्रकृति भिन्न स्वरूप अनादि है।"

—'सत्यार्थप्रकाश' अष्टम समुल्लास

इसे अधिक स्पष्ट करने के लिए महर्षि श्वेताश्वतर उपनिषद् का उदाहरण देते हैं :—

"अजामेकांलोहित शुक्लकृष्णां बह्वीः प्रजाः सृजमानां सरूपाः।
अजोऽह्यको जुषमाणोऽनुशेते जहात्येनां भुक्तभोगामजोऽन्यः॥

—श्वेताश्वतर उपनिषत् ४·५

प्रकृति, जीव और परमात्मा तीनों अज अर्थात् जिनका जन्म कभी नहीं होता और न कभी ये जन्म लेते अर्थात् ये तीन सब जगत् के कारण हैं। इनका कारण कोई नहीं। इस अनादि प्रकृति का भोग अनादि जीव करता हुआ फंसता है और उसमें परमात्मा न फंसता और न उसका भोग करता है।"

—'सत्यार्थप्रकाश' अष्टम समुल्लास

ईश्वर

ईश्वर का स्वरूप क्या है ? इस विषय में महर्षि दयानन्द

लिखते हैं :—

"ईश्वर कि जिसके ब्रह्म परमात्मादि नाम हैं, जो सच्चिदानन्दादि लक्षणयुक्त है, जिसके गुण-कर्म-स्वभाव पवित्र हैं, जो सर्वज्ञ, निराकार, सर्वव्यापक, अजन्मा, अनन्त, सर्वशक्तिमान्, दयालु, न्यायकारी, सब सृष्टि का कर्त्ता, धर्त्ता, हर्त्ता, सब जीवों को कर्मानुसार सत्यन्याय से फलदाता आदि लक्षण युक्त है उसी को परमेश्वर मानता हूं।"

—'स्वमन्तव्यामन्तव्यप्रकाश' १

"ईश्वर जिसके गुण, कर्म, स्वभाव और स्वरूप सत्य ही हैं, जो केवल चेतनमात्र वस्तु है तथा जो अद्वितीय, सर्वशक्तिमान्, निराकार, सर्वत्र व्यापक, अनादि और अनन्त आदि सत्यगुण वाला है और जिसका स्वभाव अविनाशी, ज्ञानी, आनन्दी, शुद्ध, न्यायकारी, दयालु और अजन्मा है, जिसका कर्म जगत् की उत्पत्ति, पालन और विनाश करना तथा सब जीवों को पाप-पुण्य के फल ठीक ठीक पहुँचाना है उसको ईश्वर कहते हैं।

—'आर्योद्देश्यरत्नमाला' १

"सब सत्य विद्या और जो पदार्थ विद्या से जाने जाते हैं उन सब का आदि मूल परमेश्वर है।"

—'आर्यसमाज के नियम'

"ईश्वर सच्चिदानन्द स्वरूप, निराकार, सर्वशक्तिमान्, न्यायकारी, दयालु, अजन्मा, निर्विकार, अनादि, अनुपम, सर्वाधार सर्वेश्वर, सर्वव्यापक, सर्वान्तर्यामी, अजर, अमर, अभय, नित्य, पवित्र और सृष्टिकर्त्ता है। उसी की उपासना करनी योग्य है।"

—'आर्यसमाज के नियम' २

स्वमन्तव्यामन्तव्यप्रकाश और आर्योद्देश्यरत्नमाला में जो

ईश्वर के लक्षण कहे गए हैं उन में ईश्वर को सब सृष्टि का कर्त्ता, धर्त्ता, संहर्ता तथा सब जीवों को सत्यन्याय से पाप पुण्य के फल ठीक ठीक पहुँचाना है। यह स्वरूप वर्णन स्वरूप-वर्णन मात्र नहीं, अपितु ईश्वर की सत्ता की मान्यता में युक्तिवाद भी है।

प्रकृति अचेतन जड़ है। वह स्वयं कोई निर्माण नहीं कर सकती। जीव अल्पज्ञ है। यह विश्व सृष्टि विशाल है। पृथ्वी, चन्द्र, सूर्य, नक्षत्र सभी इस विश्व में नियमपूर्वक अपनी चाल में चल रहे है। इनकी नियमित गति से और सदा गतिमान रहने से यह जगत् बना। इस गति में कहीं टकराव नहीं। कहीं संघर्ष नहीं। पूर्ण व्यवस्था है। नियम है। यह विश्व जगत् जीव के चिन्तन का विषय नहीं बन सकता। जीव तो अपने चारों ओर समीप दीखनेवाले लोक को भी नहीं जानता। अपने योग्य पदार्थों को भी नहीं बना सकता। ईश्वरीय नियमों के अल्प-ज्ञान के आधार पर भले ही कुछ आविष्कारों का विकास कर जीवन की थोड़ी बहुत सुविधाएं प्राप्त करले, चन्द्र आदि लोकों पर पहुंचने में सफलता प्राप्त करले अथवा विनाशकारी शस्त्रों का निर्माण कर ले, पर अपने जीवन के आधारभूत वनस्पति, अन्न, जल, अग्नि, वायु आदि की भी विश्वव्यापिनी व्यवस्था इसकी शक्ति के बाहर है। एक ही भूमि में एक प्रकार के भूकणों से भिन्न भिन्न प्रकार के अन्न, भिन्न भिन्न रसों की वन-स्पतियां और फल, भिन्न भिन्न गन्धों और सुन्दर वर्णों के पुष्प अपने देश काल के अनुसार उत्पन्न होते हैं। जीव की भोग सामग्री प्रस्तुत करते हैं।

आकाशचुम्बी पर्वत शिखर, कहीं हिमाच्छादित, कहीं चीड़ और देवदारु जैसे वृक्षों से अलंकृत, कहीं जीवनदायिनी जड़ी-बूटियों तथा फूल, फल और कन्दों को पाषाणमयी भूमि में

आश्रय दे रहे हैं। इन्हीं पाषाण-हृदय पर्वतों से शीतल मधुर जलधारा झर-झर करती बहती हुई भूतल को सिञ्चित करती हुई समुद्र में समा रही हैं। समुद्र का भी अपना आकर्षक रूप है। उत्ताल तरङ्गें कभी ज्वार और कभी भाटा, विचित्र दृश्य प्रस्तुत करते हैं। समुद्र के अन्तर्हृदय में छोटी-छोटी मछलियों से लेकर ह्वेल जैसे महाकाय जल-जन्तु अपना नया लोक निर्माण कर स्वच्छन्द संचार कर रहे हैं।

पृथ्वी पर एक ओर कीट, पतङ्ग और पशुओं का अपना लोक है दूसरी ओर मनुष्य अपने बुद्धि बल और साहस से सब पर अपने अधिकार का दिखावा कर रहा है। आकाश भी पक्षियों के उड़ान से अपना आश्चर्यमय दृश्य प्रस्तुत कर रहा है।

सभी के अपने-अपने जीवन के तरीके हैं। सभी को जीवन सामग्री अपनी परिस्थितियों के अनुसार उपलब्ध हो रही है। जीवलोक उत्पन्न होता है, कुछ काल अपने भौतिक योनिशरीर के साथ संसार में विकास पाता हुआ अपनी सत्ता बनाए रखता है और समयानुसार इस भौतिक देह का परित्याग करके लुप्त हो जाता है।

विश्व में व्यष्टि और समष्टि के रूप में उत्पत्ति, स्थिति और लय शाश्वत काल से चला आ रहा है।

यह लोक जो हमारे सामने सूर्य, चन्द्र, तारों और पृथ्वी के रूप में दृष्टिगोचर हो रहा है इतना ही नहीं। ऐसे असंख्य लोक इस विश्व में हैं।

इन सब लोक लोकान्तरों के विश्व का उत्पत्ति और लय शाश्वत काल से चला आ रहा है। इस उत्पत्ति स्थिति और लय में व्यवस्था है, नियम है। नियम भी ऐसे पूर्ण हैं कि गणित ज्योतिष द्वारा इन के भविष्य की स्थिति को जाना जा

सकता है।

ऐसे विश्व का निर्माण, इसे व्यवस्थित बनाए रखना तथा इसका विनाश (प्रलय) किसी दिव्य शक्ति का ही कार्य हो सकता है। वह दिव्य शक्ति भी इस सारे क्रियाकलाप को जानने वाली (सर्वज्ञ) होनी चाहिये। उसमें इस सारे क्रियाकलाप के लिए पूर्ण सामर्थ्य होनी चाहिये। इस अपरिमेय अचिन्त्य विश्व को निर्माण कर उसका रखवाला, उसमें व्यवस्था बनाए रखने वाला और समयानुसार उसका विनाश कर पुनः उसी प्रकार उत्पत्ति रक्षण और विनाशक्रम का नियमानुसार संचालन करने वाला कौन है ?

इस विषय में महर्षि दयानन्द शास्त्र प्रमाण प्रस्तुत करते हुए उत्तर देते हैं :—

"यतो वा इमानि भूतानि जायन्ते, येन जातानि जीवन्ति यत् प्रत्यभिविशन्ति तद् विजिज्ञासस्व, तद् ब्रह्म ।"

—तैत्तिरीय उपनिषद् भृगुवल्ली अनु १

"जिस परमात्मा की रचना से ये पृथिव्यादि भूत उत्पन्न होते हैं, जिससे जीवते और जिस में प्रलय को प्राप्त होते हैं वह ब्रह्म है। उसके जानने की इच्छा करो।"

—'सत्यार्थप्रकाश', अष्टम समुल्लास

"जन्माद्यस्य यत."

—शारीरिक (वेदान्त दर्शन) १.१.२

"जिस से जगत् का जन्म, स्थिति और प्रलय होता है वही ब्रह्म जानने योग्य है।"

—'सत्यार्थप्रकाश' अष्टम समुल्लास

स्वमन्तव्यामन्तव्य प्रकाश तथा आर्योद्देश्यरत्नमाला में जहां ईश्वर को जगत् का कर्ता, धर्ता और संहर्ता कहा गया है, वहां उसके साथ सब जीवों को सत्यन्याय से पाप पुण्य के फल

ठीक-ठीक पहुंचाने वाला भी कहा है। यह भी ईश्वर की सत्ता को सिद्ध करने में युक्तिवाद है।

प्राणी जगत् में असंख्य योनियाँ दृष्टिगोचर होती हैं। निम्नकोटि के कीट पतङ्ग से लेकर चीते और शेर आदि हिंसक जन्तु, हाथी और गेंडे आदि महाकाय जीव, अल्पकाय और महाकाय समुद्र में पाये जाने वाले जन्तु, नाना प्रकार के आकाश में उड़ने वाले पक्षी, इन सब के अतिरिक्त सब से विचित्र मनुष्य योनि भी बनाई। परमेश्वर को ये सब योनियाँ बनाने की क्या आवश्यकता थी ? इन योनियों में प्रत्येक प्राणी भिन्न-भिन्न परिस्थितियों में सुख-दुःख अनुभव करता हुआ अपना जीवन यापन कर रहा है। मनुष्य योनि सबसे उत्कृष्ट योनि समझी जाती है। इसमें भी बहुत विषमता पायी जाती है। एक ऐसा धनी वर्ग है जो विशाल भवनों में रहता है। नित्य नवीन बहुमूल्य वस्त्र धारण करता है। सुवर्ण रत्नाभूषणों से सदा लदा रहता है। सब प्रकार के भोगपदार्थ उपस्थित रहते हैं। संसार की कोई वस्तु उसके आगे अनुपलभ्य नहीं रहती। सभी प्रकार के यातायात के साधन सुलभ होते हैं। मनोविनाद के लिए मित्रमण्डली, हास्य विलास के लिए सभी प्रकार के उपयुक्त साधन विद्यमान रहते हैं। दूसरा ऐसा वर्ग है जो सर्वथा दरिद्र है। एक समय खाने को भी नहीं मिलता। फटे पुराने वस्त्रों में अर्धनग्न रहता है। दुःख और दरिद्रता के कारण सदा हीन भावना को अनुभव करता है। चिन्तातुर बना रहता है। अपनी, अपने परिवार की भूख को शान्त करने में असमर्थ अनुभव करता हुआ आत्म-हत्या के लिए तत्पर रहता है। गरमी, सरदी में खुले आकाश में रास्ते की पटरियां अथवा वृक्षों की छाया ही उस का निवास-गृह होता है। यह इतना भेदभाव क्यों ? दयालु ईश्वर के साम्राज्य में यह विषमता क्यों ?

इसका उत्तर एक वाक्य में ही आ जाता है कि ईश्वर सब जीवों को सत्यन्याय से पाप-पुण्य का फल ठीक-ठीक देता है। पूर्व जन्म के कर्मों के अनुसार ईश्वर भिन्न-भिन्न योनियों में भिन्न-भिन्न परिस्थितियों में जीव को शरीर प्रदान करता है। मनुष्य को बुद्धि दी है, प्रतिभा दी है। अपनी बुद्धि और प्रतिभा से मनुष्य नवीन उत्तम कर्म करके अपनी परिस्थितियों को बदल सकता है। जीव कर्म करने में स्वतन्त्र हैं पर कर्म फल भोगने में परमेश्वर के अधीन है।

कर्मों के अनुसार सत्यन्याय से फलदाता की मान्यता संसार की व्यवस्था को बनाए रखने के लिए आवश्यक है। जीव स्वयं अपने आपको कर्मों का फल नहीं दे सकता। प्रकृति जड़ है। अतः परमेश्वर को माने बिना इस समस्या का कोई समाधान नहीं है।

आर्यसमाज के प्रथम नियम में ईश्वर को सब सत्य विद्या और जो पदार्थ विद्या से जाने जाते हैं उनका आदि मूल कहा गया है। यह योग दर्शन में प्रतिपादित ईश्वर के वर्णन का सार है। ऋग्वेदादिभाष्यभूमिका में उपासना विषय के प्रकरण में ईश्वर का निरूपण करते हुए महर्षि दयानन्द योगदर्शन के सूत्रों का उद्धरण देते हुए लिखते हैं :—

"तत्र निरतिशयं सार्वज्ञ बीजम्"

—योगदर्शन अ. १. पा. १. सू. २५.

ज्ञान में तारतम्य की भावना रहती है। भूत, भविष्य और वर्तमान विषयक ज्ञान में तथा अतीन्द्रिय विषयों के ज्ञान में मनुष्य अनुभव करता है कि यह अल्पज्ञान है, यह उससे अधिक ऊंचा ज्ञान है। इसी प्रकार यह भी अनुभव करता है कि अमुक व्यक्ति मुझ से कम ज्ञानी हैं, दूसरा मुझ से अधिक ज्ञानी है। यह तारतम्य भावना पूर्ण ज्ञान (सर्वज्ञान) की ओर संकेत करती है।

इस तारतम्य की पराकाष्ठा (चरम सीमा) पूर्ण ज्ञान ही है जिससे अधिक (अतिशय) ज्ञान आगे न हो। निरतिशय सर्व-ज्ञान (पूर्ण ज्ञान) जिस विश्वपति में समाया हुआ है उसी का नाम ईश्वर है।

"स पूर्वेषामपि गुरुः कालेनानवच्छेदात्"

—योगदर्शन अ. १. पा. १. सू. २६

हमारे सभी पूर्वज गुरु और गुरुओं के गुरु सम्पूर्ण गुरु परम्परा काल की सीमा में बंधे हुए हैं। इस गुरु परम्परा में आदि गुरु कौन है जिसने सृष्टि के आदि में ज्ञान का प्रकाश किया और जो काल की सीमा में न रहा हुआ शाश्वत काल से प्रलय के बाद सृष्टि के आरम्भ में ज्ञान का प्रकाश करता चला आ रहा है ? वह परमेश्वर है।

—ऋग्वेदादिभाष्यभूमिका के संस्कृत सन्दर्भ का भावानुवाद

"तस्य वाचकः प्रणवः"

—योगदर्शन अ. १. पा. १. सू. २७

उस सर्वज्ञ और आदि गुरु ईश्वर का मुख्य वाचक (नाम) प्रणव "ओ३म्" है।

"क्लेशकर्मविपाकाशयैरपरामृष्टः पुरुषविशेष ईश्वरः"

—योगदर्शन अ. १. पा. १. सू २४

योगदर्शन में ऊपर लिखे सूत्रों में प्रथम यह सूत्र है। मैंने अपनी वर्णन शैली के प्रकार वश इसे पीछे उद्धृत किया है।

योगदर्शन में पांच क्लेशों का वर्णन किया गया है—अविद्या, अस्मिता (अहंभाव), राग, द्वेष, अभिनिवेश (मरणभय)। संसारी जीव में पांचों क्लेश बने रहते है। जीव कर्म करता है। कर्मों के अनुसार विपाक (फलभोग) प्राप्त करता है। उसके अनुसार संस्कार और वासनाएँ बनती हैं। विपाक (कर्मफल

भोग), संस्कारों और वासनाओं के अनुसार जीव आशय (योनिशरीर) प्राप्त करता है।

ईश्वर इन क्लेश, कर्म, विपाक और आशय से परे है। यह छूत ईश्वर में नहीं है।

सत्यार्थप्रकाश के सप्तम समुल्लास में महर्षि दयानन्द प्रत्यक्ष द्वारा भी ईश्वर-सिद्धि को प्रमाणित करते हैं :—

"इन्द्रियार्थसन्निकर्षोत्पन्नंज्ञानमव्यपदेश्यमव्यभिचारि व्यवसायात्मकं प्रत्यक्षम्"

—न्यायदर्शन अ. १. पा. १ सू. ४

"यह गौतम महर्षि कृत न्यायदर्शन अध्याय १. पाद १, का सूत्र ४ है। जो श्रोत्र, त्वचा, चक्षु, जिह्वा, घ्राण और मन का शब्द, स्पर्श, रूप, रस, गन्ध, सुख, दु:ख, सत्यासत्य विषयों के साथ सम्बन्ध होने से ज्ञान उत्पन्न होता है उसको प्रत्यक्ष कहते हैं, परन्तु वह निर्भ्रम हो।"

"अब यह विचारना चाहिये कि इन्द्रियों और मन से गुणों का प्रत्यक्ष होता है, गुणी का नहीं। जैसे चारों त्वचा आदि इन्द्रियों से स्पर्श, रूप, रस और गन्ध का ज्ञान होने से गुणी जो पृथिवी उस का आत्मयुक्त मन से प्रत्यक्ष किया जाता है वैसे इस प्रत्यक्ष सृष्टि में रचना विशेष आदि, अनादि गुणों के प्रत्यक्ष होने से परमेश्वर का भी प्रत्यक्ष है।"

"जब आत्मा मन और मन इन्द्रियों को किसी विषय में लगाता वा चोरी आदि बुरी वा परोपकार आदि अच्छी बात के करने का जिस क्षण में आरम्भ करता है उस समय जीव की इच्छा ज्ञानादि उसी इच्छित विषय पर झुक जाती है, उसी क्षण में आत्मा के भीतर से बुरे काम करने में भय, शङ्का और लज्जा तथा अच्छे कामों के करने में अभय निःशङ्कता आनन्दोत्साह उठता है। यह जीवात्मा की ओर से नहीं किन्तु

परमात्मा की ओर से है।"

"जब जीवात्मा शुद्ध होके परमात्मा का विचार करने में तत्पर रहता है उसको उसी समय दोनों का प्रत्यक्ष होते हैं।"

"जब परमेश्वर का प्रत्यक्ष होता है तो अनुमानादि से परमेश्वर के ज्ञान होने में क्या सन्देह है, क्योंकि कार्य को देखके कारण का अनुमान होता है।"

—'सत्यार्थप्रकाश', सप्तम समुल्लास

जीव-आत्मा

१. जीव का स्वरूप

जो चेतन, अल्पज्ञ, इच्छा, द्वेष, प्रयत्न, सुख, दुःख और ज्ञान गुण वाला तथा नित्य है वह जीव कहाता है।

— 'आर्योद्देश्यरत्नमाला' ७७

जो इच्छा, द्वेष, सुख, दुःख और ज्ञानादि गुणयुक्त अल्पज्ञ नित्य है उसी को जीव मानता हूं।

—स्वमन्तव्यामन्तव्यप्रकाश ४

२. जीव के गुण

गौतम मुनि कृत न्यायदर्शन और कणाद मुनि कृत वैशेषिक दर्शन के वचनों से जीव के इस स्वरूप को प्रमाणित करते हुए महर्षि दयानन्द सत्यार्थप्रकाश के सप्तम समुल्लास में लिखते हैं:—

"इच्छाद्वेषप्रयत्नसुख दुःख ज्ञानान्यत्मनो लिंगम्"

—न्यायदर्शन १. १. १०

"प्राणापाननिमेषोन्मेषमनोगतीन्द्रियान्तर्विकाराः सुखदुःखेच्छाद्वेषौ प्रयत्नाश्चात्मनो लिंगानि"।

—वैशेषिकदर्शन ३. २. ४.

"(इच्छा) पदार्थों की प्राप्ति की अभिलाषा, (द्वेष) दुःखादि

की अनिच्छा, वैर, (प्रयत्न) पुरुषार्थबल, (सुख) आनन्द, (दुःख) विलाप, अप्रसन्नता, (ज्ञान) विवेक, पहचानना ये (न्याय वैशेषिक में) तुल्य हैं। परन्तु वैशेषिक में (प्राण) प्राण-वायु को बाहर से भीतर लेना (अपान) प्राण-वायु को बाहर निकालना, (निमेष) आंख को मींचना, (उन्मेष) आंख को खोलना, (मन) निश्चय, स्मरण और अहंकार करना, (गति) चलना, (इन्द्रिय) सब इन्द्रियों को चलाना (अन्तर्विकार) भिन्न-भिन्न क्षुधा, तृषा, हर्ष शोकादि युक्त होना ये जीवात्मा के गुण परमात्मा से भिन्न हैं। इन्ही से आत्मा की प्रतीति करनी क्योंकि वह स्थूल नहीं है। जब तक आत्मा देह में होता है तभी तक ये गुण प्रकाशित रहते हैं और जब शरीर छोड़ चला जाता है तब ये गुण शरीर में नहीं रहते। जिसके होने से जो हो और न होने से न हो वे गुण उसी के होते हैं। जैसे दीप और सूर्यादि के न होने से प्रकाशादि का न होना और होने से होना है वैसे ही जीव और परमात्मा का विज्ञान गुण द्वारा होता है।"

—'सत्यार्थप्रकाश', सप्तम समुल्लास

प्रत्येक प्राणी में चाहना (इच्छा) बनी रहती है। जब तक जीवन है तब तक चाहना उसकी सङ्गिनी है। प्रिय और अनुकूल वस्तु की चाहना करते हुए भी छूट नहीं सकती। संसारी प्राणी तो चाहना में लिप्त रहता ही है पर विरक्त पुरुष भी ब्रह्म दर्शन की चाहना अथवा मोक्ष की चाहना के बिना शान्त नहीं रहता। चाहना के साथ कुछ अप्रिय सत्ताएं और घटनाएं भी जुड़ी रहती हैं। संसारी के लिए सांसारिक संकट बने रहते हैं जिन्हें वह नहीं चाहता, जिनसे वह द्वेष करता है। विरक्त के लिए सांसारिक वैभवपूर्ण वासनाएं जो अपने चमत्कारपूर्ण उत्तेजनाओं के साथ उसे प्रभु दर्शन अथवा

मोक्ष मार्ग से दूर हटाना चाहती हैं तथा अपने घेरे में लिप्त रखना चाहती हैं उनसे वह विरक्त पुरुष दूर रहना चाहता है। इनके प्रति उसकी द्वेष भावना रहती है। सूक्ष्म दृष्टि से देखा जाय तो चाहना और न चाहना दोनों चाहना के अन्तर्गत ही हो जाती है। किसी वस्तु की प्राप्ति की चाहना किसी वस्तु की अप्राप्ति की चाहना दोनों ही चाहना हैं।

(इच्छा) चाहना जीव का स्वाभाविक गुण है। चाहना के अनुसार वह प्रिय वस्तु की प्राप्ति के लिए और अप्रिय वस्तु को दूर रखने के लिए प्रयत्न करता है। कर्म करता है। शुभ कर्म भी करता है, अशुभ कर्म भी करता है। इस कर्म क्षेत्र में अपने सुख-दुःख का विवेचन भी करता है। जिन विषयों में सुख का अनुभव करता है उनके लिए राग और जिनमें दुःख अनुभव करता है उनके लिए द्वेष की भावना बन जाती है। इन भावनाओं के साथ अस्मिता (मैं और मेरापन) जुड़ जाती है। अस्मिता के साथ ये भावनाएं अन्तःकरण में संस्कार के रूप में बस जाती हैं। वासनाएं बन जाती है। वासनाओं से पुनः चाहना (इच्छा) द्वेष, प्रयत्न, सुख, दुःख का चक्र चलता रहता है। इन्हीं के वशीभूत अविवेकी जीव कर्म, संस्कार और वासनाओं के अनुसार योनि शरीर प्राप्त करता है।

वैशेषिक दर्शन में प्रदर्शित प्राण, अपान आदि प्रयत्न के अन्तर्गत समझे जाते हैं। अधिक स्पष्ट रूप से समझाने के लिए कणाद मुनि ने इनका अलग निर्देश किया है। गौतम मुनि ने प्रयत्न के अन्तर्गत होने से इनका आत्मा के गुणों में पृथक् निर्देशन नहीं किया। इसमें दोनों मुनियों का कोई मतभेद न समझना चाहिये।

जीव कर्म करने में स्वतन्त्र है। फल भोगने में ईश्वराधीन है। ईश्वर दयालु और न्यायकारी है। दयालु ईश्वर जीव के

प्रति करुणा कर सत्य न्याय के साथ उसे कर्मों के अनुसार फल भोग के लिए योनि शरीर देता है। अशुभ कर्मों का कष्टदायी फल भोगते हुए जब जीव यह जान लेता है कि ये कर्म मुझे सदा कष्ट ही देते रहेंगे, अतः इनका परित्याग करना चाहिये, उसकी शुभ कर्मों की ओर प्रवृत्ति होती है। ईश्वर के न्याय में दया की भावना बनी रहती है। शुभ, अशुभ कर्मों का ज्ञान जब जीव के कर्मों में परिणत हो जाता है, वह अशुभ कर्मों का परित्याग और शुभ कर्मों का आचरण करता है तो उसके संस्कार और वासनाएं भी बदल जाती हैं। उसकी चाहना अशुभ कर्मों की ओर नहीं रहती।

वैसे तो ईश्वर मनुष्य को शुभ कर्मों की प्रेरणा और अशुभ कर्मों से परे रहने का निर्देश जीवन में बार-बार करता ही रहता है। जिस समय भी मनुष्य चोरी, झूठ और व्यभिचार आदि बुरे कर्मों की ओर प्रवृत्त होता है अन्दर से आवाज़ आती है "यह तुम्हारे करने योग्य काम नहीं। इससे तुम पतन की दिशा में जाओगे।" एक बार तो मनुष्य इस आवाज़ को सुनकर असमंजस में पड़ जाता है पर अविवेकी पुरुष बाहर के प्रलोभनों में आकर उस आवाज़ की अवहेलना कर देता है। दयालु परमेश्वर उसे सुधारने के लिए उपयुक्त दण्ड (फल भोग) की व्यवस्था करता है जिससे मनुष्य भविष्य में जन्म-जन्मान्तरों में सुपथगामी बन जाय। उसे यह विवेक (ज्ञान) हो जाय कि अशुभ कर्म चाहे क्षणिक आनन्द के साधन हों पर उनका परिणाम दुःख ही दुःख है।

ये इच्छा, द्वेष, प्रयत्न, सुख, दुःख और ज्ञान शरीर का धर्म नहीं हो सकते। मृत शरीर में ये भावनाएं नहीं रहती। यदि ये शरीर के धर्म होंगे तो मृत शरीर में भी रहने ही चाहियें। इन्द्रियों के भी ये धर्म नहीं हैं। इन्द्रियों के गोलक

शरीर के ही अङ्ग हैं। इसके अतिरिक्त आंखें चली जायें तब भी ये इच्छा द्वेष प्रयत्न सुख दुःख और ज्ञान तो बने ही रहते हैं। इसी प्रकार बहरों, गूंगों और स्पर्श शक्ति से रहित पुरुषों में भी ये सब भाव बने रहते हैं।

इसी प्रकार आंखों से देखी वस्तु का ज्ञान, कानों से सुनी वस्तु का ज्ञान तथा अन्य इन्द्रियों द्वारा अनुभूत ज्ञान इन इन्द्रियों के नष्ट होने पर भी बना रहता है। यदि इन्द्रियां ही ज्ञान तथा इच्छा-द्वेषादि की अधिष्ठात्री होतीं तो इनके नष्ट होने पर इनकी अनुभूतियां और उन अनुभूतियों के आधार पर बनी हुई इच्छादि भावनाएं भी नष्ट हो जानी चाहियें। ऐसा नहीं होता अतः इन्द्रियों को जीव का स्थान नहीं मिल सकता। मन भी इन्द्रिय है। इन्द्रियों की उपलब्धियों को अन्दर तक ले जाना ही इसका कार्य है। वह भी एक समय एक ही उपलब्धि को अन्दर तक पहुंचा सकता है। इस प्रकार हमें मानना पड़ेगा कि इच्छा, द्वेष, प्रयत्न, सुख, दुःख और ज्ञान इनका अधिष्ठाता शरीर, इन्द्रियों और मन के अतिरिक्त कोई अंन्य है। उसी अधिष्ठाता का नाम जीव है।

ईश्वर के प्रकरण में हम ईश्वर का स्वरूप वर्णन करते हुए योगदर्शन के सूत्र का उद्धरण देते हुए बता आए हैं कि ईश्वर क्लेश, कर्म, विपाक और आशय इनसे रहित है। जीव इनको साथ लेकर चलता है। ये दोनों चेतन और अनादि होते हुए भी एक दूसरे भिन्न हैं।

ईश्वर सर्वज्ञ हैं, जीव अल्पज्ञ है। ईश्वर सर्वव्यापक है, जीव परिच्छिन्न है। ईश्वर निराकार है। श्रुति कहती है "अकायम्" ईश्वर शरीर धारण नहीं करता। जीव शरीर धारण करता है। जीव कर्म करने में स्वतन्त्र होता हुआ कर्म करता है। उसके अनुसार कर्म फल भोगता है। ईश्वर सृष्टि का

निर्माण तो करता है पर जीव के समान संसार के पदार्थों का उपभोग अथवा उपभोग निमित कर्म नहीं करता। वह सदा तृप्त, सदानन्द और साक्षी मात्र है। जीव को कर्मों के अनुसार सत्य न्याय से कर्म फल देता है। कर्मों के फल भोग में जीव परतन्त्र, ईश्वराधीन है।

प्रकृति—सृष्टि का मूल कारण

जीव और ईश्वर अनादि हैं, कभी नष्ट नहीं होते पर यह जड़ जगत उत्पन्न भी होता है, नष्ट भी होता है। अपने शरीर की अवस्था ही देख लो। सूक्ष्म बिन्दुओं से बनना प्रारम्भ होता है। मातृ गर्भ में इसका निर्माण शुरू होता है। समयानुसार बाहर आता है। इसमें वृद्धि (नवीन उत्पत्ति) होती जाती है। जीवन काल में तो इसमें आंशिक उत्पत्ति और विनाश होते ही रहते हैं पर अन्त में अग्नि दाह से भस्म शेष रह जाती है। इसी प्रकार से संसार के सभी पदार्थ उत्पन्न होते हैं और नष्ट होते हैं। यह उत्पत्ति और विनाश क्या है ?

महर्षि दयानन्द गीता का उद्धरण देते हुए लिखते हैं :—

नासतो विद्यते भावो नाभावो विद्यते सतः
उभयोरपि दृष्टोन्तस्त्वनयोस्तत्त्वदर्शिभिः।

"कभी असत् का भाव वर्तमान और सत् का अभाव, अवर्तमान नहीं होता। इन दोनों का निर्णय तत्वदर्शी लोगों ने जाना है। अन्य पक्षपाती, आग्रही, मलीनात्मा, अविद्वान् लोग इस बात को सहज में कैसे जान सकते हैं ?"

—'सत्यार्थप्रकाश', अष्टम समुल्लास

तत्वदर्शी लोगों ने क्या जाना है ?

गौतम और कणाद मुनियों के मत के अनुसार ये पृथ्वी, जल, वायु और अग्नि जो स्थूल रूप में हमें दृष्टिगोचर होते हैं, इन्हें विभक्त करते जाओ। ये सूक्ष्म और अगोचर होते

चले जायेंगे। अन्त में वह अवस्था आयेगी जहाँ इनका विभाग न हो सके। इस अविभाज्य अवस्था का नाम परमाणु है। इन परमाणुओं के संयोग से पुनः इनका स्थूलरूप होता जावेगा। अन्तिम दृष्टिगोचर स्थूल अवस्था पृथ्वी, जल, वायु और अग्नि रूप में परिणत हो जाते हैं। आकाश नित्य है।

कपिल और पतञ्जलि मुनि इसके आगे बढ़ते हैं। वे कहते हैं कि ये परमाणु और आकाश अन्तिम तत्व नहीं हैं। जगत् की कारण-परम्परा अणुओं तक ही समाप्त नहीं होती। ये भी किसी तत्व के विकार हैं। अन्तिम कारण तत्व प्रकृति है। वह अनादि है।

महर्षि दयानन्द सत्यार्थप्रकाश में कपिल मुनि प्रणीत सांख्य दर्शन के प्रमाण का उल्लेख करते हुए प्रकृति का स्वरूप तथा उसका स्थूल पञ्चभूतात्मक सृष्टि तक विकास क्रम इस प्रकार बतलाते हैं :—

"सत्वरजस्तमसां साम्यावस्था प्रकृतिः, प्रकृतेर्महान्, महतोऽहंकारः, अहंकारात् पञ्चतन्मात्राणि उभयामिन्द्रियं, पञ्चतन्मात्रेभ्यः स्थूलभूतानि, पुरुष इति पञ्चविंशतिगणः"

—सांख्यदर्शन अ० १ सूत्र ६१

"(सत्व) शुद्ध (रजः) मध्य (तमः) जाड्य अर्थात् जड़ता तीन वस्तु मिलकर जो एक संघात है उसका नाम प्रकृति है। उससे महत्तत्व बुद्धि, उससे अहंकार, उससे पाँच तन्मात्रा सूक्ष्म-भूत, दश इन्द्रियाँ तथा ग्यारहवाँ मन, पाँच तन्मात्राओं से पृथिवीव्यादि पाँचभूत ये चौबीस और पच्चीसवाँ पुरुष अर्थात् जीव और परमेश्वर हैं। इनमें प्रकृति अविकारिणी और महत्तत्व, अहंकार तथा पाँच सूक्ष्मभूत प्रकृति का कार्य और इन्द्रियाँ, मन तथा स्थूलभूतों का कारण हैं। पुरुष न किसी की

प्रकृति उपादान कारण और न किसी का कार्य है।"

—'सत्यार्थप्रकाश', अष्टम समुल्लास

इस सत्व, रज, तम, त्रिगुणात्मक प्रकृति का स्वरूप क्या है? इस विषय में शास्त्रों का मत है कि यह 'अव्यक्त' है। गीता में श्री योगीश्वर कृष्ण ने कहा :—

"अव्यक्तादीनि भूतानि व्यक्तमध्यानि भारत।
अव्यक्त निधनान्येव तत्र का परिदेवना।"

हे अर्जुन ! ये भूत पदार्थ (दृश्यमान संसार) अव्यक्त से उत्पन्न हुआ है। बीच में कुछ काल व्यक्त (दृष्टिगोचर) रहता है। इसका अन्त अव्यक्त में हो जाता है। इसलिए इसके निधन (विनाश) में शोक करने की क्या आवश्यकता है? यहाँ अव्यक्त शब्द से प्रकृति की ओर निर्देश है।

इसी भाव को योग दर्शन के भाष्य में व्यास मुनि ने इन शब्दों में प्रदर्शित किया है :—

"तन्निःसत्तासत्तं, निःसत्, निरसद् अव्यक्तमलिङ्गं प्रधानम्।"

—योगसूत्र व्यासभाष्य २.१९

सृष्टि के पूर्व प्रलय काल में प्रकृति अपने स्वरूप में रहती है। उस समय उसका स्वरूप सत् या असत् नहीं कहा जा सकता। वह न तो सत् (भावरूप) ना ही असत् (अभावरूप) में अभिव्यक्त होती है। वह अव्यक्त रहती है। कारण अवस्था में (अलिङ्गम्) उसका कोई परिचायक चिह्न नहीं रहता। मूल कारण प्रकृति का परिचायक तो यह कार्य जगत् (स्थूल जगत्) ही है। यह उस समय कारण में लीन हो जाता है अतः प्रधान (प्रकृति) का उस समय कोई लिङ्ग (परिचायक चिह्न) नहीं रहता। इसीलिए इसे अव्यक्त कहा गया है।

ऋग्वेद मं.८ सू.८ मं.१७ में सृष्टि के पूर्व की कारण

अवस्था का वर्णन भी इसी प्रकार किया गया है :—

"नासदासीन्नो सदासीत्तदानीं नासीद् रजोनो व्योमापरोयत्"

(तदानीं) सृष्टि की पूर्व अवस्था (प्रलय काल) में सृष्टि के मूल कारण प्रकृति का रूप (नासदासीत्) अभावात्मक न था (नो सदासीत्) सद्रूप—भावरूप में प्रकट भी न था। क्यों? (नासीद् रजः) उस समय सृष्टि का मूल कारण प्रकृति परमाणु रूप में भी प्रकट नहीं हुई थी। (नो व्योमापरोयत्) यह परम व्यापक आकाश भी न था।

इस मन्त्र में भी यही भावना है कि कारणावस्था में प्रकृति अव्यक्त थी। उसका परिचायक लिङ्ग परमाणु जगत् और आकाश भी न थे।

गीता, व्यास और ऋग्वेद के ये सन्दर्भ इस सिद्धान्त के द्योतक हैं कि प्रकृति अपने स्वरूप में अव्यक्त है। सृष्टि रचना को देखते हुए उसे केवल "सत्वरजस्तमसां साम्यावस्था" इतना मात्र कहा जा सकता है।

उपनिषदों में जहाँ भी सत् या असत् से जगत् की उत्पति का वर्णन आया है वहाँ उसका अभिप्राय भी यही है कि जगत् का मूल कारण प्रकृति प्रलय काल में सद्रूप होती हुई भी असत् है—अव्यक्त है। कार्य से अतीन्द्रिय सूक्ष्म कारण की सत्ता जानी जाती है। प्रलय काल में प्रकृति का कार्यरूप स्थूल जगत् नहीं रहता, अतः उसकी सत्ता का परिचायक कोई लिङ्ग नहीं मिलता। इसीलिए जगत् के मूल कारण का सत् और असत् दोनों रूपों में उपनिषदों में वर्णन मिलता है। इन वर्णनों में किसी प्रकार का परस्पर विरोध नहीं समझना चाहिये। वास्तव में जगत् का मूल कारण प्रकृति सद्रूप है। असत् से जगत् की उत्पति नहीं हो सकती।

महर्षि दयानन्द छान्दोग्य उपनिषत् के वचन का उद्धरण

देते हुए लिखते हैं :—

"सन्मूलाः सौम्य ! इमाः सर्वाः प्रजाः सदायतनाः सत्प्रतिष्ठाः ।"

"यही सत्यरूप प्रकृति सब जगत् का मूल घर और स्थिति का स्थान है ।"

—'सत्यार्थप्रकाश' अष्टम समुल्लास

इससे यह स्पष्ट सिद्ध होता है कि इस जगत् का मूल कारण प्रकृति सत्यस्वरूप है। इन सब उत्पन्न पदार्थों (प्रजा) का आयतन आधार सत्य है। सत्य स्वरूप मूल कारण पर ही सकल सृष्टि प्रतिष्ठित है ।

इस प्रकार महर्षि दयानन्द द्वारा प्रतिपादित वैदिक धर्म में ईश्वर, जीव और जगत् का मूल कारण प्रकृति ये तीन अनादि सत् पदार्थ हैं ।

३. जगत् और मुक्ति

सृष्टि-प्रलय-मुक्ति-पुनर्जन्म

सृष्टि-प्रलय

इसके पूर्व हम ईश्वर, जीव और प्रकृति के स्वरूप के विषय में महर्षि दयानन्द द्वारा प्रतिपादित वैदिक मत का वर्णन कर चुके हैं। यह गोचर तथा अगोचर सृष्टि क्या है? इसका प्रलय क्या है? इस विषय पर महर्षि लिखते हैं :—

"नित्यायाः सत्वरजस्तमसां साम्यावस्थायाः प्रकृतेरुत्पन्नानां परम-सूक्ष्माणां पृथक् पृथग्वर्तमानानां तत्त्वपरमाणूनां प्रथमः संयोगारम्भः संयोगविशेषादवस्थान्तरस्य स्थूलाकारप्राप्तिः सृष्टिरुच्यते"

"अनादि नित्यस्वरूप सत्व, रजस् और तमोगुणों की एकावस्थारूप प्रकृति से उत्पन्न जो परम सूक्ष्म पृथक् पृथक् वर्तमान तत्वावयव विद्यमान हैं उन्हीं का प्रथम ही जो संयोग का आरम्भ है, संयोग विशेषों से अवस्थान्तर दूसरी अवस्था को सूक्ष्म से स्थूल बनते-बनाते विचित्र रूप बनी है इसी से यह संसर्ग होने से सृष्टि कहाती है।"

—'सत्यार्थप्रकाश', अष्टम समुल्लास

सृष्टि उसको कहते हैं जो पृथक् द्रव्यों का ज्ञानयुक्तिपूर्वक मेल होकर नाना रूप बनना **—'स्वमन्तव्यामन्तव्यप्रकाश'**

जो कर्ता की रचना के कारण द्रव्य किसी संयोग विशेष से अनेक प्रकार कार्यरूप होकर, वर्तमान में व्यवहार करने योग्य होती है वह 'सृष्टि' कहाती है। **—आर्योद्देश्यरत्नमाला ३७**

"प्रलय—जो कार्य जगत् का कारण रूप होना, अर्थात् जगत् का करने वाला ईश्वर जिन जिन कारण से सृष्टि बनाता, जो कि अनेक कार्यों को रच के यथावत् पालन करके पुनः कारण रूप करके रखता है उसका नाम प्रलय है।"

—'आर्योद्देश्यरत्नमाला' ७९

महर्षि के इन लेखों से संक्षेप में अभिप्राय यही निकलता है कि जगत् के मूल कारण प्रकृति से उत्पन्न परम सूक्ष्म तत्व परमाणुओं के संयोग से क्रमशः स्थूल रूप होकर दृश्यमान सृष्टि बनती है। इस सृष्टि का नियत समय तक परमेश्वर पालन-रक्षण करता है। पुनः यह सृष्टि कारण रूप (प्रकृति के रूप) में परिणत हो जाती है। यह कारण रूप में परिणाम प्रलय कहलाता है। सृष्टि और प्रलय का क्रम नियम और व्यवस्था के अनुसार शाश्वत काल से चला आ रहा है। यजुर्वेद के चालीसवें अध्याय में इस व्यवस्था के लिए कहा गया है—"याथातथ्यतोर्थान् व्यदधात् शाश्वतीभ्यः समाभ्यः" स्वयंभू प्रभु शाश्वत काल से अपरिवर्तनीय नियमों के अनुसार सृष्टि के पदार्थों को बनाता चला आ रहा है।

सृष्टि के कारण—

"जगत् (सृष्टि) के कारण कितने होते हैं" यह प्रश्न प्रस्तुत करते हुए महर्षि दयानन्द इसका उत्तर देते हैं :—

"तीन : एक निमित्त, दूसरा उपादान, तीसरा साधारण।

निमित्त कारण उसको कहते है कि जिसके बनाने से कुछ बने, न बनाने से न बने। आप स्वयं नहीं बने, दूसरे को प्रकारान्तर बना दे।

दूसरा उपादान कारण उसको कहते हैं जिसके बिना कुछ न बने, वही अवस्थान्तर रूप होके बने और बिगड़े भी।

तीसरा साधारण कारण उसको कहते हैं कि जो बनाने में

साधन और साधारण निमित्त हो।

निमित्त कारण दो प्रकार के होते हैं। एक सब सृष्टि को कारण से बनाने, धारने और प्रलय करने तथा सबकी व्यवस्था रखनेवाला मुख्य निमित्त कारण परमात्मा। दूसरा परमेश्वर की सृष्टि में से पदार्थों को लेकर अनेकविध कार्यान्तर बनाने वाला साधारण निमित्त कारण जीव।

उपादान कारण प्रकृति परमाणु जिसको सब संसार के बनाने की सामग्री कहते हैं, वह जड़ होने से आप से आप न बन और न बिगड़ सकती है किन्तु दूसरे के बनाने से बनती और बिगाड़ने से बिगड़ती है। कहीं कहीं जड़ के निमित्त से जड़ भी बन और बिगड़ भी जाता है। जैसे परमेश्वर के रचित बीज पृथिवी में गिरने और जल पाने से वृक्षाकार हो जाते हैं और अग्नि आदि जड़ के संयोग से बिगड़ भी जाते हैं परन्तु इनका नियमपूर्वक बनना और बिगड़ना परमेश्वर और जीव के अधीन है। जब कोई वस्तु बनाई जाती है तब जिन साधनों से अर्थात् ज्ञान, दर्शन, बल, हाथ और नाना प्रकार के साधन और दिशा, काल और आकाश साधारण कारण जैसे घड़े को बनाने वाला कुम्हार निमित्त, मट्टी उपादान, और दण्ड चक्र आदि सामान्य निमित्त, दिशा, काल, आकाश, प्रकाश, आँख, हाथ, ज्ञान, क्रिया आदि निमित्त साधारण और निमित्त कारण भी होते हैं। इन तीन कारणों के बिना कोई भी वस्तु नहीं बन सकती और न बिगड़ सकती है।" —'सत्यार्थप्रकाश' अष्टम समुल्लास

"जो कोई कारण के बिना सृष्टि (जगत रचना) मानता है वह कुछ नहीं जानता। जब सृष्टि का समय आता है तब परमात्मा उन परम सूक्ष्म पदार्थों को इकट्ठा करता है। उसकी प्रथम अवस्था में परम सूक्ष्म प्रकृति रूप कारण से कुछ स्थूल (उत्पन्न) होता है उसका नाम महत्व और जो उससे

कुछ स्थूल होता है उसका नाम अहंकार, और अहंकार से भिन्न पाँच सूक्ष्म भूत, श्रोत्र, त्वचा, नेत्र, जिह्वा, घ्राण ये पाँच ज्ञानेन्द्रियां, वाक् हस्त, पाद, उपस्थ और गुदा ये पाँच कर्मेन्द्रियां हैं और ग्यारहवां मन कुछ स्थूल उत्पन्न होता है। और उन पंचतन्मात्राओं (पांच सूक्ष्मभूतों) से अनेक स्थूल अवस्थाओं को प्राप्त होते हुए क्रम से पांच स्थूल भूत (आकाश, तेज, वायु, जल, पृथिवी) जिनको हम प्रत्यक्ष देखते हैं, उत्पन्न होते हैं। उनसे नाना प्रकार की औषधियाँ, वृक्ष आदि, उनसे अन्न अन्न से वीर्य, वीर्य से शरीर होता है।"

"परन्तु आदि सृष्टि मैथुनी नहीं होती। क्योंकि जब स्त्री पुरुषों के शरीर परमात्मा बनाकर उनमें जीवों का संयोग कर देता है तदनन्तर मैथुनी सृष्टि चलती है।"

—'सत्यार्थप्रकाश' अष्टम समुल्लास

"प्रश्न—आदि सृष्टि में मनुष्य आदि की बाल्या, युवा व वृद्धावस्था में सृष्टि हुई थी, अथवा तीनों में ?

उत्तर—युवावस्था में। क्योंकि जो बालक उत्पन्न करता तो उनके पालने के लिए दूसरे मनुष्य आवश्यक होते, और जो वृद्धावस्था में बनाता तो मैथुनी सृष्टि न होती। इसलिए युवावस्था में सृष्टि की है।" —'सत्यार्थप्रकाश' अष्टम समुल्लास

"देखो शरीर में किस प्रकार की ज्ञानपूर्वक सृष्टि रची है कि जिसको विद्वान लोग देखकर आश्चर्य मानते हैं। भीतर हाड़ों का जोड़, नाड़ियों का बन्धन, मांस का लेपन, चमड़ी का ढक्कन, प्लीहा, यकृत्, फेफड़ा, पंखा कला का स्थापन, जीव का संयोजन, शिरोरूप मूल रचन, लोमनखादि का स्थापन, आंखों की अतीव सूक्ष्म शिरा का तारवत् ग्रन्थन, इन्द्रियों के मार्गों का प्रकाशन, जीव के जागृत, स्वप्न, सुषुप्ति अवस्था के भोगने के लिए स्थान विशेषों का निर्माण, सब धातुओं का

विभागकरण कला कौशल स्थापनादि अद्भुत सृष्टि को बिना परमेश्वर के कौन कर सकता है ?

इसके बिना नाना प्रकार के रत्नधातु से जड़ित भूमि; विविध प्रकार वट वृक्ष आदि के बीजों में अतिसूक्ष्म रचना, असंख्य हरित, श्वेत, पीत, कृष्ण चित्रमय रूपों से युक्त पत्र, पुष्प, फल, मूल निर्माण, मिष्ट, क्षार, कटुक, कषाय, तिक्त, अम्लादि विविध रस, सुगन्धादि युक्त पत्र, पुष्प, फल, अन्न कन्दमूलादि रचन, अनेकानेक करोड़ों भूगोल सूर्यचन्द्रादि लोक-निर्माण, धारण, भ्रामण, नियमों में रखना आदि परमेश्वर के बिना कोई भी नहीं कर सकता।"

—'सत्यार्थप्रकाश' अष्टम समुल्लास

अमेरिका में हावर्ड वेधशाला के रिटायर्ड खगोलशास्त्री डा० हार्लो शैपले ने कहा है कि वर्तमान अध्ययनों से पता चलता है कि ब्रह्मांड में लाखों करोड़ों आकाश गङ्गाएँ हैं जिनमें पृथ्वी और सौरमण्डल का अस्तित्व समुद्र में बूँद के समान है। एक आकाश गङ्गा में एक खरब तारे हमारे सूर्य जैसे हैं। डा० शैपले के अनुसार ब्रह्माण्ड में दस करोड़ से अधिक ऐसे ग्रह हैं जिनमें जीवन है। जीवन से अभिप्राय है कि वहां घास वनस्पति और मनुष्य बसते हैं।

महर्षि दयानन्द ऊपर के सत्यार्थप्रकाश के लेख में वर्णन करते हैं कि "अनेकानेक करोड़ों भूगोल, सूर्यचन्द्रादि लोक निर्माण, धारण, भ्रामण नियमों में रखना आदि परमेश्वर के बिना कोई भी नहीं कर सकता।"

जितनी विज्ञान की उन्नति, विकास और आविष्कार हो रहे हैं उनसे यह स्पष्ट ज्ञात होता है कि विश्व का विस्तार अति विशाल और अचिंत्य है। परन्तु इस अचिंत्य विशाल विश्व में नियम हैं और नियमों के कारण व्यवस्था है। विश्व

का निर्माण, इसका धारण-भ्रामण सब नियमों के अनुसार व्यवस्था में चल रहा है। यह नियमों के अनुसार व्यवस्था सर्वज्ञ पूर्णशक्तिमान् ईश्वर की ओर संकेत करती है। विश्व के सर्व (पूर्ण) ज्ञान के बिना और निर्माण, धारण-भ्रामण के लिए सर्व (पूर्ण) शक्ति के बिना इसकी त्रुटिहीन पूर्ण व्यवस्था नहीं हो सकती है। अतः सर्वज्ञ सर्वशक्तिमान् ईश्वर इस विश्व सृष्टि का कर्ता, धर्ता, भ्रामक और व्यवस्थापक है।

वैदिक सिद्धान्त के अनुसार यह सृष्टि प्रथम सृष्टि नहीं परन्तु अनादि प्रवाह से सृष्टि और प्रलय की परम्परा चली आ रही है। यह सृष्टि उस अनादि प्रवाह की एक कड़ी है। महर्षि इसे स्पष्ट करते हुए लिखते हैं :—

"जैसे दिन के पूर्व रात और रात के पूर्व दिन, तथा दिन के पीछे रात और रात के पीछे दिन बराबर चला आता है इसी प्रकार सृष्टि के पूर्व प्रलय और प्रलय के पूर्व सृष्टि, तथा सृष्टि के पीछे प्रलय और प्रलय के आगे सृष्टि अनादि काल से चक्र चला आता है। इसका आदि व अन्त नहीं। किन्तु जैसे दिन व रात का आरम्भ और अन्त देखने में आता है उसी प्रकार सृष्टि और प्रलय का आदि अन्त होता रहता है। क्यों कि परमात्मा, जीव और जगत् का कारण तीन स्वरूप से अनादि हैं, वैसे जगत् की उत्पत्ति, स्थिति और प्रलय प्रवाह से अनादि हैं।" —'सत्यार्थप्रकाश' अष्टम समुल्लास

इस अनादि सृष्टि तथा प्रलय के प्रवाह में कल्प-कल्पान्तर में जैसी सृष्टि अब है वैसी पहले भी थी और आगे भी वैसी ही होगी। इसमें ईश्वर भेद नहीं करता। ईश्वरीय नियम और व्यवस्था अटल है। अपने में पूर्ण हैं। महर्षि वेद के प्रमाण से इसे स्पष्ट करते हैं :—

"सूर्याचन्द्रमसौ धाता यथापूर्वमकल्पयत् ।
दिवं च पृथिवीं चान्तरिक्षमथो स्वः ।"

—ऋग्वेद म० १० सू० १६० मन्त्र ३

"(धाता) परमेश्वर ने जैसे पूर्व कल्प में सूर्य, चन्द्र, विद्युत्, पृथिवी, अन्तरिक्ष आदि बनाए थे, वैसे ही अब बनाए हैं और आगे भी वैसे ही बनायेगा।

इसलिए परमेश्वर के काम बिना भूलचूक के होने से सदा एक से ही हुआ करते हैं। जो अल्पज्ञ और जिसका ज्ञान वृद्धि क्षय को प्राप्त होता है उसी के काम में भूलचूक होती है, ईश्वर के काम में नहीं।

—'सत्यार्थप्रकाश' अष्टम समुल्लास

महर्षि दयानन्द ब्रह्म (ईश्वर) को जगत् (सृष्टि) का उपादान कारण नहीं मानते थे। इस विषय में वे वैशेषिक दर्शन के सूत्र का उद्धरण देते हुए लिखते हैं :—

"कारण गुणपूर्वको कार्यगुणो दृष्टः ।"

— वैशेषिक अ० २ आ० १ सूत्र २४

"उपादान कारण के सदृश कार्य में गुण होते हैं, तो ब्रह्म सच्चिदानन्द स्वरूप, जगत् कार्यरूप से असत् जड़ और आनन्द रहित, ब्रह्म अज और जगत् उत्पन्न हुआ है। ब्रह्म अदृश्य और जगत् दृश्य है। ब्रह्म अखण्ड और जगत् खण्ड रूप है जो ब्रह्म से पृथिवी आदि कार्य उत्पन्न होते तो पृथिवी आदि कार्य के जड़ आदि गुण ब्रह्म में भी होवें। अर्थात् पृथिवी आदि जड़ हैं वैसा ब्रह्म भी जड़ हो जाय और जैसा परमेश्वर (ब्रह्म) चेतन है वैसा पृथिवी आदि कार्य भी चेतन होना चाहिए।"

—'सत्यार्थप्रकाश' अष्टम समुल्लास

सृष्टि रचना का प्रयोजन

महर्षि दयानन्द सत्यार्थप्रकाश में पूर्वपक्षी की ओर से

प्रश्न करते हैं—

"जगत् के बनाने में परमेश्वर का क्या प्रयोजन है—जो जगत् न बनाता तो आनन्द में बना रहता और जीवों को भी सुख-दुःख प्राप्त न होता"

—'सत्यार्थप्रकाश' अष्टम समुल्लास

उत्तर में महर्षि लिखते हैं :—

"ये आलसी और दरिद्र लोगों की बातें हैं, पुरुषार्थी की नहीं और जीवों को प्रलय में क्या सुख वा दुःख है ? जो सृष्टि के सुख-दुःख की तुलना की जाये तो सुख कई गुना अधिक होता है। बहुत से पवित्रात्मा जीव मुक्ति के साधन कर मोक्ष के आनन्द को भी प्राप्त होते है। प्रलय में निकम्मे जैसे सुषुप्ति में पड़े रहते हैं वैसे रहते हैं, और प्रलय के पूर्व सृष्टि में जीवों के लिये पाप पुण्य का फल ईश्वर कैसे दे सकता और जीव क्यों कर भोग सकते ?"

"जो तुमसे कोई पूछे कि आंख के होने में क्या प्रयोजन है ? तुम यही कहोगे कि देखना। तो जो ईश्वर में जगत् की रचना करने का विज्ञान, बल और क्रिया है उसका क्या प्रयोजन बिना जगत् की उत्पत्ति करने के ? दूसरा कुछ भी न कह सकोगे और परमात्मा के न्याय, धारण, दया आदि गुण भी तभी सार्थक हो सकते हैं जब जगत् को बनावे। उसका अनन्त सामर्थ्य जगत् की उत्पत्ति स्थिति, प्रलय और व्यवस्था करने से ही सफल है। जैसे नेत्र का स्वाभाविक गुण देखना है वैसे परमेश्वर का स्वाभाविक गुण जगत् की उत्पत्ति करके सब जीवों को असंख्य पदार्थ देकर परोपकार करना है।"

—'सत्यार्थप्रकाश' अष्टम समुल्लास

ऊपर के सन्दर्भ से यह सारांश निकलता है कि—

१. पुरुषार्थी के लिए यह जगत् निष्प्रयोजन नहीं है। यह

केवल अकर्मण्य लोगों की भावना है कि प्रलय के बाद सृष्टि न होती तो अच्छा होता। यह जगत् जीव की कर्मभूमि है।

२. जीव अनादि है। सृष्टि प्रवाह से अनादि है। अनादि काल से जीव इस सृष्टि (जगत्) में कर्म करता चला आ रहा है। पाप कर्म भी करता है, पुण्य कर्म भी। जीव को अपने कर्मों के अनुसार फल भोगना आवश्यक है। ऐसा न हो जगत् में अव्यवस्था फैल जाये। जीव के कर्मों के अनुसार योनि शरीर धारण करते हुए फल भोग के लिए सृष्टि रचना आवश्यक है। जीव कर्म करने में स्वतन्त्र है। फल भोग के लिए ईश्वराधीन है।

३. ईश्वर का स्वाभाविक गुण इस अनादि सृष्टि प्रवाह को बनाये रखना है। ईश्वर में जगत् रचना का विज्ञान और अनन्त सामर्थ्य स्वाभाविक है अतः जगत् की उत्पत्ति स्थिति प्रलय और व्यवस्था भी उसके स्वाभाविक गुणों के अन्तर्गत हो जाते हैं।

४. यह जगत् दुःखमय नहीं। इससे हमें घबड़ाना नहीं चाहिये। इस जगत् में परमेश्वर ने जीवों के सुख के लिए सब प्रकार के पदार्थ बनाये हैं। जीव अपने कर्मों से और संयम से इस संसार को सुखमय बना सकता है।

५. हमें संसार में निराशामय दृष्टिकोण नहीं रखना चाहिये। सत् कर्मशील होकर इसमें सच्चे आनन्द का अनुभव करना चाहिये। सुख तथा मोक्षरूपी उत्तम फल प्राप्त करने के लिए साधन (कर्म) भी उत्तम होने चाहिये।

संसार में विषमता क्यों ?

महर्षि दयानन्द पूर्वपक्ष के रूप में प्रश्न करते हैं :—

"ईश्वर ने किन्हीं जीवों को मनुष्य जन्म, किन्हीं को सिंह आदि क्रूर जन्म, किन्हीं को हरिण, गाय आदि पशु, किन्ही को

कृमि कीट पतङ्गादि जन्म दिये हैं, इससे परमात्मा में पक्षपात आता है।"

—'सत्यार्थप्रकाश' अष्टम समुल्लास

उत्तर में अपना सिद्धान्त प्रतिपादित करते हुए लिखते हैं :—

"पक्षपात नहीं आता। क्योंकि जीवों के पूर्व सृष्टि में किये हुए कर्मानुसार व्यवस्था करने से। जो कर्म बिना जन्म देता तो पक्षपात होता।"

—'सत्यार्थप्रकाश' अष्टम समुल्लास

ईश्वर दयालु तथा न्यायकारी

ईश्वर को जहाँ न्यायकारी कहा गया है वहाँ दयालु भी कहा गया। ईश्वर दयालु तभी हो सकता है जब प्राणियों के अपराध क्षमा करके उन्हें कठोर दण्ड न दे। इस प्रकार दयालु ईश्वर कर्मों के अनुसार सबको उचित दण्ड देकर संसार की व्यवस्था कैसे कर सकता है।

इसका उत्तर देते हुए महर्षि दयानन्द लिखते हैं—

"न्याय और दया का नाममात्र ही भेद है। क्योंकि जो न्याय से प्रयोजन सिद्ध होता है वही दया से। दण्ड देने का प्रयोजन है कि मनुष्य अपराध करने से बन्द होकर दुःखों को प्राप्त न हो। वही दया कहाती है जो पराए दुःखों को छुड़ाना।"

"जिसने जैसा जितना बुरा कर्म किया है उसको उतना वैसा ही दण्ड देना चाहिये, उसी का नाम न्याय है और जो अपराधी को दण्ड न दिया जाय तो दया का नाश हो जाय।"

—'सत्यार्थप्रकाश' सप्तम समुल्लास

महर्षि के सृष्टि और प्रलय विषयक लेखों से नीचे लिखे सिद्धान्तों की पुष्टि होती है :—

१. ईश्वर, जीव और जगत् का मूल कारण प्रकृति तीनों अनादि हैं।

२. सृष्टि रचना और प्रलय का आरम्भ और अन्त तो है पर इनका प्रवाह अनादि है।

३. प्रकृति सृष्टि का उपादान कारण है।

४. ईश्वर सृष्टि का निमित्त कारण है।

५. जगत् जीव की कर्मभूमि है। जीव कर्म करने में स्वतन्त्र है। जीव जगत् में जिस प्रकार के कर्म करेगा उसके अनुसार ईश्वर उसे योनि शरीर और परिस्थितियों में जन्म देगा।

६. जगत् की उत्पत्ति, धारण, भ्रामण और व्यवस्था बनाए रखना तथा समयानुसार प्रलय (कारण अवस्था में लीन होना) करना ईश्वर का स्वाभाविक गुण है। इस कार्य में उसे कर्त्ता के रूप में किसी दूसरे की सहायता की आवश्यकता नहीं। इन्हीं अर्थों में वह सर्वशक्तिमान् हैं।

मुक्ति

मुक्ति का स्वरूप

सब दुःखों से छूटकर बन्धरहित सर्वव्यापक ईश्वर और उसकी सृष्टि में स्वेच्छा से विचरना, नियत समय पर्यन्त मुक्ति के आनन्द को भोग के पुनः संसार में आना मुक्ति कहलाती है।

—'स्वमन्तव्यामन्तव्यप्रकाश'

जिससे सब बुरे काम और जन्म मरणादि दुःख सागर से छूटकर सुख रूप परमेश्वर को प्राप्त होके सुख ही में रहना है वह मुक्ति कहाती है।

—'आर्योद्देश्यरत्नमाला' २६

दुःख अथवा क्लेश कौन से हैं जिनसे छुटकारा पाने की आवश्यकता है इसको स्पष्ट करते हुए महर्षि दयानन्द लिखते हैं :—

"अविद्या अस्मिता रागद्वेषाभिनिवेशाः पंचक्लेशाः"

—योगदर्शन, साधनपाद सू० ५

"जो अनित्य संसार और देहादि में नित्य, अर्थात् जो कार्य जगत् देखा सुना जाता है, सदा रहेगा, सदा से है और योगबल से यही देवों का शरीर सदा रहता है वैसी विपरीत बुद्धि होना 'अविद्या' का प्रथम भाग है। अशुचि अर्थात् मलमय स्त्र्यादि के और मिथ्याभाषण, चोरी आदि अपवित्र में पवित्र बुद्धि, दूसरा, अत्यन्त विषयसेवन रूप दुःख में सुखबुद्धि आदि तीसरा, अनात्मा में आत्म बुद्धि करना अविद्या का चौथा भाग है।"

पृथक् वर्तमान बुद्धि को आत्मा से भिन्न न समझना 'अस्मिता', सुख में प्रीति 'राग', दुःख में अप्रीति 'द्वेष', और सब प्राणीमात्र को यह इच्छा सदा रहती है कि मैं सदा शरीरस्थ रहूं, मरूं नहीं, मृत्यु दुःख से त्रास 'अभिनिवेश' कहाता है।

इन पांच क्लेशों को योगाभ्यास विज्ञान से छुड़ा के ब्रह्म को प्राप्त होके मुक्ति के परमानन्द को भोगना चाहिए।

—'सत्यार्थप्रकाश' नवम समुल्लास

मुक्ति के साधन

"ईश्वर की स्तुति, प्रार्थना और उपासना का करना, धर्म का आचरण और पुण्य का करना, सत्संग, विश्वास, तीर्थसेवन, सत्पुरुषों का संग और परोपकारादि सब अच्छे कामों का करना तथा सब दुष्ट कर्मों से अलग रहना ये सब मुक्ति के साधन कहाते हैं।"

—आर्योद्देश्यरत्नमाला ३०

'मुक्ति के साधन' ईश्वरोपासना, अर्थात् योगाभ्यास, धर्मानुष्ठान, ब्रह्मचर्य से विद्या प्राप्ति, आप्त विद्वानों का संग, सत्य विद्या, सुविचार और पुरुषार्थ आदि हैं।

—स्वमन्तव्यामन्तव्य प्रकाश १३

"परमेश्वरोपासनेन, अविद्याऽधर्माचरणनिवारणात्, शुद्ध विज्ञानधर्मानुष्ठानोन्नतिभ्यां जीवो मुक्ति प्राप्नोति"

—'ऋग्वेदादिभाष्यभूमिका' मुक्ति प्रकरण

"परमेश्वर की उपासना, अविद्या का नाश, अधर्माचरण से परे रहना, शुद्ध विज्ञान तथा धर्म के अनुष्ठान के द्वारा जीवन उन्नत करना इनके द्वारा जीव मुक्ति को प्राप्त करता है।"

सत्यार्थप्रकाश के नवम समुल्लास में मुक्ति के साधनों का विस्तार से विवेचन करते हुए महर्षि लिखते हैं :—

"जो मुक्ति चाहे वह जीवनमुक्त अर्थात् जिन मिथ्या-भाषण आदि पाप कर्मों का फल दुःख है उनको छोड़ सुखरूप फल को देनेवाले सत्य भाषणादि धर्माचरण अवश्य करे। जो कोई दुःख को छुड़ाना और सुख को प्राप्त होना चाहे वह अधर्म को छोड़ धर्म अवश्य करे। क्योंकि दुःख का पापाचरण और सुख का धर्माचरण मूल कारण है। सत्पुरुषों के संग से विवेक अर्थात् सत्यासत्य, धर्माधर्म, कर्तव्याकर्तव्य का निश्चय अवश्य करे, पृथक् पृथक् जाने और शरीर और अर्थात् जीव पंच कोषों का विवेचन करे।"

इसके अनन्तर महर्षि अन्नमय, प्राणमय, मनोमय, विज्ञान-मय और आनन्दमय इन पंच कोषों तथा जागृत, स्वप्न, सुषुप्ति इन तीन अवस्थाओं का वर्णन करते हुए इसी प्रकरण में लिखते हैं :—

मुक्ति का प्रथम साधन : 'विवेक'—"इन सब कोश, अव-स्थाओं से जीव पृथक् है। क्योंकि यह सबको विदित है कि अवस्थाओं से जीव पृथक् है, क्योंकि जब मृत्यु होता है तब सव कोई कहते हैं कि जीव निकल गया। यही जीव सबका प्रेरक, सबका धर्ता, साक्षी, कर्ता, भोक्ता कहाता है। जो कोई ऐसा कहे कि जीव कर्ता, भोक्ता नहीं तो उसको जानों कि वह अज्ञानी अविवेकी है। क्योंकि बिना जीव के ये सब जड़ पदार्थ हैं, इनको सुख, दुःख का भोग, व पाप पुण्य कर्तृत्व

कभी नहीं हो सकता। हां इनके सम्बन्ध से जीव पाप पुण्यों का कर्ता और सुख दुःख का भोक्ता है।"

"जब इन्द्रियां अर्थों में, मन इन्द्रियों और आत्मा मन के साथ संयुक्त होकर प्राणों को प्रेरणा करके अच्छे व बुरे कर्मों में लगाता है तभी वह बहिर्मुख हो जाता है। उसी समय भीतर से (अच्छे कर्मों में) आनन्द, उत्साह, निर्भयता और बुरे कर्मों में भय, शंका, लज्जा उत्पन्न होती है वह अन्तर्यामी परमात्मा की शिक्षा है। जो कोई इस शिक्षा के अनुकूल वर्तता है वही मुक्तिजन्य सुखों को प्राप्त होता है। और जो विपरीत वर्तता है वह बन्धजन्य दुःख भोगता है।"

"दूसरा साधन : 'वैराग्य'—अर्थात् जो विवेक से सत्यासत्य को जाना हो उसमें से सत्याचरण का ग्रहण और असत्याचरण का त्याग करना (विवेकज) वैराग्य है। जो पृथिवी से लेकर परमेश्वर पर्यन्त पदार्थों के गुण, कर्म, स्वभाव से जानकर उसकी आज्ञा पालन और उपासना में तत्पर होना उसके विरुद्ध न चलना सृष्टि के उपकार लेना(विवेकज)वैराग्य कहाता है।"

"तीसरा साधन : 'षटक सम्पत्ति', अर्थात् छः प्रकार के कर्म करना, एक 'शम' जिससे अपने आत्मा और अन्तःकरण को अधर्माचरण से हटाकर धर्माचरण में सदा प्रवृत्त रखना, दूसरा 'दम' जिससे श्रोत्रादि इन्द्रियों और शरीर को व्यभिचारादि बुरे कर्मों से हटाकर जितेन्द्रियत्वादि शुभ कर्मों में प्रवृत्त रखना, तीसरा 'उपरति' जिससे दुष्टकर्म करने वाले पुरुषों से सदा दूर रहना, चौथा 'तितिक्षा' चाहे निन्दा स्तुति हानि लाभ कितना ही क्यों न हो परन्तु हर्ष शोक को छोड़ मुक्ति साधनों में सदा लगे रहना, पांचवां 'श्रद्धा' जो वेदादि सत्यशास्त्र और इनके बोध से पूर्ण आप्त विद्वान् सत्योपदेष्टा महाशयों के वचनों पर विश्वास करना, छठा 'समाधान' चित्त की एकाग्रता ये छः

मिलकर एक साधन तीसरा कहाता है।

"चौथा साधन : 'मुमुक्षुत्व' जैसे क्षुधा तृषातुर को सिवाय अन्न जल के दूसरा कुछ भी अच्छा नहीं लगता वैसे बिना मुक्ति के दूसरे में प्रीति न होना।"

"जो इन चार साधनों से युक्त पुरुष होता है वही मोक्ष का अधिकारी होता है।"

"नित्य प्रति न्यून से न्यून दो घंटा पर्यन्त मुमुक्षु ध्यान अवश्य करे जिससे भीतर के मन आदि पदार्थ साक्षात् हों।"

—'सत्यार्थप्रकाश' नवम समुल्लास

मुक्ति के पश्चात् पुनर्जन्म

महर्षि दयानन्द के ऊपर के लेखों से यह स्पष्ट है कि महर्षि केवल ज्ञान से मुक्ति नहीं मानते थे। उनके मत में ज्ञान और सत्कर्म दोनों ही मिलकर मुक्ति के साधन हैं। जीव के कर्म सीमित होते हैं अतः उसका परिणाम 'मुक्ति' भी सीमित काल तक रहती है।

मुक्ति के निश्चित काल के उपरान्त जीव पुनः शरीर धारण करता है। इस सिद्धान्त का वे वेदादिशास्त्रों के प्रमाण देते हुए इस प्रकार प्रतिपादन करते हैं।

कस्य नूनं कतमस्यामृतानां मनामहे चारु देवस्य नाम।
को नो मह्या अदितये पुनर्दात् पितरंच दृशेयं मातरं च ॥१॥
अग्नेर्वयं प्रथमस्यामृतानां मनामहे चारु देवस्य नाम।
स नो मह्या अदितये पुनर्दात् पितरं च दृशेयं मातरं चं ॥२॥

—ऋग्वेद मं० १ सू० २४ मं० १-२

"इदानीमिव सर्वत्र नात्यन्तोच्छेदः"

—सांख्यदर्शन अ० १ सूत्र १६०

"प्रश्न—हम लोग किसका नाम पवित्र जानें? कौन नाश रहित पदार्थों के मध्य में वर्तमान देव सदा प्रकाशस्वरूप है?

हमको मुक्ति का सुख भुगाकर पुनः संसार में जन्म देता है और माता-पिता का दर्शन कराता है ? ॥१॥

उत्तर—हम इस स्वप्रकाशस्वरूप, अनादि, सदा मुक्त परमात्मा का नाम पवित्र जानें जो हमको मुक्ति में आनन्द भुगाकर पृथ्वी में पुनः माता-पिता के सम्बन्ध में जन्म देकर माता-पिता का दर्शन कराता है। वही परमात्मा मुक्ति की व्यवस्था करता सबका स्वामी है ॥२॥

जैसे इस समय बन्धमुक्त जीव हैं वैसे सर्वदा रहते हैं। अत्यन्त विच्छेद बन्ध मुक्ति का कभी नहीं होता किन्तु बन्ध और मुक्ति सदा नहीं रहती।"

—'सत्यार्थप्रकाश' नवम समुल्लास

सांख्य दर्शन के इस सूत्र का विज्ञानभिक्षु ने भी इसी प्रकार अर्थ किया है—

"सर्वत्र काले बन्धस्य अत्यन्तोच्छेदः कस्यापि पुंसो नास्ति वर्तमानकालवत्, इत्यनुमानं सम्भवेदित्यर्थः।"

सब समयों में बन्ध (जन्म बन्धन) का अत्यन्त नाश किसी पुरुष का नहीं होता। जैसे वर्तमान काल में जन्म बन्धन के बाद मरण और मरण के बाद जन्म बना रहता है वैसे ही सब कालों में समझना चाहिये।

इससे स्पष्ट अभिप्राय यही निकलता है कि मुक्ति के बाद भी पुनर्जन्म पुरुष को प्राप्त होता ही है।

मुक्ति का समय

"ते ब्रह्मलोके ह परान्त काले परामृताः परिमुच्यन्ति सर्वे"

"यह मुण्डक उपनिषत् [३.२.६] का वचन है। वे मुक्त जीव मुक्ति में प्राप्त होके ब्रह्म में आनन्द को तब तक भोग के पुनः महाकल्प के पश्चात् मुक्ति सुख को छोड़कर संसार में आते हैं। इसकी संख्या यह है कि तेंतालीस लाख बीस सहस्र

वर्षों की एक चतुर्युगी, दो सहस्र चतुर्युगियों का एक अहोरात्र, ऐसे तीस अहोरात्रों का एक महीना, ऐसे बारह महीनों का एक वर्ष, ऐसे शत वर्षों का एक परान्तकाल होता है इसको गणित की रीति से अच्छी तरह समझ लीजिये। इतना समय मुक्ति में सुख भोगने का है।"

"क्योंकि प्रथम तो जीव का सामर्थ्य शरीरादि पदार्थ और साधन परिमित हैं। पुनः उसका फल अनन्त कैसे हो सकता है ? अनन्त आनन्द को भोगने का असीम सामर्थ्य, कर्म और साधन जीवों में नहीं। इसलिये अनन्त सुख नहीं भोग सकते। जिनके साधन अनित्य हैं उसका फल नित्य कभी नहीं हो सकता। और जो मुक्ति में से कोई भी लौटकर जीव इस संसार में न आवे तो संसार का उच्छेद अर्थात् जीव निःशेष हो जाने चाहिये।"

—'सत्यार्थप्रकाश' नवम समुल्लास

अब प्रश्न उठता है कि जिस अवस्था में मुक्ति के बाद लौट कर पुनः जन्म ग्रहण करना है तो मुक्ति के लिए प्रयत्न क्यों किया जाय ? महर्षि दयानन्द इसका उत्तर देते हैं—

"मुक्ति जन्म मरण के सदृश नहीं क्योंकि जब तक ३६००० (छत्तीस सहस्र) वार उत्पत्ति और प्रलय का जितना समय होता है. उतने समय पर्यन्त जीवों की मुक्ति के आनन्द में रहना, दुःख का न होना क्या छोटी बात है ? जब आज खाते-पीते हो, कल भूख लगने वाली है पुनः, उसका उपाय क्यों करते हो ? जब क्षुधा, तृषा, क्षुद्र धन, राज्य, प्रतिष्ठा, स्त्री, सन्तान आदि के लिए उपाय करना आवश्यक है तो मुक्ति के लिए क्यों न करना ? जैसे मरना आवश्यक है तो भी जीवन का उपाय किया जाता है वैसे ही मुक्ति से लौटकर जन्म में आना

है तथापि उपाय करना अत्यावश्यक है।"

—'सत्यार्थप्रकाश' नवम समुल्लास

मुक्ति के विषय में महर्षि दयानन्द की मान्यताओं का विस्तार से अध्ययन के लिए सत्यार्थप्रकाश का नवम समुल्लास तथा ऋग्वेदादिभाष्यभूमिका मुक्ति प्रकरण का लेख पढ़ना चाहिये।

४. समाज व्यवस्था

वर्ण व्यवस्था – आश्रम व्यवस्था
—राज्यव्यवस्था – आचार व्यवस्था

१. वर्ण व्यवस्था

महर्षि दयानन्द ने वैदिक समाज व्यवस्था में मनुष्य समाज को उनके गुण कर्म के अनुसार चार भागों में विभक्त किया है ब्राह्मण, क्षत्रिय, वैश्य और शूद्र। वे सत्यार्थप्रकाश के चतुर्थ समुल्लास में यजुर्वेद के पुरुष सूक्त के एक मन्त्र का उद्धरण देते हुए लिखते हैं—

> "ब्राह्मणोऽस्य मुखमासीद् बाहू राजन्यः कृतः।
> ऊरू तदस्य यद्वैश्यः पद्भ्यां शूद्रोऽजायत ॥"
>
> —यजु: ३१. ११

इसका अर्थ यह है जो (अस्य) पूर्णव्यापक परमात्मा की सृष्टि में (मुखं) मुख के सदृश, सब में मुख्य उत्तम हो वह (ब्राह्मण:) ब्राह्मण। (बाहू) 'बाहुर्वै बलम्' [५.४.१-१] 'बाहुर्वै वीर्यम्' [६.३.२.३५] शतपथ ब्राह्मण के वचन हैं, बलवीर्य का नाम बाहु है, वह जिसमें अधिक हो सो (राजन्यः) क्षत्रिय। (ऊरू) कटि देश के अधोभाग और जानु के उपरिस्थ भाग का नाम ऊरू है जो सब पदार्थों और सब देशों में उसके बल से जावे, आवे, प्रवेश करे वह (वैश्यः) वैश्य। और (पद्भ्यां) जो पग के अर्थात् नीचे अङ्ग के सदृश मूर्खत्वादि गुणवाला हो वह शूद्र है।

—'सत्यार्थप्रकाश' चतुर्थ समुल्लास

वर्णव्यवस्था गुणकर्मानुसार

महर्षि के समय में ये चारों वर्ण हिन्दू समाज में जन्म के अनुसार माने जाते थे। जो ब्राह्मण कुल में जन्म ले वह चाहे अनपढ़ मूर्ख हो ब्राह्मण ही कहलाता था। इसी प्रकार क्षत्रिय, वैश्य और शूद्रकुल में उत्पन्न व्यक्ति चाहे उनके गुण कर्म स्वभाव किसी प्रकार के भी हों वे उसी वर्ण के माने जाते थे। गुण कर्म स्वभाव के अनुसार वैदिक वर्णव्यवस्था की मान्यता नहीं रही थी। महर्षि ने पुनः प्राचीन ऋषिकृत शास्त्रों के प्रमाणों के आधार पर गुण, कर्म, स्वभाव के अनुसार वर्णव्यवस्था की स्थापना की। वे मनुस्मृति का उद्धरण देते हुए लिखते हैं—

"शूद्रो ब्राह्मणतामेति ब्राह्मणश्चैति शूद्रताम् ।
क्षत्रियाज्जातमेवं तु विद्याद् वैश्यात्तथैव च ॥"

—मनु० १०. ६५

"जो शूद्र कुल में उत्पन्न हो के ब्राह्मण, क्षत्रिय, वैश्य के समान गुण, कर्म, स्वभाव वाला हो तो वह शूद्र ब्राह्मण, क्षत्रिय, वैश्य हो जाय। वैसे ही जो ब्राह्मण, क्षत्रिय, वैश्य कुल में उत्पन्न हुआ हो और उसके गुण, कर्म, स्वभाव शूद्र के सदृश हों तो वह शूद्र हो जाय।" ......"अर्थात् चारों वर्णों में जिस-जिस वर्ण के सदृश जो पुरुष वा स्त्री हो वह-वह उसी वर्ण में गिना जावे।"

—'सत्यार्थप्रकाश' चतुर्थ समुल्लास

'धर्मचर्यया जघन्यो वर्णः पूर्वं पूर्वं वर्णमापद्यते जातिपरिवृत्तौ"
"अधर्मचर्यया पूर्वो पूर्वो वर्णो जघन्यं जघन्यं वर्णमापद्यते जातिपरिवृत्तौ"

—आपस्तम्भ (धर्म) २. ५. १०. १

"धर्माचरण से निकृष्ट वर्ण अपने से उत्तम वर्ण को प्राप्त होता है और वह उसी वर्ण में गिना जावे जिस जिस के योग्य होवे।"

"वैसे अधर्माचरण से पूर्व पूर्व अर्थात् उत्तम उत्तम वर्णवाला

मनुष्य अपने से नीचे नीचे वाले वर्ण को प्राप्त होता है और वह उसी वर्ण में गिना जावे।"

—'सत्यार्थप्रकाश' चतुर्थ समुल्लास

"जैसे पुरुष जिस जिस वर्ण के योग्य होता है वैसे ही स्त्रियों की भी व्यवस्था समझनी चाहिए।

इससे सिद्ध हुआ कि इस प्रकार होने से सब वर्ण अपने अपने गुण, कर्म, स्वभाव युक्त होकर शुद्धता के साथ रहते हैं अर्थात् ब्राह्मण कुल में कोई क्षत्रिय, वैश्य, शूद्र सदृश न रहे और क्षत्रिय वैश्य, शूद्र वर्ण भी शुद्ध रहते हैं। अर्थात् वर्णसंकरता न प्राप्त होगी। इससे किसी वर्ण की निन्दा वा अयोग्यता भी न रहेगी।

—'सत्यार्थप्रकाश' चतुर्थ समुल्लास

महर्षि दयानन्द द्वारा प्रतिपादित यजुर्वेद, मनुस्मृति और आपस्तम्भ धर्मसूत्रों के प्रमाणों के आधार पर यही प्राचीन आर्य सिद्धान्त बनता है कि—

मनुष्य को जहां तक अपने जीवन को उत्कर्ष की ओर ले जाने का प्रश्न है उसमें परमेश्वर ने कोई प्रतिबन्ध नहीं लगा रखा। प्रत्येक मनुष्य अपने पवित्र कर्मों तथा विद्या विज्ञान के द्वारा आत्मनिर्माण करके किसी भी वर्ण को प्राप्त कर सकता है। परमेश्वर की ओर से सबको उन्नति के लिए समान अवसर प्राप्त है।

वेद पढ़ने का अधिकार

महर्षि दयानन्द के समय हिन्दू समाज में यह विचार प्रचलित था कि वेद पढ़ने का अधिकार शूद्र और सभी वर्णों की स्त्रियों को नहीं है। महर्षि इसे अवैदिक मत मानते थे। उनके विचार के अनुसार वेद में ईश्वर ने अपने ज्ञान का प्रकाश मनुष्यमात्र के लिए समान रूप से किया है। वे

सत्यार्थप्रकाश में वेदमन्त्र का प्रमाण प्रस्तुत करते हुए लिखते हैं—

"यथेमां वाचं कल्याणीमावदानि जनेभ्यः ।
ब्रह्मराजन्याभ्यां शूद्राय चार्याय च स्वाय चारणाय ।"

यजुर्वेद २६. २.

"परमेश्वर कहता है कि (यथा) जैसे मैं (जनेभ्यः) सब मनुष्यों के लिए (इमां) इस (कल्याणीं) कल्याण अर्थात् संसार और मुक्ति के सुख देने वाली (वाचं) ऋग्वेदादि चारों वेदों की वाणी को (आवदानि) उपदेश करता हूँ वैसे तुम भी करो।"...

"(ब्रह्मराजन्याभ्यां) हमने ब्राह्मण, क्षत्रिय (अर्याय) वैश्य और (शूद्राय) शूद्र और (स्वाय) अपने भृत्य वा स्त्री आदि (अरणाय) और अति शूद्रादि के लिए भी वेदों का प्रकाश किया है अर्थात् सब मनुष्य वेदों को पढ़ पढ़ा और सुन सुनाकर विज्ञान को बढ़ा के अच्छी बातों का ग्रहण और बुरी बातों का त्याग करके दुःखों से छूट कर आनन्द को प्राप्त हों।"

—'सत्यार्थप्रकाश' तृतीय समुल्लास

"क्या परमेश्वर शूद्रों का भला नहीं करना चाहता ? क्या ईश्वर पक्षपाती है कि वेदों के पढ़ने सुनने का शूद्रों के लिए निषेध और द्विजों के लिए विधि करे? जो परमेश्वर का अभिप्राय शूद्र आदि के पढ़ाने सुनाने का न होता तो इनके शरीर में वाक् और श्रोत्र इन्द्रिय क्यों रचता ? जैसे परमात्मा ने पृथिवी, जल, अग्नि, वायु, चंद्र सूर्य और अन्नादि पदार्थ सब के लिए बनाए हैं वैसे ही वेद भी सबके लिए प्रकाशित किए हैं।"

—'सत्यार्थप्रकाश' तृतीय समुल्लास

"जो स्त्रियों को पढ़ाने का निषेध करते हो वह तुम्हारी

मूर्खता, स्वार्थता और निर्बुद्धिता का प्रभाव है। देखो वेद में कन्याओं के पढ़ने का प्रमाण—

ब्रह्मचर्येण कन्या युवानं विन्दते पतिम्"

—अथर्ववेद कां. ११. प्र. २४. अ. ३ मं. १८

जैसे लड़के ब्रह्मचर्य सेवन से पूर्ण विद्या और सुशिक्षा को प्राप्त होके युवती, विदुषी, अपने अनुकूल प्रिय सदृश स्त्रियों के साथ विवाह करते हैं वैसे (कन्या) कुमारी (ब्रह्मचर्येण) ब्रह्मचर्य सेवन से वेदादि शास्त्रों को पढ़ पूर्ण विद्या और उत्तम शिक्षा को प्राप्त युवती होके पूर्ण युवावस्था में अपने सदृश, प्रिय विद्वान् (युवानं) पूर्ण युवावस्थायुक्त पुरुष को (विन्दते) प्राप्त होवे। इसलिए स्त्रियों को भी विद्या और ब्रह्मचर्य का ग्रहण अवश्य करना चाहिए।

—सत्यार्थप्रकाश' तृतीय समुल्लास

"श्रौत सूत्र में 'इमं मन्त्रं पत्नी पठेत्' अर्थात् स्त्री यज्ञ में इस मन्त्र को पढ़े। जो वेदादि शास्त्रों को न पढ़ी होवे तो यज्ञ में स्वरसहित मन्त्रों का उच्चारण, संस्कृत भाषण कैसे करे?"

"भारतवर्ष की स्त्रियों में भूषण रूप गार्गी आदि वेदादि शास्त्रों को पढ़कर पूर्णविदुषी हुई थीं। यह शतपथ कां. १४ में स्पष्ट लिखा है। भला जो पुरुष विद्वान् और स्त्री अविदुषी और स्त्री विदुषी और पुरुष अविद्वान् हो तो नित्य प्रति देवासुर संग्राम घर में मचा रहे। फिर सुख कहाँ? इसलिए जो स्त्री न पढ़े तो कन्याओं की पाठशाला में अध्यापिका क्यों कर हो सके तथा राजकीय न्यायाधीशत्वादि, गृहाश्रम का काम, जो पति को स्त्री और स्त्री को पति प्रसन्न रखना, घर के सब काम स्त्री के अधीन रखना इत्यादि काम बिना विद्या के अच्छे प्रकार कभी ठीक नहीं हो सकते।"

"देखो आर्यावर्त के राजपुरुषों की स्त्रियां धनुर्वेद अर्थात्

युद्ध विद्या भी अच्छे प्रकार जानती थीं। क्योंकि जो न जानती होतीं तो केकयी आदि दशरथ आदि के साथ युद्ध में क्यों कर जा सकतीं और युद्ध कर सकतीं ? इसलिए ब्राह्मणी और क्षत्रिया को सब विद्या, वैश्या को व्यवहार विद्या और शूद्रा को पाकादि सेवा की विद्या अवश्य पढ़नी चाहिये।"

—'सत्यार्थप्रकाश' तृतीय समुल्लास

चारों वर्णों के गुणकर्म

महर्षि दयानन्द सत्यार्थप्रकाश के चतुर्थ समुल्लास में मनुस्मृति और गीता के आधार पर चारों वर्णों के कर्त्तव्य कर्म और गुणों का वर्णन करते हुए लिखते हैं—

"अध्यापनमध्ययनं यजनं याजनं तथा।
दानं प्रतिग्रहश्चैव ब्राह्मणानामकल्पयत् ॥"

मनु० १.८८

"शमो दमस्तपः शौचं क्षान्तिरार्जवमेव च।
ज्ञानं विज्ञानमास्तिक्यं ब्रह्मकर्म स्वभावजम् ॥"

—गीता १८. ४२

"ब्राह्मण के पढ़ना, पढ़ाना, यज्ञ करना, दान देना-लेना ये कर्म हैं परन्तु 'प्रतिग्रहः प्रत्यवरः' मनु० [१० १०९] अर्थात् (प्रतिग्रह) लेना बुरा कर्म है।"

"(शमः) मन से बुरे काम की इच्छा भी न करनी और उसको अधर्म में कभी प्रवृत्त न होने देना (दमः) श्रोत्र और चक्षु आदि इन्द्रियों को अन्यायाचरण से रोककर धर्म में चलाना (तपः) सदा ब्रह्मचारी जितेन्द्रिय होके धर्मानुष्ठान करना, (शौच)—

अद्भिर्गात्राणि शुध्यन्ति मनः सत्येन शुध्यति।
विद्यातपोभ्यां भूतात्मा बुद्धिर्ज्ञानेन शुध्यति ॥

मनु० [५. १०९]

जल से बाहर के अङ्ग, सत्याचार से मन, विद्या और धर्मानुष्ठान से जीवात्मा और ज्ञान से बुद्धि पवित्र होती है। भीतर से रागद्वेषादि दोष और बाहर के मलों को दूर कर शुद्ध रहना अर्थात् सत्यासत्य से विवेकपूर्वक सत्य के ग्रहण और असत्य के त्याग से निश्चय पवित्र होता है। (क्षान्तिः) अर्थात् निन्दा, स्तुति, सुख, दुःख, शीतोष्ण, क्षुधा, तृषा, हानि, लाभ, मानापमान, आदि, हर्ष शोक छोड़कर धर्म में दृढ़ निश्चय रहना, (आर्जव) कोमलता, निरभिमान, सरलता, सरल स्वभाव रखना कुटिलतादि दोष छोड़ना (ज्ञान) सब वेदादि शास्त्रों को सांगोपांग पढ़के पढ़ाने का सामर्थ्य, विवेक सत्य का निर्णय, जो वस्तु जैसा हो अर्थात् जड़ को जड़, चेतन को चेतन जानना और मानना (विज्ञान) पृथ्वी से लेके परमेश्वर पर्यन्त पदार्थों को विशेषता से जानकर उनसे यथायोग्य उपयोग लेना, (आस्तिक्य) कभी वेद, ईश्वर, मुक्ति, पूर्व पर जन्म, धर्म, विद्या, सत्सङ्ग, माता, पिता, आचार्य और अतिथियों की सेवा को न छोड़ना और निन्दा कभी न करना। ये पन्द्रह कर्म और गुण ब्राह्मण वर्णस्थ मनुष्य में अवश्य होने चाहिये।"

क्षत्रिय

"प्रजानां रक्षणं दानमिज्याऽध्ययनमेव च।
विषयेष्वप्रसक्तिश्च क्षत्रियस्य समासतः॥"

मनु० १.८६

"शौर्यं तेजो धृतिर्दाक्ष्यं युद्धे चाप्यपलायनम्।
दानमीश्वरभावश्च क्षात्रं कर्म स्वभावजम्॥"

गीता १८.४३

"न्याय से प्रजा की रक्षा करना अर्थात् पक्षपात छोड़ के श्रेष्ठों का सत्कार और दुष्टों का तिरस्कार करना, सब प्रकार से सबका पालन (दान) विद्या धर्म की प्रवृति और सुपात्रों की

सेवा में धनादि पदार्थों का व्यय करना (इज्या) अग्निहोत्रादि यज्ञ करना वा कराना (अध्ययन) वेदादि शास्त्रों का पढ़ना तथा पढ़ाना और (विषयेषु०) विषयों में न फंसकर जितेन्द्रिय रह के सदा शरीर और आत्मा से बलवान् रहना।

(शौर्य) सैंकड़ों सहस्रों से भी युद्ध करने में अकेला भय न होना (तेजः) सदा तेजस्वी अर्थात् दीनतारहित प्रगल्भ दृढ़ रहना (धृतिः) धैर्यवान् होना (दाक्ष्य) राजा और प्रजासम्बन्धी व्यवहार और सब शास्त्रों में अतिचतुर होना (युद्धे) युद्ध में भी दृढ़ निःशंक रहके उससे (अपलायनं) कभी न हटना, न भागना अर्थात् इस प्रकार से लड़ना कि जिससे निश्चित विजय होवे (दान) दानशीलता रखना (ईश्वरभाव) पक्षपातरहित होके सबके साथ यथायोग्य वर्तना, विचारके देना, प्रतिज्ञा पूरी करना, उसको कभी भङ्ग न होने दे। ये ग्यारह क्षत्रिय वर्ण के कर्म और गुण हैं।"

वैश्य

> पशूनां रक्षणं दानमिज्याध्ययनमेव च।
> वणिक् पथं कुसीदं च वैश्यस्य कृषिमेव च॥"
>
> मनु० १.९०

(पशूनां रक्षणं) पशुरक्षा, गाय आदि पशुओं का पालन वर्धन करना, (दान) विद्या धर्म की वृद्धि करने कराने के लिए धनादि का व्यय करना, (इज्या) अग्निहोत्रादि यज्ञों का करना (अध्ययन) वेदादि शास्त्रों का पढ़ना, (वणिक् पथ) सब प्रकार के व्यापार करना (कुसीद) एक सैंकड़े में; चार, छः, आठ, बारह, सोलह व बीस आनों से अधिक ब्याज और मूल से दूना अर्थात् एक रुपया दिया हो तो सौ वर्ष में भी दो रुपये से अधिक न लेना और न देना (कृषि) खेती करना ये वैश्य के गुण कर्म हैं।"

शूद्र

"एकमेव तु शूद्रस्य प्रभुः कर्म समादिशत् ।
एतेषामेव वर्णानां शुश्रूषामनसूयया ॥"

मनु० १.९१

"शूद्र को योग्य है कि निन्दा ईर्ष्या अभिमान आदि दोषों को छोड़ के ब्राह्मण क्षत्रिय और वैश्यों की सेवा यथावत् करना और उसी में अपना जीवन यापन करना यही एक शूद्र का गुण कर्म है।"

"ये संक्षेप से वर्णों के गुण और कर्म लिखे। जिस-जिस पुरुष में जिस-जिस वर्ण के गुण कर्म हों उस-उस वर्ण का अधिकार देना। ऐसी व्यवस्था रखने से सब मनुष्य उन्नतिशील होते हैं। क्योंकि उत्तम वर्णों को भय होगा कि जो हमारे सन्तान मूर्खत्व आदि दोषयुक्त होंगे तो शूद्र हो जायंगे और सन्तान भी डरते रहेंगे कि जो हम उक्त चाल-चलन और विद्यायुक्त न होंगे तो शूद्र होना पड़ेगा और नीच वर्ण को उत्तम वर्णस्थ होने के लिए उत्साह बढ़ेगा।"

संक्षेप में

(१) विद्या और धर्म के प्रचार का अधिकार ब्राह्मण को देना क्योंकि वे पूर्ण विद्यावान् और धार्मिक होने से उस काम को यथायोग्य कर सकते हैं।

(२) क्षत्रियों को राज्य के अधिकार देने से कभी राज्य की हानि और विघ्न नहीं होता।

(३) पशुपालनादि का अधिकार वैश्यों ही को होना योग्य है। क्योंकि वे इस काम को अच्छे प्रकार कर सकते हैं।

(४) शूद्र को सेवा का अधिकार इसलिए है कि वह विद्या रहित मूर्ख होने से विज्ञान सम्बन्धी काम कुछ नहीं कर सकता है।

इस प्रकार वर्णों को अपने अपने अधिकार में प्रवृत्त करना राजा आदि सभ्य जनों का काम है।"

— 'सत्यार्थप्रकाश' चतुर्थ समुल्लास

इन लेखों से महर्षि के इस विषय में सिद्धान्तों का सार यह है—

(१) वेद में मनुष्य समाज को व्यवस्था में बनाये रखने के लिए चार वर्णों (श्रेणियों-वर्गों) में विभक्त किया गया है, ब्राह्मण, क्षत्रिय, वैश्य, शूद्र।

(२) परमेश्वर ने वेदवाणी के स्वाध्याय, विद्या विज्ञान की प्राप्ति और चरित्र शिक्षण का अधिकार सब मनुष्यों (पुरुषों और स्त्रियों) को समान रूप से दिया है चाहे वे किसी भी वर्ण में उत्पन्न हुए हों।

(३) वर्ण-व्यवस्था गुण कर्म स्वभाव के अनुसार होती है। जन्म के अनुसार नहीं।

(४) राज्य और समाज की ओर से यह व्यवस्था होनी चाहिए कि गुण कर्म स्वभाव के अनुसार सब वर्णों के व्यक्तियों को उनके उपयुक्त स्थान और कार्य करने का अवसर प्राप्त हों।

२. आश्रम व्यवस्था

आश्रम—जिनमें अत्यन्त परिश्रम करके उत्तम गुणों का ग्रहण और श्रेष्ठ काम किए जायें उनको आश्रम कहते हैं।

—'आर्योद्देश्यरत्नमाला' ४५

जिस प्रकार वेद में मनुष्य समाज को चार वर्णों में विभक्त किया गया है उसी प्रकार मनुष्य जीवन को चार आश्रमों में विभक्त किया गया है जिनमें मनुष्य अत्यन्त परिश्रम करके उत्तम गुणों का ग्रहण करे और श्रेष्ठ कर्म करे।

महाभारत के बाद जिन मतों का विकास हुआ उनसे प्रायः

सभी मत प्रवर्तकों ने संसार को दुःखमय कहकर उसके त्याग का उपदेश दिया है। सभी ने निर्वाण अथवा मोक्ष को ही जीवन का एकमात्र उद्देश्य बतलाया है।

महर्षि दयानन्द संसार को कर्मक्षेत्र मानते हैं। उनके विचार में श्रद्धा और विश्वास रखते हुए संयम के साथ इस संसार में धर्म, अर्थ, काम, मोक्ष चारों की उपलब्धि करनी चाहिए। महर्षि दयानन्दलिखित सन्ध्या में एक संस्कृत वाक्य का पाठ किया जाता है—

"हे ईश्वर ! दयानिधे ! भवत्कृपयाऽनेन जपोपासनादिकर्मणा धर्मार्थकाममोक्षाणां सद्यः सिद्धिर्भवेन्नः"

हे ईश्वर दयानिधे ! आपकी कृपा से जो-जो उत्तम कर्म हम लोग करते हैं वे सब आपके अर्पण हैं जिससे हम लोग आप को प्राप्त होके 'धर्म' जो सत्य न्याय का आचरण करना है, 'अर्थ' जो धर्म से पदार्थों की प्राप्ति करना है, 'काम' जो धर्म अर्थ से इष्ट भोगों का सेवन करना है, और 'मोक्ष' जो सब दुःखों से छूटकर सदा आनन्द में रहना है इन चार पदार्थों की सिद्धि पद को शीघ्र प्राप्त हों।

— 'पंचमहायज्ञविधि' सन्ध्याप्रकरण

इन चारों धर्म, अर्थ, काम और मोक्ष की सिद्धि के लिए ज्ञान और कर्म की आवश्यकता है। ज्ञान की प्राप्ति और उद्देश्य की सिद्धि के लिए आवश्यक कर्म करने के निमित्त चार आश्रमों की योजना आश्रम व्यवस्था में है।

महर्षि दयानन्द ऋग्वेदादिभाष्यभूमिका के वर्णाश्रम प्रकरण में आश्रमों का वर्णन करते हुए लिखते हैं—

"आश्रमा अपि चत्वारः सन्ति, ब्रह्मचर्यगृहस्थवानप्रस्थसंन्यासभेदात्। ब्रह्मचर्येण सद्विद्या शिक्षा च ग्राह्या। गृहाश्रमेणोत्तमाचरणानां श्रेष्ठानां पदार्थानां चोन्नतिः कार्या। वानप्रस्थेनैकान्तसेवनं, ब्रह्मो-

पासनं, विद्याफल विचारणादि च कार्यम् । संन्यासेन परब्रह्ममोक्षपरमानन्दप्रापणं क्रियते, सदुपदेशेन सर्वस्मै आनन्ददान चेत्यादि । चतुर्भिराश्रमैर्धर्मार्थकाममोक्षाणां सम्यक् सिद्धिः सम्पादनीया ।

"आश्रम चार हैं । ब्रह्मचर्य, गृहस्थ, वानप्रस्थ और संन्यास । ब्रह्मचर्य आश्रम के द्वारा हमें उत्तम विद्या और जीवन यात्रा के लिए उपयोगी शिक्षा ग्रहण करनी चाहिए । गृहस्थाश्रम द्वारा उत्तम आचरण और श्रेष्ठ पदार्थों की उन्नति करनी चाहिए । वानप्रस्थ में एकान्त सेवन करते हुए ब्रह्म की उपासना, जो कुछ ब्रह्मचर्य आश्रम में पढ़ा और गृहस्थाश्रम में अनुभव किया उसके परिणामों पर विचार करना चाहिए । संन्यास में परब्रह्म परमेश्वर की शरण में मोक्ष का परम आनन्द प्राप्त किया जाता है । इसके साथ ही सभी प्रकार के ज्ञान और अनुभव के आधार पर सर्वजनों को उपदेश देकर उन्हें भी आनन्द का लाभ देना चाहिए ।"

"इस प्रकार चार आश्रमों द्वारा धर्म, अर्थ, काम और मोक्ष की सिद्धि प्राप्त करनी चाहिए ।"

—महर्षि वचन का अनुवाद

सत्यार्थप्रकाश के पंचम समुल्लास में भी महर्षि दयानन्द ने चारों आश्रमों की व्यवस्था का निर्देश इस प्रकार किया है—

"ब्रह्मचर्याश्रमं समाप्य गृही भवेद्, गृही भूत्वा वनी भवेद्. वनी भूत्वा प्रव्रजेत् ।"

—शतपथ ब्राह्मण कां. १४

"मनुष्यों को उचित है कि ब्रह्मचर्याश्रम समाप्त करके गृहस्थ होके वानप्रस्थ और वानप्रस्थ होके संन्यासी होवे । यह अनुक्रम से आश्रम विधान है"

ब्रह्मचर्य

जीवन की प्रथम अवस्था ब्रह्मचर्य है । बच्चा उत्पन्न होने

पर अजान रहता है। केवल मातृस्तन्य पीना और रोना ही जानता है। उसके प्रथम जीवन काल में माता-पिता और आचार्य द्वारा ही उसके ज्ञान का विकास होता है। महर्षि सत्यार्थप्रकाश में वर्णन करते हैं—

"मातृमान् पितृमान् आचार्यवान् पुरुषो वेद"

—शतपथ ब्राह्मण १४. ५. ८. २

"यह शतपथ ब्राह्मण का वचन है। वस्तुतः जब तीन उत्तम शिक्षक अर्थात् एक माता दूसरा पिता और तीसरा आचार्य होवे तभी मनुष्य ज्ञानवान् होता है। वह कुल धन्य है, वह सन्तान भाग्यवान् है जिसके माता-पिता धार्मिक विद्वान् हों। जितना माता से सन्तानों को उपदेश और उपकार पहुंचता है उतना किसी से नहीं। जैसे माता सन्तानों पर प्रेम और उसका हित करना चाहती है उतना अन्य कोई नहीं करता, इसलिए 'मातृमान्' अर्थात् 'प्रशस्ता धार्मिकी माता विद्यते यस्य स मातृमान्'। धन्य है वह माता जो गर्भाधान से लेकर जबतक पूर्ण विद्या न हो तबतक सुशीलता का उपदेश करे।"

—'सत्यार्थप्रकाश' द्वितीय समुल्लास

प्रथम आठ वर्ष तक बालक का शिक्षण माता-पिता के पास होता है। अवस्थानुसार वे उसे वर्णों का उच्चारण, शब्दों का उच्चारण सिखाते हुए बोलना सिखाते हैं। माता का इसमें विशेष भाग रहता है। महर्षि दयानन्द इस विषय में आदेश देते हैं—

"बालकों की माता सदा उत्तम शिक्षा करे जिससे सन्तान सभ्य हो और किसी अंग से कुचेष्टा न करने पावे"...

"जब वह (बालक) कुछ कुछ बोलने और समझने लगे तब सुन्दर वाणी और बड़े छोटे, मान्य, पिता, माता, राजा, विद्वान् आदि से भाषण, उनसे वर्तमान (बर्ताव) और उनके

पास बैठने आदि की भी शिक्षा करे, जिससे कहीं उनका अयोग्य व्यवहार न होके सर्वत्र प्रतिष्ठा हुवा करे। जैसे सन्तान जितेन्द्रिय, विद्याप्रिय और सत्संग में रुचि करें वैसा प्रयत्न करते रहें।"

"जब पांच वर्ष के लड़का-लड़की हों तब देवनागरी अक्षरों का अभ्यास करावें, अन्य देशीय भाषाओं के अक्षरों का भी। उसके पश्चात् जिनसे अच्छी शिक्षा, विद्या, धर्म, परमेश्वर, माता, पिता, आचार्य, विद्वान्, अतिथि, राजा, प्रजा, कुटुम्ब, बंधु, भगिनी, भृत्य आदि से कैसे कैसे वर्तना इन बातों के मन्त्र, श्लोक सूत्र, पद्य भी अर्थसहित कण्ठस्थ करावें, जिनसे सन्तान किसी धूर्त के बहकावे में न आवे और जो जो विद्या धर्म विरुद्ध भ्रांति जाल में गिराने वाले व्यवहार हैं उनका भी उपदेश करे जिससे भूत प्रेत इत्यादि मिथ्या बातों का विश्वास न हो।"

—'सत्यार्थप्रकाश' द्वितीय समुल्लास

"जन्म से पांच वर्ष तक बालकों को माता, छठे वर्ष से आठवें वर्ष तक पिता शिक्षा करे, और ९वें वर्ष के आरम्भ में द्विज अपनी सन्तानों का उपनयन करके आचार्य कुल में अर्थात् जहां पूर्ण विद्वान्, पूर्ण विदुषी स्त्री शिक्षा और विद्यादान करने वाले हों वहां लड़के लड़कियों को भेज दें और शूद्रादि वर्ण उपनयन किये बिना विद्याभ्यास के लिए गुरुकुल में भेज दें।

—'सत्यार्थप्रकाश' द्वितीय समुल्लास

इसमें राजनियम और जातिनियम होना चाहिये कि पांचवें अथवा आठवें वर्ष के आगे कोई अपने लड़के, लड़कियों को घर में न रख सके। पाठशाला में अवश्य भेज देवे। जो न भेजे वह दण्डनीय हो।

प्रथम बालकों का यज्ञोपवीत घर में हो और दूसरा पाठ-

शाला में आचार्य कुल में हो।"

—'सत्यार्थप्रकाश' तृतीय समुल्लास

महर्षि के लेखों से पाठक जान सकेंगे कि उनके विचार से शिक्षा केवल अक्षराभ्यास या पुस्तकों द्वारा प्राप्त ज्ञान विज्ञान का नाम नहीं। ये तो केवल जीवनयात्रा के साधन हैं। शुभ आचरण द्वारा जीवन निर्माण का नाम शिक्षा है। जीवन में धर्माचरण का सबसे ऊँचा स्थान है। धर्म के साथ संयमपूर्वक अर्थ और काम भी मानव जीवन का अङ्ग है। अन्तिम उद्देश्य मोक्ष है। जीवन निर्माण में आचार और व्यवहार की छोटी-छोटी बातें जिनकी ओर माता-पिता का ध्यान प्रायः नहीं जाता उनकी ओर भी पूर्ण सतर्कता की आवश्यकता है।

शिक्षा राष्ट्र के सब बच्चों के लिए राजकीय तथा पंचायती नियमों के द्वारा अनिवार्य होनी चाहिये, यह भी महर्षि की धारणा थी। विशेष जानकारी के लिए पाठकों को सत्यार्थ प्रकाश का द्वितीय, तृतीय समुल्लास तथा महर्षि लिखित व्यवहारभानु पढ़ना चाहिये।

यज्ञोपवीत

यज्ञोपवीतं परमं पवित्रं प्रजापतेर्यत् सहजं पुरस्तात्।
आयुष्यमग्र्यं प्रतिमुञ्च शुभ्रं यज्ञोपवीतं बलमस्तु तेजः।

महर्षि दयानन्द सत्यार्थप्रकाश के प्रथम समुल्लास में ईश्वर के भिन्न-भिन्न नामों की व्याख्या करते हुए 'यज्ञ' शब्द का अर्थ इस प्रकार करते हैं -

"(यज देवपूजासंगतिकरणदानेषु) इस धातु से यज्ञ शब्द सिद्ध होता है। 'यज्ञोवैविष्णुः' यह शतपथ ब्राह्मण का वचन है। 'यो यजति विद्वद्भिरिज्यते वा स यज्ञः' जो सब जगत् के पदार्थों को संयुक्त करता है और सब विद्वानों का पूज्य है और ब्रह्मा से लेके सब ऋषि मुनियों का पूज्य था, है और होगा

इससे उस परमात्मा का नाम यज्ञ है।''

ब्रह्मचर्य—ब्रह्म में विचरना, ब्रह्म द्वारा रचित विश्व का ज्ञान विज्ञान प्राप्त करना, उसके द्वारा पवित्र आचरणों से मनुष्य जीवन सफल करना तभी सम्भव है जब मनुष्य में उपवीत हो, स्वयं को यज्ञमय बना दे। तीन सूत्रों से बना यज्ञोपवीत एक संकल्प-सूत्र है जो हमें अपने इस संकल्प का सदा स्मरण कराता है।

पुरुष—इस शरीररूपी पुरी में शयन करने वाला जीवात्मा भी यज्ञ है। छान्दोग्योपनिषद् का वचन है 'पुरुषो वाव यज्ञः' पुरुष को देवपूजा, देवों की संगति और दान इन्हीं से अपने जीवन का निर्माण करना है।

माता, पिता और आचार्य ये तीन देव हैं जो इस पुरुष का निर्माण करते हैं। इनकी पूजा, आदर भाव से सेवा करने तथा इनकी संगति में रहकर विद्या, विज्ञान और सदाचार की शिक्षा ग्रहण करने से ही पुरुष पुरुष बन सकता है, इस शरीररूपी पुरी का सुयोग्य अधिष्ठाता बन सकता है। अपने जीवन में यह पुरुष जो कुछ इन देवों—माता, पिता आचार्य से इनकी संगति में रहकर प्राप्त करता है उसे इस ऋण को चुकाने के लिए इन उपलब्धियों को अपने पीछे आने वाली सन्तानों को देना है जिससे ज्ञान का प्रवाह चलता रहे। साथ ही इन देवों के देव आदि देव परमेश्वर की भी सदा उपासना करनी है जिसकी कृपा से आदि सृष्टि में वेद द्वारा इस ज्ञान की धारा का प्रवाह हुआ। इन सब भावनाओं का संकल्पसूत्र यह तीन सूत्रों से बना यज्ञोपवीत है। यज्ञमय पुरुष को इस संकल्पसूत्र द्वारा अपने कर्त्तव्यों का स्मरण करना है।

इस संकल्पसूत्र यज्ञोपवीत को हमें परम पवित्र मानना चाहिये। संकल्प के साथ धारण किया हुआ यह यज्ञोपवीत

सदा बल देने वाला और आयु को सत्कार्यों में प्रेरित करने वाला, परमपिता परमेश्वर से सम्बन्ध बनाए रखने वाला सिद्ध होगा।

इस संकल्पसूत्र यज्ञोपवीत को शिष्य के गले में माला रूप धारण करवाकर आचार्य शिष्य को अपने कुल में (गुरुकुल में) विद्याध्ययन के लिए प्रविष्ट करता है। महर्षि दयानन्द द्वारा निर्दिष्ट प्राचीन पद्धति के अनुसार—

"विद्या पढ़ने का स्थान एकान्त देश में होना चाहिए और वे लड़के और लड़कियों की पाठशाला दो कोस एक-दूसरे से दूर होनी चाहियें। जो वहां अध्यापिका और अध्यापक पुरुष, भृत्य, अनुचर हों वे कन्याओं की पाठशाला में सब स्त्री और पुरुषों की पाठशाल में पुरुष रहें। स्त्रियों की पाठशाला में पांच वर्ष का लड़का और पुरुषों की पाठशाला में पांच वर्ष की लड़की भी न जाने पावे। अर्थात् जबतक वे ब्रह्मचारी वा ब्रह्मचारिणी रहें तबतक स्त्री वा पुरुष का दर्शन, स्पर्शन, एकान्त सेवन, भाषण, विषय कथा, परस्पर क्रीड़ा, विषय का ध्यान और सङ्ग इन आठ प्रकार के मैथुनों से अलग रहें। और अध्यापक लोग उनको इन बातों से बचावें जिससे उत्तम विद्या, शिक्षा, शील, स्वभाव, शरीर और आत्मा से बलयुक्त होके आनन्द को नित्य बढ़ा सकें। पाठशालाओं से एक योजन अर्थात् चार कोस दूर ग्राम वा नगर रहें।

सबको तुल्य वस्त्र, खान, पान, आसन दिये जायें चाहे वह राजकुमार वा राजकुमारी हो, चाहे दरिद्र के सन्तान हों, सब को तपस्वी होना चाहिये। उनके माता-पिता अपने सन्तानों से वा सन्तान अपने माता-पिता से न मिल सकें और न किसी प्रकार का पत्र-व्यवहार एक-दूसरे से कर सकें, जिससे संसारी चिन्ता से रहित होकर केवल विद्या बढ़ाने की चिन्ता रखें।

जब भ्रमण करने को जायें तब उनके साथ अध्यापक रहें जिससे किसी प्रकार की कुचेष्टा न कर सकें और न आलस्य प्रमाद करें।"

—'सत्यार्थप्रकाश' तृतीय समुल्लास

ब्रह्मचारी के लिए गायत्री जाप, संन्ध्या, प्रणायाम, यम-नियमादि योगाङ्गों का अनुष्ठान तथा अग्निहोत्र ये नित्य कर्म महर्षि ने आवश्यक बताए हैं।

ब्रह्मचर्य के प्रकार

महर्षि दयानन्द ने छान्दोग्य उपनिषद के आधार पर ब्रह्मचर्य तीन प्रकार बतलाया है। कनिष्ठ, मध्यम और उत्तम। कनिष्ठ चौबीस वर्ष पर्यन्त, मध्यम चवालीस वर्ष पर्यन्त और उत्तम अठतालीस वर्ष पर्यन्त। यदि कोई संयमी धर्मात्मा पुरुष समस्त आयु ब्रह्मचारी रहना चाहे तो उसका निषेध नहीं है। गृहस्था-श्रम में प्रवेश चाहने वाले पुरुष को इस समय के अन्दर विवाह कर लेना चाहिये।

स्त्रियों के लिए ब्रह्मचर्य काल की सीमा महर्षि के अनुसार सोलह वर्ष की आयु से चौबीस वर्ष की आयु तक है। जो स्त्रियां गृहस्थ आश्रम में प्रवेश करना चाहें उन्हें सोलह वर्ष से चौबीस वर्ष की आयु के अन्दर विवाह कर लेना चाहिए। जो स्त्रिया मरणपर्यन्त संयमपूर्वक परोपकार करती हुई ब्रह्मचारिणी रहना चाहें उनके लिए यह मर्यादा नहीं है।

गुरुकुल में आचार्य के संरक्षण में रहते हुए यथोचित ज्ञान विज्ञान, वेदादिशास्त्रों का अध्ययन और आचार शिक्षा प्राप्त करने के अनन्तर चौबीस से अठतालीस वर्ष की आयु में पुरुष तथा सोलह से चौबीस वर्ष की आयु में स्त्रियां आचार्य से विदा लेते हैं।

विदाई के समय आचार्य उन्हें उपदेश देते हैं—

"सत्यं वद। धर्मं चर। स्वाध्यायान्मा प्रमदः। आचार्याय प्रियं धनमाहृत्य प्रजातन्तुं मा व्यवच्छेत्सीः। सत्यान्न प्रमदितव्यम्। धर्मान्न प्रमदितव्यम्। कुशलान्न प्रमदितव्यम्। भूत्यै न प्रमदितव्यम्। स्वाध्यायप्रवचनाभ्यां न प्रमदितव्यम्। देवपितृकार्याभ्यां न प्रमदितव्यम्। मातृदेवो भव। पितृदेवो भव। आचार्यदेवो भव। अतिथिदेवो भव। यान्यनवद्यानि कर्माणि तानि सेवितव्यानि नो इतराणि। यान्यस्माकं सुचरितानि तानि त्वयोपास्यानि नो इतराणि। ये के चास्मत् श्रेयांसो ब्राह्मणास्तेषां त्वयासनेन प्रश्वसितव्यम्। श्रद्धया देयम्। अश्रद्धया देयम्। श्रिया देयम्। ह्रिया देयम्। भिया देयम्। संविदा देयम्। अथ यदि ते कर्मविचिकित्सा वा वृत्तिविकिचित्सा वा स्यात् ये तत्र ब्राह्मणा शम्मर्शिनो युक्ता अयुक्ता अलूक्षा धर्मकामाः स्युर्यथा ते तत्र वर्तेरन् तथा तत्र वर्तेथाः। एष आदेश एष उपदेश एषा वेदोपनिषत्। एतदनुशासनम्। एवमुपासितव्यम्। एवं चैतदुपास्यम्।"

— तैत्तरीय उपनिषत् ७. ११. १–४

"तू सदा सत्य बोल। धर्माचरण कर। प्रमाद रहित होके पढ़ पढ़ा। पूर्ण ब्रह्मचर्य से समस्त विद्याओं का ग्रहण और आचार्य के लिए प्रिय धन देकर विवाह करके सन्तानोत्पत्ति कर। प्रमाद से सत्य को कभी मत छोड़। प्रमाद से धर्म का त्याग मत कर। प्रमाद से आरोग्य और चतुराई को मत छोड़। प्रमाद से उत्तम ऐश्वर्य की वृद्धि को मत छोड़। प्रमाद से पढ़ने पढ़ाने को कभी मत छोड़। देव-विद्वान्, माता पिता की सेवा में प्रमाद मत कर। जैसे विद्वान् का सत्कार करे उसी प्रकार माता पिता आचार्य और अतिथि की सेवा सदा किया कर। जो अनिन्दित धर्मयुक्त कर्म हैं उन सत्यभाषणादि को किया कर, उनसे भिन्न मिथ्याभाषणादि कभी मत कर। जो हमारे सुचरित्र अर्थात् धर्मयुक्त कर्म हों उनका ग्रहण कर और जो हमारे पापाचरण हों उनको कभी मत कर। जो हमारे मध्य

में उत्तम विद्वान् धर्मात्मा ब्राह्मण हैं उन्हीं के समीप बैठ और उन्हीं का विश्वास किया कर। श्रद्धा से देना। अश्रद्धा से देना। शोभा से देना। लज्जा से देना। भय से देना और प्रतिज्ञा से भी देना। जब कभी तुझ को कर्म वा शील तथा उपासना ज्ञान में किसी प्रकार संशय उत्पन्न हो तो जो विचारशील पक्षपात रहित योगी, अयोगी, आर्द्रचित धर्म की कामना करने वाले धर्मात्मा जन हों जैसे वे धर्म मार्ग में वर्तें वैसे तू भी उसमें बर्ता कर। यही आदेश, आज्ञा, यही उपदेश और यही वेद की उपनिषत् और यही शिक्षा है। इसी प्रकार वर्तना और अपना चाल चलन सुधारना चाहिए।''

—'सत्यार्थप्रकाश' तृतीय समुल्लास

इस प्रकार आचार्य का विदाई के समय उपदेश और आशीर्वाद प्राप्त करके ब्रह्मचारी गृहस्थाश्रम में प्रवेश करे।

गृहस्थाश्रम

गृहस्थाश्रम संस्कार उसको कहते हैं कि जो ऐहिक और पारलौकिक सुख प्राप्ति के लिए विवाह करके अपने सामर्थ्य के अनुसार परोपकार करना और नियत काल में यथाविधि ईश्वरोपासना और गृहकृत्य करना और सत्यधर्म में ही अपना तन-मन-धन लगाना तथा धर्मानुसार सन्तानों की उत्पत्ति करना।

—'संस्कारविधि' गृहाश्रम संस्कार प्रकरण

विवाह उसको कहते हैं जो पूर्ण ब्रह्मचर्य-व्रत विद्या बल को प्राप्त तथा सब प्रकार से शुभ गुण कर्म स्वभावों में तुल्य, परस्पर प्रीतियुक्त होके सन्तानोत्पत्ति और अपने-अपने वर्णाश्रम के अनुकूल उत्तम कर्म करने के लिए स्त्री और पुरुष का संबंध होता है।

—'संस्कारविधि' विवाह संस्कार प्रकरण

सत्यार्थप्रकाश के चतुर्थ समुल्लास तथा संस्कारविधि के विवाह संस्कार के प्रकरण में शास्त्रों के आधार पर महर्षि दयानन्द ने गृहस्थाश्रम प्रवेश के विषय में जो व्यवस्था की है उसका संक्षेप से वर्णन मैं पाठकों के समक्ष प्रस्तुत करता हूं—

"वेदानधीत्य वेदौ वा वेदं वापि यथाक्रमम् ।
अविप्लुतब्रह्मचर्यो गृहस्थाश्रममाविशेत् ।। मनुस्मृति ३. २

"जब यथावत् ब्रह्मचर्य में आचार्यानुकूल वर्तकर धर्म से चारों वेद, तीन वा दो वेद अथवा एक वेद को सांगोपांग पढ़के जिसका ब्रह्मचर्य खण्डित न हुआ हो वह पुरुष वा स्त्री गृहाश्रम में प्रवेश करे।"

"गुरुणानुमतः स्नात्वा समावृत्तो यथाविधि ।
उद्वहेत द्विजो भार्या सवर्णं लक्षणान्विताम् ।।" मनु. ३. ४.

"गुरु की आज्ञा से स्नान कर गुरुकुल से अनुक्रमपूर्वक आके ब्राह्मण, क्षत्रिय, वैश्य अपने वर्णानुकूल सुन्दर लक्षणयुक्त (सुलक्षणी) कन्या से विवाह करे।"

"असपिण्डा च या मातुरसगोत्रा च या पितुः ।
सा प्रशस्ता द्विजातीनां दारकर्मणि मैथुने ।।" मनु ३. ५.

"जो कन्या माता के कुल की छः पीढ़ियों में न हो और पिता के गोत्र की न हो उस कन्या से विवाह करना उचित है।"

—'सत्यार्थप्रकाश' चतुर्थ समुल्लास

"कन्या का नाम दुहिता है। 'दुहिता दुर्हिता, दूरे हिता' (निरुक्त ३. ४) इसका विवाह दूर देश में होने से हितकारी होता है, निकट करने में नहीं।"

—'सत्यार्थप्रकाश' चतुर्थ समुल्लास

"प्रश्न—विवाह करना माता-पिता के अधीन होना चाहिए वा लड़का-लड़की के अधीन रहे।"

महर्षि उत्तर देते हैं—"लड़का लड़की के आधीन विवाह होना उत्तम है। जो माता-पिता विवाह करना कभी विचारें तो भी लड़का-लड़की की प्रसन्नता के बिना न होना चाहिए क्योंकि एक दूसरे की प्रसन्नता से विवाह होने में विरोध बहुत कम होता है और सन्तान उत्तम होती है। अप्रसन्नता के विवाह में नित्य क्लेश ही रहता है। विवाह में मुख्य प्रयोजन वर और कन्या का है, माता-पिता का नहीं। क्योंकि जो उनमें परस्पर प्रसन्नता रहे तो उन्हीं को सुख और विरोध में उन्हीं को दुःख होता है और—

सन्तुष्टो भार्यया भर्ता भर्त्रा भार्या तथैव च।
यस्मिन्नेव कुले नित्यं कल्याणं तत्र वै ध्रुवम्॥ मनु. ३. ६०

जिस कुल में स्त्री से पुरुष और पुरुष से स्त्री सदा प्रसन्न रहती हैं उसी कुल में आनन्द, लक्ष्मी और कीर्ति निवास करती हैं। और जहाँ विरोध कलह होता है वहां दुःख, दरिद्रता और निन्दा निवास करती हैं। इसलिए जैसी स्वयंवर की रीति आर्यावर्त में परम्परा से चली आती है वही उत्तम है।

जब स्त्री पुरुष विवाह करना चाहें तब विद्या, विनय, शील, रूप, आयु, बल, कुल, शरीर का परिमाणादि यथायोग्य होना चाहिए। जब तक इनका मेल नहीं होता तब तक विवाह में कुछ भी सुख नहीं होता और न बाल्यावस्था में विवाह करने में सुख होता है।"

'सत्यार्थप्रकाश' चतुर्थ समुल्लास

'काममामरणात्तिष्ठेद् गृहे कन्यर्तुमत्यपि।
न चैवैनां प्रयच्छेत्तु गुणहीनाय कर्हिचित्॥ मनु. ९. ८९

"चाहे मरण पर्यन्त कन्या पिता के घर में बिना विवाह के बैठी भी रहे परन्तु गुणहीन असदृश दुष्ट पुरुष के साथ कन्या

का विवाह कभी न करे।"

—'संस्कारविधि' विवाह संस्कार प्रकरण

विवाह की आयु

इस विषय में महर्षि दयानन्द का परामर्श है—

"सोलहवें वर्ष से लेकर चौबीसवें वर्ष तक कन्या और पच्चीसवें वर्ष से लेके अड़तालीस वर्ष तक पुरुष का विवाह समय उत्तम है। इसमें जो सोलह और पच्चीस में विवाह करे तो निकृष्ट, अठारह बीस की स्त्री और तीस, पैंतीस वा चालीस वर्ष के पुरुष का मध्यम, चौबीस वर्ष की स्त्री और अड़तालीस वर्ष के पुरुष का विवाह होना उत्तम है।"

—'सत्यार्थप्रकाश' चतुर्थ समुल्लास

न्यूनतम विवाह की आयु के विषय में महर्षि दयानन्द आयुर्वेदशास्त्र के परम प्रामाणिक आचार्य धन्वन्तरि प्रणीत सुश्रुत का प्रमाण प्रस्तुत करते हुए लिखते हैं—

"ऊनषोडशवर्षायामप्राप्तः पञ्चविंशतिम्।
यद्याधत्ते पुमान् गर्भं कुक्षिस्थः स विपद्यते॥
जातो वा न चिरं जीवेद् जीवेद्वा दुर्बलेन्द्रियः।
तस्मादत्यन्त बालायां गर्भाधानं न कारयेत्॥'

—सुश्रुत शारीरस्थान १०. ४७-४८

"सोलह वर्ष से न्यून वय (आयु) वाली स्त्री में पच्चीस वर्ष से न्यून आयु वाला पुरुष यदि गर्भ का स्थापन करे तो वह कुक्षिस्थ हुआ गर्भ विपत्ति को प्राप्त होता है अर्थात पूर्ण काल तक गर्भाशय में रहकर उत्पन्न नहीं होता।

अथवा उत्पन्न हो तो फिर चिरकाल तक न जीवे, जीवे तो दुर्बलेन्द्रिय हो, इस कारण अति बाल्यावस्था वाली स्त्री में गर्भ स्थापन न करे।"

—'सत्यार्थप्रकाश', चतुर्थ समुल्लास

संस्कारविधि में वेदारम्भ संस्कार प्रकरण में महर्षि दयानन्द लिखते हैं—

"जितना सामर्थ्य पच्चीसवें वर्ष में पुरुष के शरीर में होता है उतना सामर्थ्य स्त्री के शरीर में सोलहवें वर्ष में हो जाता है। यदि बहुत शीघ्र विवाह करना चाहें तो पच्चीस वर्ष का पुरुष और सोलह वर्ष की स्त्री दोनों तुल्य सामर्थ्य वाले होते हैं इस कारण इस अवस्था में जो विवाह करना वह अधम विवाह है। और जो सत्रहवें वर्ष की स्त्री और तीस वर्ष का पुरुष, अठारह वर्ष की स्त्री और छत्तीस वर्ष का पुरुष, उन्नीस वर्ष की स्त्री अड़तीस वर्ष का पुरुष विवाह करे तो इसको मध्यम समय जानो। और जो बीस, इक्कीस, बाइस वा चौबीस वर्ष की स्त्री चालीस, बयालीस छयालीस और अड़तालीस वर्ष का पुरुष होकर विवाह करें वह सर्वोत्तम है।"

—'संस्कारविधि'

गृहस्थ व्यवहार तथा कर्त्तव्य

महर्षि दयानन्द ने गृहस्थ आश्रम में स्त्री-पुरुषों के परस्पर व्यवहार तथा गृहस्थ धर्म के विषय में सत्यार्थप्रकाश और संस्कारविधि में बहुत विस्तृत विवेचन किया है। मैं उसमें से कुछ अंश यहां प्रस्तुत करता हूँ।

"सन्तुष्टो भार्यया भर्त्ता भर्त्रा भार्या तथैव च।
यस्मिन्नेव कुले नित्यं कल्याणं तत्र वै ध्रुवम्।"

—मनु० ३-६०

"हे गृहस्थो! जिस कुल में भार्या से प्रसन्न पति और पति से भार्या सदा प्रसन्न रहती है उसी कुल में निश्चित कल्याण रहता है। और दोनों परस्पर अप्रसन्न रहें तो कुल में नित्य कलह वास करता है।

"यदि स्त्री हि न रोचेत पुमांसं न प्रमोदयेत् ।
अप्रमोदात् पुनः पुंसः प्रजनं न प्रवर्तते ।।"

—मनु० ३. ६१

"यदि स्त्री पुरुष पर रुचि न रक्खे वा पुरुष को प्रहर्षित न करे तो अप्रसन्नता से पुरुष के शरीर में हर्ष कभी न होके सन्तान नहीं होते, और यदि होते हैं तो दुष्ट होते हैं।"

स्त्रियां तु रोचमानायां सर्वं तद् रोचते कुलम् ।
तस्यान्त्वरोचमानायां सर्वमेव न रोचते ।।

—मनु० ३. ६२

जो पुरुष स्त्री को प्रसन्न नहीं करता तो उस स्त्री के अप्रसन्न रहने से सब कुल भर अप्रसन्न शोकातुर रहता है। और जब पुरुष से स्त्री प्रसन्न रहती है तब सब कुल आनन्दरूप दीखता है।"

"यत्र नार्यस्तु पूज्यन्ते रमन्ते तत्र देवताः ।
यत्रैतास्तु न पूज्यन्ते सर्वास्तत्राफलाः क्रिया ।।"

—मनु० ३. ५६

"जिस कुल में नारियों की पूजा अर्थात् सत्कार होता है उस कुल में दिव्य गुण, दिव्य भोग और उत्तम सन्तान होते हैं और जिस कुल में स्त्रियों की पूजा नहीं होती वहां जानो उनकी सब क्रिया निष्फल है।"

"सदा प्रहृष्टया भाव्यं गृहकार्येषु दक्षया ।
सुसंस्कृतोपस्करया व्यये चामुक्तहस्तया ।।"

—मनु० ५. १५०

"स्त्री को योग्य है कि सदा आनन्दित होके चतुरता से गृह कार्यों में वर्तमान रहे तथा अन्नादि के उत्तम संस्कार, पात्र, वस्त्र, गृह आदि के संस्कार और घर के भोजनादि में जितना

नित्य धन आदि लगे उसके यथायोग्य करने में सदा प्रसन्न रहे।"

—'संस्कारविधि' गृहस्थाश्रम प्रकरणः

प्रजनार्थं महाभागाः पूजार्हाः गृहदीप्तयः।
स्त्रियः श्रियश्च गेहेषु न विशेषोऽस्ति कश्चन ।:
उत्पादनमपत्यस्य जातस्य परिपालनम्।
प्रत्यहं लोकयात्रायाः प्रत्यक्षं स्त्रीनिबन्धनम् ॥
अपत्यं धर्मकर्माणि सुश्रूषा रतिरुत्तमा।
दाराधीनस्तथा स्वर्गः पितॄणामात्मनस्तथा ॥

—मनु० ६. २६-२८

"हे पुरुषो! सन्तानोत्पत्ति के लिए महाभाग्योदय करने वाली, पूजा के योग्य, गृहाश्रम को प्रकाश करती, सन्तानोत्पत्ति करने हारी, घरों में स्त्रियां हैं वे श्री अर्थात् लक्ष्मीस्वरूप होती हैं क्योंकि लक्ष्मी, शोभा, धन, और स्त्रियों में कोई भेद नहीं है।"

"हे पुरुषो! अपत्यों की उत्पत्ति, उत्पन्न का पालन करने आदि लोकव्यहार को नित्य प्रति जो कि गृहाश्रम का कार्य होता है उसका निबन्ध (प्रबन्ध) करने वाली प्रत्यक्ष स्त्री है।"

"सन्तानोत्पत्ति, धर्म कार्य, उत्तम सेवा, रति तथा अपना और पितरों का जितना सुख है वह सब स्त्री ही के आधीन होता है।"

—'संस्कारविधि' गृहस्थाश्रम प्रकरण

यथा वायुं समाश्रित्य वर्तन्ते सर्वजन्तव।
तथा गृहस्थामाश्रित्य वर्तन्ते सर्व आश्रमाः ॥

—मनु० ६. ७७

यस्मात् त्रयोऽप्याश्रमिणो दानेनात्मेन चान्वहम्।
गृहस्थेनैव धार्यन्ते तस्माज्जेष्ठाश्रमो गृही ॥

—मनु० ६. ७८

"जैसे वायु के आश्रय से सब जीवों का वर्तमान सिद्ध होता है वैसे ही गृहस्थ के आश्रय से ब्रह्मचारी, वानप्रस्थ और संन्यासी अर्थात सब आश्रमों का निर्वाह (गृहस्थ के आश्रय से) होता है।"

जिससे ब्रह्मचारी, वानप्रस्थ और संन्यासी इन तीन आश्रमियों को अन्न वस्त्रादि दान से नित्य प्रति गृहस्थ धारण पोषण करता है। इसलिए व्यवहार में गृहाश्रम सबसे बड़ा है।

— 'संस्कारविधि' गृहस्थाश्रम प्रकरण

गृहस्थ की दिनचर्या

गृहस्थ की विस्तृत दिनचर्या का वर्णन महर्षि दयानन्द ने गृहस्थ आश्रम प्रकरण में दिया है। उसका संक्षिप्त विवरण इस प्रकार है—

१. "सदा स्त्री पुरुष (रात्रि) दस बजे शयन और रात्रि के पहले प्रहर वा चार बजे उठके प्रथम हृदय में परमेश्वर का चिन्तन करके धर्म अर्थ का विचार किया करें। धर्म अर्थ के अनुष्ठान वा उद्योग करने में यदि कभी पीड़ा भी हो तथापि धर्मयुक्त पुरुषार्थ को कभी न छोड़ें, किन्तु सदा शरीर और आत्मा की रक्षा के लिए युक्त आहार, विहार, औषध सेवन, सुपथ्य आदि से निरन्तर उद्योग करके व्यावहारिक और पारमार्थिक कर्त्तव्य कर्म की सिद्धि के लिए ईश्वर की स्तुति, प्रार्थना उपासना भी किया करें जिससे परमेश्वर की कृपादृष्टि और सहाय से महाकठिन कार्य भी सुगमता से सिद्ध हो सके।"

२. "तत्पश्चात् शौच, दन्तधावन, मुखप्रक्षालन करके स्नान करें। तत्पश्चात् एक कोश वा डेढ़ कोश एकान्त जंगल में जाके योगाभ्यास की रीति से परमेश्वर की उपासना कर सूर्योदय पर्यन्त अथवा घड़ी-आध-घड़ी दिन चढ़े तक घर में आकर सन्ध्योपासनादि नित्यकर्म यथाविधि उचित समय में किया

करें। प्रथम संध्योपासना का आरम्भ करें।"

३. "जैसे सायं प्रातः दोनों सन्धि वेलाओं में संध्योपासन करें इसी प्रकार दोनों स्त्री पुरुष अग्निहोत्र भी दोनों समय नित्य किया करें।"

४. "अग्निहोत्र विधि पूर्ण करके तीसरा पितृ यज्ञ करें अर्थात् जीते हुए माता पिता आदि की यथावत् सेवा करनी पितृयज्ञ कहाता है।"

पञ्चमहायज्ञविधि में पितृयज्ञ का वर्णन करते हुए महर्षि लिखते हैं—"पितृयज्ञ के दो भेद होते हैं--एक तर्पण दूसरा श्राद्ध। 'तर्पण' उसे कहते हैं जिस कर्म से विद्वान् रूप देव ऋषि और पितरों को सुखयुक्त करते हैं। उसी प्रकार उन लोगों का जो श्रद्धा से सेवा करना है सो 'श्राद्ध' कहाता है।

यह तर्पण आदि कर्म विद्यमान अर्थात जो प्रत्यक्ष हैं उन्हीं में घटता है। मृतकों में नहीं, क्योंकि उनकी प्राप्ति और उनका प्रत्यक्ष होना दुर्लभ है। इसी से उनकी सेवा भी नहीं हो सकती किन्तु जो उनका नाम लेकर देवे वह पदार्थ उनको कभी नहीं मिल सकता। इसीलिए मृतकों को सुख पहुँचाना सर्वथा असम्भव है। इसी कारण विद्यमानों के अभिप्राय से तर्पण और श्राद्ध वेद में कहा है। सेवा करने योग्य और सेवक अर्थात् सेवा करने वाले इनके प्रत्यक्ष होने पर यह सब काम हो सकता है।"

—'पंचमहायज्ञविधि' पितृयज्ञ प्रकरण

५. बलिवैश्वदेवयज्ञ—इस यज्ञ का अभिप्राय पशु, पक्षी, असमर्थ रोगियों और श्वपचों (निम्नवर्ग के पुरुषों) की अन्नादि द्वारा सेवा करना है।

संस्कारविधि तथा पंचमहायज्ञविधि दोनों में इस यज्ञ विधि के अन्त में महर्षि दयानन्द लिखते हैं :—

शुनांच पतितानां च श्वपचां पापरोगिणाम् ।
वायसानां कृमीणां च शनकैर्निर्वपेद्भुवि ॥

कुत्तों, कंगालों, कुष्ठी आदि रोगियों, काक आदि पक्षियों और चींटी आदि कृमियों के लिए अलग-अलग छः भाग बाँट के देना और उनकी प्रसन्नता सदा करना।

संस्कारविधि में भी इन्हीं शब्दों में विधान है।

६. अतिथि यज्ञ—पाँचवा (यज्ञ) जो परोपकारी, धार्मिक, सत्योपदेशक पक्षपात रहित, शान्त, सर्वहितकारक विद्वानों की अन्नादि से सेवा, उनसे प्रश्नोत्तर आदि करके विद्या प्राप्त होना अतिथि यज्ञ कहाता है। उनको नित्य किया करें।

इस प्रकार पंच महायज्ञों को स्त्री-पुरुष प्रतिदिन करते रहें।

पंच महायज्ञों की विस्तृत विधि पाठक महर्षि दयानन्द लिखित "पंचमहायज्ञविधि" पुस्तक में पढ़ सकते हैं।

गृहस्थाश्रम में ब्राह्मण, क्षत्रिय, वैश्य और शूद्र के विशेष धर्मों, कर्मों और जीवन निर्वाह के साधनों का वर्णन वर्ण व्यस्था प्रकरण में किया जा चुका है।

वानप्रस्थ

"वानप्रस्थ उसको कहते हैं जो विवाह से सन्तानोत्पत्ति करके पूर्ण ब्रह्मचर्य से पुत्र भी विवाह करे और पुत्र को भी एक सन्तान हो जाये अर्थात् जब पुत्र का पुत्र हो जावे तब पुरुष वानप्रस्थाश्रम में निम्नलिखित बातें करे—

एवं गृहाश्रमे स्थित्वा विधिवत् स्नातको द्विजः ।
वने वसेत्तु नियतो यथावद् विजितेन्द्रियः ॥ मनु. ६. १

गृहस्थस्तु यदा पश्येद् बलीपलितमात्मनः ।
अपत्यस्यैव चापत्यं तदारण्य समाश्रयेत ॥ मनु. ६·२

संत्यज्य ग्राम्यमाहारं सर्वं चैव परिच्छदम् ।

पुत्रेषु भार्यां निक्षिप्य वनं गच्छेत् सहैव वा ।। मनु. ६. ३

पूर्वोक्त प्रकार विधिपूर्वक ब्रह्मचर्य से पूर्ण विद्या पढ़ के समावर्तन के समय स्नान विधि करने हारा द्विज ब्राह्मण, क्षत्रिय और वैश्य जितेन्द्रिय जितात्मा होके यथावत् गृहाश्रम करके वन में बसे ।

गृहस्थ लोग जब अपने देह का चमरा ढीला और श्वेत केश होते हुए देखें और पुत्र का भी पुत्र हो जाय तब बन का आश्रय लेवें ।

जब वानप्रस्थ की दीक्षा लेवें तब ग्रामों से उत्पन्न हुए पदार्थों का आहार और घर के सब पदार्थों को छोड़ के पुत्रों में अपनी पत्नी को छोड़ अथवा संग में लेके वन को जावें ।

--'संस्कारविधि' वानप्रस्थाश्रम प्रकरण

अग्निहोत्रं समादाय गृह्यं चाग्निपरिच्छदम् ।

ग्रामादरण्यं निःसृत्य निवसेन्नियतेन्द्रियः ।। मनु ६. ४

जब गृहस्थ वानप्रस्थ होने की इच्छा करे तब अग्निहोत्र को सामग्री सहित ले के ग्राम से निकल जंगल में जितेन्द्रिय होके निवास करे ।

स्वाध्याये नित्ययुक्तः स्याद् दान्तो मैत्रः समाहितः ।

दाता नित्यमनादाता सर्वभूतानुकम्पकः ।। मनु. ६. ५

तापसेष्वेव विप्रेषु यान्त्रिकं भैक्ष्यमाहरेत ।

गृहमेधिषु चान्येषु द्विजेषु वनवासिषु ।। मनु. ६. ६

एताश्चान्याश्च सेवेत दीक्षा विप्रो वने वसन ।

विविधाश्चोपनिषदीरात्मसंशुद्धये श्रुतीः ।। मनु. ६. ७

"वहाँ जंगल में वेदादि शास्त्रों को पढ़ने-पढ़ाने में नित्य युक्त मन और इन्द्रियों को जीतकर यदि स्व स्त्री के समीप हो तथापि उससे सेवा के सिवाय विषय सेवन अर्थात् प्रसंग कभी

न करे। सब से मित्रभाव, सावधान, नित्य देनेहारा और किसी से कुछ भी न लेवे। सब प्राणीमात्र पर अनुकम्पा कृपा रखनेहारा होवे।

जो जंगल में पढ़ाने और योगाभ्यास करने हारे तपस्वी धर्मात्मा विद्वान् लोग रहते हों जो कि गृहस्थ वा वानपस्थी बन वासी हों उनके घरों में से भिक्षा ग्रहण करें।

इस प्रकार वन में बसता हुआ इन और दीक्षाओं का सेवन करे। और आत्मा और परमात्मा के ज्ञान के लिए नाना प्रकार की उपनिषद् अर्थात् ज्ञान और उपासना विधायक श्रुतियों के अर्थों का विचार किया करे।

—'संस्कारविधि' वानप्रस्थाश्रम प्रकरण

तपः श्रद्धे ये ह्युपवसन्त्यरण्ये शान्ताः विद्वांसो भैक्ष्यचर्यां चरन्तः।
सूर्यद्वारेण ते विरजाः प्रयान्ति यत्रामृतः स पुरुषो ह्यव्ययात्मा॥

मुण्डकोपनिषत्. १. २. ११

हे मनुष्यो! (ये) जो (विद्वांसः) विद्वान् लोग (अरण्ये) जंगल में (शान्ताः) शान्ति के साथ (तपः श्रद्धे) योगाभ्यास और परमात्मा में प्रीति करके (उपवसन्ति) वनवासियों के समीप बसते हैं और (भैक्ष्यचर्यां) भिक्षाचरण को (चरन्तः) करते हुए जंगल में निवास करते हैं (ते) वे (हि) ही (विरजाः) निर्दोष, निष्पाप, निर्मल होके (सूर्यद्वारेण) प्राण के द्वारा (यत्र) जहाँ (सः) सो (अमृतः) मरण जन्म से पृथक् (अव्ययात्मा) नाशरहित (पुरुषः) पूर्ण परमात्मा विराजमान है वहीं (प्रयान्ति) जाते हैं। इसलिए वानप्रस्थ करना अति उत्तम है।

— 'संस्कारविधि' वानप्रस्थ प्रकरण

अभ्यादधामि समिधमग्ने तपव्रते त्वयि।
व्रतं च श्रद्धां चोपैमीन्धे त्वा दीक्षितोऽहम्॥ यजुर्वेद २०. २३

वानप्रस्थ को उचित है कि 'मैं अग्नि में होम कर दीक्षित होकर व्रत, सत्याचरण और श्रद्धा को प्राप्त होऊँ' ऐसी इच्छा करके वानप्रस्थ हो। नाना प्रकार की तपश्चर्या, सत्संग, योगाभ्यास, सुविचार से ज्ञान और पवित्रता प्राप्त करे। पश्चात् संन्यास की इच्छा हो तब स्त्री को पुत्रों के पास भेज देवे, फिर संन्यास ग्रहण करे।

—'सत्यार्थप्रकाश' पंचम समुल्लास

वानप्रस्थ आश्रम की विधि और कर्त्तव्यों के विषय में पाठक विशेष जानकारी के लिए सत्यार्थप्रकाश के पंचम समुल्लास तथा संस्कारविधि और ऋग्वेदादिभाष्यभूमिका के इन प्रकरणों को पढ़े।

संन्यास आश्रम

"संन्यास उसको कहते हैं जो मोहादि आवरण, पक्षपात छोड़ के विरक्त होकर सब पृथ्वी में परोपकारार्थ विचरे" अर्थात्

"सम्यङ् न्यस्यन्त्यधर्माचरणानि येन, वा सम्यङ् नित्यं सत्कर्मस्वास्त उपविशति स्थिरीभवति येन स संन्यासः, संन्यासो विद्यते यस्य स संन्यासी।"

—'संस्कारविधि' संन्यास संस्कार प्रकरण

अर्थ—जिसके द्वारा सब अधर्म आचरणों का अच्छी तरह परित्याग करे अथवा जिसके द्वारा नित्य सत्कर्मों में अच्छी तरह स्थिर होकर रहे वह संन्यास कहलाता है। संन्यास आश्रम को स्वीकार करने वाला व्यक्ति संन्यासी कहलाता है।

साधारण नियम तो यही है कि "ब्रह्मचर्य पूरा करके गृहस्थ, गृहस्थ होके वनस्थ, वनस्थ होके संन्यासी होवे यह क्रम संन्यास अर्थात् अनुक्रम से आश्रमों का अनुष्ठान करता-करता वृद्धावस्था

में जो संन्यास लेना है उसी को क्रम संन्यास कहते हैं।"

—'संस्कारविधि' संन्यास संस्कार प्रकरण

वनेषु च विहृत्यैवं तृतीय भागमायुषः।
चतुर्थमायुषो भागं त्यक्त्वा संगान् परिव्रजेत्॥

—यजु: ६. ३३

"इस प्रकार वन में आयु का तीसरा भाग अर्थात् पचासवें वर्ष से पचहत्तरवें वर्ष पर्यन्त वानप्रस्थ होके आयु के चौथे भाग में संगों को छोड़ के परिव्राट् अर्थात् संन्यासी हो जावे।"

—'सत्यार्थप्रकाश' पचम समुल्लास

विकल्प

यदहरेव विरजेत्तदहरेव प्रव्रजेद् वनाद् वा गृहाद्वा ब्रह्मचर्यादेव वा।

— जाबाल ब्राह्मण

जिस दिन वैराग्य प्राप्त हो उसी दिन घर वा वन से संन्यास ग्रहण कर लेवे। पहले संन्यास का पक्ष क्रम कहा और इसमें विकल्प अर्थात् वानप्रस्थ न करे गृहस्थाश्रम से ही संन्यास ग्रहण करे और तृतीय पक्ष यह है कि जो पूर्ण विद्वान्, जितेन्द्रिय, विषय भोग की कामना रहित परोपकार करने की इच्छा से युक्त पुरुष हो ब्रह्मचर्याश्रम से ही संन्यास लेवे।

—'सत्यार्थप्रकाश' पंचम समुल्लास

संन्यास धर्म

"पुत्रैषणायाश्च वित्तैषणायाश्च लोकैषणायाश्च व्युत्थायाथ भिक्षाचर्यं चरन्ति।"

—शतपथ कां. १४ प्र १२ ब्रा. २. कं. १

"लोक में प्रतिष्ठा वा लाभ, धन से भोग वा मान्य, पुत्रादि के मोह से अलग होके संन्यासी लोग भिक्षुक होकर रात-दिन मोक्ष के साधन में रत रहते हैं।"

—'सत्यार्थप्रकाश' पंचम समुल्लास

"दृष्टिपूतं न्यसेत्पादं वस्त्रपूतं जलं पिबेत्।
सत्यपूतां वदेद्वाचं मनःपूतं समाचरेत्॥"

—मनु० ६.४६

"जब संन्यासी मार्ग में चले तब इधर-उधर न देखकर नीचे पृथ्वी पर दृष्टि रखकर चले। सदा वस्त्र से छानकर जल पिये। निरन्तर सत्य ही बोले। सर्वदा मन से विचार कर सत्य का ग्रहण करे और असत्य को छोड़ देवे।"

"क्रुद्ध्यन्तं न प्रतिक्रुद्ध्येद् आक्रुष्टः कुशलं वदेत्।
सप्तद्वारावकीर्णां च न वाचमनृतां वदेत्॥"

मनु० ६.४८

"जब कहीं उपदेश वा संवादादि में कोई संन्यासी पर क्रोध करे अथवा निन्दा करे तो संन्यासी को उचित है कि उस पर आप क्रोध न करे किन्तु सदा उसके कल्याणार्थ उपदेश ही करे। एक मुख के, दो नासिका के, दो आँख के और दो कान के छिद्रों (सप्तद्वारावकीर्णा) में बिखरी हुई वाणी से किसी कारण से मिथ्या कभी न बोले।"

अध्यात्मरतिरासीनो निरपेक्षो निरामिषः।
आत्मनैव सहायेन सुखार्थी विचरेदिह॥

मनु० ६.४९

"अपने आत्मा और परमात्मा में स्थिर, अपेक्षारहित, मद्यमांसादि वर्जित होकर आत्मा ही के सहाय से सुखार्थी होकर इस संसार में धर्म और विद्या के बढ़ाने में उपदेश के लिए सदा विचरता रहे।

"क्लृप्तकेशनखश्मश्रुः पात्री दण्डी कुसुम्भवान्।
विचरेन्नियतो नित्यं सर्वभूतान्यपीडयन्॥"

मनु० ६.५२

"केश-नख-दाढ़ी-मूंछ को छेदन करवावे, सुन्दर पात्र दण्ड

और कुसुम्भ आदि से रंगे हुए वस्त्रों को ग्रहण करके निश्चितात्मा सब भूतों को पीड़ा न देकर सर्वत्र विचरे।"

"इन्द्रियाणां निरोधेन रागद्वेषक्षयेण च।
अहिंसया च भूतानाममृतत्वाय कल्पते॥"

मनु. ६.६०

"इन्द्रियों को अधर्माचरण से रोक, राग-द्वेष को छोड़ सब प्राणियों से निर्वैर वर्तकर मोक्ष के लिए सामर्थ्य बढ़ाया करे।"

—'सत्यार्थप्रकाश' पंचम समुल्लास

अनग्निरनिकेतः स्याद् ग्राममन्नार्थमाश्रयेत्।

मनु ६.४४

नाभिनन्देत मरणं नाभिनन्देत जीवितम्।
कालमेव प्रतीक्षत निर्देशं भृतको यथा॥

—मनु ६.४५

संन्यासी आह्वादि अग्नियों से रहित और वहीं अपना स्वाभिमत घर भी न बांधे, और अन्नवस्त्रादि के लिए ग्राम का आश्रय लेवे। न तो अपने जीवन में आनन्द और न मृत्यु में दुःख माने किन्तु जैसे क्षुद्र भृत्य अपने स्वामी की आज्ञा की बाट देखता रहता है वैसे ही काल और मृत्यु की प्रतीक्षा करता रहे।"

—'संस्कारविधि' संन्यास संस्कार प्रकरण

संन्यास की आवश्यकता

"जैसे शरीर में शिर की आवश्यकता वैसे ही आश्रमों में संन्यास आश्रम की आवश्यकता है क्योंकि इसके बिना विद्या धर्म कभी नहीं बढ़ सकता और दूसरे आश्रमों को विद्या ग्रहण, गृह कृत्य और तपश्चर्यादि का सम्बन्ध होने से अवकाश बहुत कम मिलता है। पक्षपात छोड़ कर वर्तना दूसरे आश्रमों को दुष्कर है। जैसा संन्यासी सर्वतोमुक्त होकर जगत का उपकार करता है वैसा अन्य आश्रमी नहीं कर सकता क्योंकि संन्यासी

को सत्य विद्या से पदार्थों के विज्ञान की उन्नति का जितना अवकाश मिलता है उतना अन्य आश्रमी को नहीं मिल सकता।"

—'सत्यार्थप्रकाश' पंचम समुल्लास

संन्यास का अधिकार

"संन्यास ग्रहण करने का ब्राह्मण ही को अधिकार है क्योंकि जो सब वर्णों में पूर्ण विद्वान्, धार्मिक, परोपकार प्रिय मनुष्य है उसी का ब्राह्मण नाम है। बिना पूर्ण विद्या के धर्म, परमेश्वर की निष्ठा और वैराग्य के संन्यास ग्रहण करने में संसार का विशेष उपकार नहीं हो सकता।"

—'सत्यार्थप्रकाश' पंचम समुल्लास

इस प्रकार ब्रह्मचर्य में धर्म का ज्ञान और धर्म के आचरण की शिक्षा, गृहस्थ में धर्मपूर्वक अर्थ और काम की साधना, वानप्रस्थ में अर्थ और काम की कामना छोड़कर तपस्यापूर्वक जीवन निर्माण करते हुए मोक्ष साधना, संन्यास में मोक्ष साधन के साथ संसार में सर्वत्र विचरते हुए अज्ञानान्धकार का नाश करते हुए आर्तजनों का उद्धार और जगत का उपकार करना चाहिये।

३. राज्य-व्यवस्था

"त्रीणि राजाना विदथे पुरूणि परिविश्वानि भूषथः सदांसि।"

—ऋग्वेद मं ३ सू. ३८ मं. ६

"ईश्वर उपदेश करता है कि (राजाना) राजा और प्रजा के पुरुष मिलकर (विदथे) सुख प्राप्ति और विज्ञान वृद्धि कारक राजा प्रजा के सम्बन्ध रूप व्यवहार में (त्रीणि सदांसि) तीन सभा अर्थात् विद्यार्य सभा, धर्मार्य सभा, राजार्य सभा नियत करके (पुरूणि) बहुत प्रकार के (विश्वानि) समग्र प्रजा-सम्बन्धी मनुष्य आदि प्राणियों को (परिभूषथः) सब ओर से

विद्या, स्वातन्त्र्य, धर्म, सुशिक्षा और धनादि से अलंकृत करें।"

—'सत्यार्थप्रकाश' षष्ठ समुल्लास

"इसका अभिप्राय यह है कि एक को स्वतन्त्र राज्य का अधिकार न देना चाहिये। किन्तु राजा, जो सभापति, तदाधीन सभा, सभाधीन राजा, **राजा और सभा प्रजा के आधीन** और प्रजा राजसभा के आधीन रहे। यदि ऐसा न करोगे तो—

राष्ट्रमेव विश्याहन्ति, तस्माद् राष्ट्री विशं घातुकः। विशमेव राष्ट्रयाद्यां करोति। तस्माद् राष्ट्री विशमत्ति न पुष्टं पशुं मन्यते इति।

—शतपथ ब्राह्मण कां. १३ प्र. २ ब्रा. ३ कं. ७, ८

जो प्रजा से स्वतन्त्र स्वाधीन राज वर्ग रहे तो (राष्ट्रमेव विश्याहन्ति) राज्य में प्रवेश करके प्रजा का नाश किया करे। जिस लिए अकेला राजा स्वाधीन वा उन्मत्त होके (राष्ट्री विशं घातुकः) प्रजा का नाशक होता है अर्थात् (विशमेव राष्ट्रायाद्यां करोति) वह राजा प्रजा को खाए जाता (अत्यन्त पीडित करता) है। इसलिए एक को राज्य में स्वाधीन न करना चाहिये। जैसे सिंह वा मांसाहारी हृष्ट-पुष्ट पशु को मारकर खा लेते हैं वैसे (राष्ट्री विशमत्ति) स्वतन्त्र राजा प्रजा का नाश करता है अर्थात् किसी को अपने से अधिक न होने देता, श्रीमान् को लूट खूँट अन्याय से दण्ड लेके अपना प्रयोजन पूरा करेगा।"

—'सत्यार्थप्रकाश', षष्ठ समुल्लास

इसी मन्त्र (त्रीणि राजाना) की व्याख्या करते हुए महर्षि दयानन्द ऋग्वेदादिभाष्यभूमिका में लिखते हैं—

"इदमत्र बोध्यम्—एका राजार्यसभा, तत्र विशेषतो राजकर्माण्येव भवेयुः। द्वितीया आर्यविद्यासभा, तत्र विशेषतो विद्याप्रचारोन्नती एव कार्ये भवतः। तृतीया आर्यधर्मसभा, तत्र विशेषतो धर्मोन्नतिरधर्महानिश्चोपदेशेन कर्त्तव्या। परन्त्वेतास्तिस्रः सभाः सामान्ये कार्ये

मिलित्वैव सर्वानुतमान् व्यवहारान् प्रजासु प्रचारयेयु: । यत्रैतासु सभासु धर्मात्मभिर्विद्वद्भि: सारासारविचारेण कर्त्तव्याकर्त्तव्यस्य प्रचारो निरोधश्च क्रियते तत्र सर्वा: प्रजा: सदैव सुखयुक्ता: भवन्ति । यत्रैको मनुष्यो राजा भवति तत्र पीडिताश्चेति निश्चय: ।"

—ऋग्वेदादिभाष्यभूमिका, राजप्रजाधर्म विषय

"इन तीन सभाओं के विषय में इतना समझ लेना चाहिये कि राजार्य सभा का विशेष कार्य राज्य सम्बन्धी सभी प्रकार के प्रबन्धों को देखना है। दूसरी आर्य विद्या सभा का कर्त्तव्य विशेष तौर पर विद्या का प्रचार तथा विद्या की उन्नति अर्थात् सभी प्रकार के नवीन अन्वेषण और अनुसन्धान को प्रोत्साहन देना होना चाहिये। तीसरी आर्य धर्म सभा इसमें विशेषत: धर्म की उन्नति और अधर्म की हानि को उपदेश के द्वारा प्रोत्साहन मिलना चाहिये। प्रजा में सत्य तथा अहिंसामूलक व्यवहार बना रहे। सामाजिक सद्भावना बनी रहे। मिथ्या व्यवहार रिश्वतखोरी, चोरबाज़ारी, व्यभिचार, चोरी आदि प्रजा का उत्पीडन करने करने वाले अधर्मयुक्त व्यवहारों का राज्य में समावेश न हो, यह सब आर्य धर्म सभा का कार्य है।

इन तीनों सभाओं में परस्पर समन्वय बना रहे। ये तीनों सभाएँ सामान्य कार्यों में मिलकर सब प्रकार उत्तम व्यवहारों का प्रजा में प्रचार करें। शासकवर्ग प्रजा के साथ दुर्व्यवहार न करे। शासकवर्ग का व्यवहार अपने सम्पर्क में आने वाले सभी मामलों में प्रजा के साथ सहानुभूतिपूर्ण और सहायतात्मक होना चाहिये। प्रजा भी शासकवर्ग से अनुचित स्वार्थ सम्पन्न करने की कामना न करे। यह सब तीनों सभाओं को देखना चाहिये। इस प्रकार का वातावरण बनाना चाहिये।

जिस राष्ट्र में इन सभाओं में धर्मात्मा (सत्यपरायण) विद्वान् (सभी प्रकार की परिस्थितियों के समझनेवाले) व्यक्ति

हों और वे सार असार का विचार करते हुए कर्त्तव्य का प्रचार और अकर्त्तव्य का निरोध करते हैं वहां सब प्रजा सुखी रहती है। जहां एक मनुष्य राजा होता है वहां प्रजा पीड़ित और दुःखी रहती है।"

(भावानुवाद)

इसी भावना को महर्षि पुनः सत्यार्थप्रकाश में स्पष्ट करते हुए प्रदर्शित करते हैं—

"महाविद्वानों को विद्यासभाधिकारी, धार्मिक विद्वानों को धर्मसभाधिकारी, प्रशंसनीय धार्मिक पुरुषों को राजसभा के सभासद और जो उन सबों में सर्वोत्तम गुण कर्म स्वभाव युक्त महान् पुरुष हो उसको राजसभा का पतिरूप (राजा) मान के सब प्रकार से उन्नति करें।"

"तीनों सभाओं की सम्मति से राजनीति से उत्तम नियम और नियमों के आधीन सब लोग वर्तें। सबके हितकारी कामों में सम्मति करें।"

"सर्वहित करने के लिए परतन्त्र और धर्मयुक्त कामों में अर्थात् जो-जो निज के काम हैं उनमें स्वतन्त्र रहें।"

—'सत्यार्थप्रकाश', षष्ठ समुल्लास

महर्षि के ऊपर के लेखों से यह स्पष्ट हो जाता है कि महर्षि जनतन्त्र शासन पद्धति के पूर्ण पक्षपाती थे। उनका विश्वास था कि यही शासन पद्धति वेदानुकूल है। इसी में प्रजा का हित-निहित है। जनतन्त्र शासन पद्धति में वे तीनों सभाओं के निर्माण में सुयोग्य विद्वान्, आचारवान् तथा जनहित में ही अपना कल्याण समझने वाले व्यक्तियों का समावेश चाहते थे।

प्राचीन वैदिक शासन पद्धति में शासन तथा राष्ट्र रक्षा का उत्तरदायित्व क्षत्रिय वर्ग पर रहा करता था। आजकल भी शासन पद्धति में चाहे कितने ही अधिकारी पदों और उपपदों

का निर्माण किया गया हो पर सीधा जन शासन पुलिस के अधिकार में है और राष्ट्र-रक्षा का भार सेना के अधिकार में है। वैदिक शासन सूत्र में ये दोनों ही सेना के अन्तर्गत आ जाते थे। ये प्रजा की रक्षा करने वाले अधिकारी (पुलिस) और राष्ट्र की रक्षा करने वाले सेना और सेनापति क्षत्रिय ही होते थे। क्षत्रिय शब्द का अर्थ ही यह है कि जो क्षत अर्थात् आपदाओं से प्रजा और राष्ट्र की रक्षा करे।

इस क्षत्रिय शासन का अनुशासन ब्राह्मणों के हाथ में था जिससे क्षत्रिय वर्ग अपने वीरोचित स्वभाव का उपयोग प्रजा-पीडन में न करें अपितु प्रजा के संरक्षण में करें। प्रजा को पीड़ित करने वाले अपराधियों को नियन्त्रण में रखने में उनकी वीरता का उपयोग हो। अथर्ववेद में विधान है—

"तं सभा च समितिश्च सेना च।"

—अर्थव. का १५ अनु २. सू. ९ मं. २

इस राज शासन का तीनों सभाएँ, प्रत्येक विभाग के लिए व्यवस्था समितियां और सेना मिलकर पालन करें।

जिस राष्ट्र में इन सभाओं, समितियों और सेना में परस्पर सहयोग बना रहेगा वहां प्रजा सुखी रहेगी।

यजुर्वेद में इसी भाव को सिद्धान्त रूप में इस प्रकार स्पष्ट किया है—

यत्र ब्रह्म च क्षत्रं च सम्यञ्चौ चरतः सह।
तं लोकं पुण्यं प्रज्ञेशं यत्र देवाः सहाग्निना॥

—यजुः अ. २० म. २५

(यत्र) जिस राष्ट्र में (ब्रह्म च क्षत्रं च) ब्रह्मशक्ति और क्षत्र शक्ति (सह) एक साथ मिलकर (सम्यञ्चौ चरतः) सहयोग के साथ कार्य करती हैं अथवा (देवाः अग्निना सह) देव (ब्राह्मण) अग्नि (क्षत्रियों) के साथ मिलकर शासन सूत्र का

सञ्चालन करते हैं (तं लोकं) उस राष्ट्र को (प्रज्ञेशं) विवेक के साथ चलने वाले शासन से सम्पन्न तथा (पुण्यं) कल्याणमय राष्ट्र समझना चाहिये।

महर्षि के लेखों और उनके द्वारा उद्धृत वेद मन्त्रों के आधार पर वैदिक राज्य व्यवस्था के विषय में निम्नलिखित मौलिक सिद्धान्त बनते हैं—

१. किसी राष्ट्र का एक मनुष्य स्वतन्त्र राजा न होना चाहिये। जहां एक मनुष्य स्वतन्त्र राजा होगा वहां प्रजा दुःखी और पीड़ित रहेगी।

२. राष्ट्र के विधान, शासन प्रबन्ध तथा कल्याण कार्य का प्रजा द्वारा चुने हुए आचारवान्, विद्वान्, राजनीति शिक्षा और प्रबन्ध कार्यों में दक्ष पुरुषों द्वारा सम्पादन किया जाना चाहिये।

३. इन सभाओं के सदस्यों द्वारा चुना हुआ सर्वोत्कृष्ट व्यक्ति जिसके प्रति सभी सदस्यों के हृदय में प्रतिष्ठा की भावना हो तथा जिसके अनुशासन को सभी सदस्य मानते हों सभापति होना चाहिये। वही सभापति राष्ट्र का राजा माना जायेगा।

४. प्रजा की रक्षा और राष्ट्र की रक्षा का कार्य क्षत्रिय प्रवृत्ति के पुरुषों को देना चाहिए। इन पर अनुशासन ब्राह्मण प्रवृत्ति के पुरुषों का होना चाहिए। इससे क्षत्रिय प्रवृत्ति के पुरुष अपनी शूरता का परिचय प्रजा की रक्षा और राष्ट्र रक्षा में ही करेंगे। उत्पीडन में नहीं। पक्षपातरहित न्याय, शिक्षा. भ्रष्टाचार निरोध ये सभी तभी हो सकते हैं जब ब्राह्मण प्रवृत्ति के पुरुषों का सर्वोपरि अनुशासन हो।

४. आचार व्यवस्था

आचार के सम्बन्ध में वर्ण व्यवस्था, आश्रम व्यवस्था और राज्य व्यवस्था के प्रकरणों में बहुत कुछ लिखा जा चुका है। उसके अनुसार सभी वर्णों, आश्रमियों तथा राजा और प्रजा को

आचरण करना चाहिए। महर्षि दयानन्द ने सत्यार्थप्रकाश तथा संस्कारविधि में सभी वर्णों और आश्रमियों के लिए कुछ सामान्य आचार नियमों का भी वर्णन किया है।

"न जातु कामान्न भयान्नलोभाद् धर्मं त्यजेज्जीवितस्यापि हेतोः ।
धर्मो नित्यः सुखदुःखे त्वनित्ये जीवो नित्ये हेतुरस्य त्वनित्यः ।।"
—महाभारत

"मनुष्यों को योग्य है कि काम से अर्थात् झूठ से सिद्धि होने के कारण से वा निन्दा स्तुति आदि के भय से भी धर्म का त्याग कभी न करे और न लोभ से, चाहे झूठ अधर्म से चक्रवर्ती राज्य भी मिलता हो तथापि धर्म को छोड़कर चक्रवर्ती राज्य को भी ग्रहण न करे। चाहे भोजन, छादन, जलपान आदि की जीविका भी अधर्म से हो सके वा प्राण जाते हों परन्तु जीविका के लिए भी धर्म को कभी न छोड़ें। क्योंकि जीव और धर्म नित्य हैं तथा सुख दुःख दोनों अनित्य हैं। अनित्य के लिए नित्य का छोड़ना अतीव दुष्ट कर्म है।"
——'संस्कारविधि' गृहस्थाश्रम प्रकरण

निन्दन्तु नीतिनिपुणः यदि वा स्तुवन्तु
लक्ष्मी समाविशतु गच्छतु वा यथेष्टम् ।
अद्यैव वा मरणमस्तु युगान्तरे वा
न्याय्यात्पथः प्रविचलन्ति पदं न धीराः ।। भर्तृहरि

"सब मनुष्यों को यह निश्चय जानना चाहिए कि चाहे सांसारिक अपने प्रयोजन की नीति में वर्तने हारे चतुर पुरुष निन्दा करें वा स्तुति करे, लक्ष्मी प्राप्त होवे या नष्ट होवे, आज ही मरण होवे अथवा वर्षान्तर में मृत्यु प्राप्त होवे तथापि जो मनुष्य धर्मयुक्त मार्ग से एक पग भी विरुद्ध नहीं चलते वे धीर पुरुष धन्य हैं।"

"दृष्ट्वा रूपे व्याकरोत्सत्यानृते प्रजापतिः।
अश्रद्धामनृतेऽदधात, श्रद्धां सत्ये प्रजापतिः।"

यजुर्वेद १९. ७७

"(प्रजापतिः) सकल सृष्टि का उत्पत्ति और पालन करने हारा सर्वव्यापक, सर्वज्ञ, न्यायकारी अद्वितीय स्वामी परमात्मा (सत्यानृते) सत्य और अनृत (रूपे) भिन्न भिन्न स्वरूपवाले धर्म और अधर्म को (दृष्ट्वा) अपनी सर्वज्ञता से यथावत् देख के (व्याकरोत्) भिन्न भिन्न निश्चित करता है। (अनृते) मिथ्या भाषणादि अधर्म में (अश्रद्धाम्) अप्रीति करो और (प्रजापतिः) वही परमात्मा (सत्ये) सत्यभाषणादि न्याय पक्षपात रहित धर्म में तुम्हारी (श्रद्धां) प्रीति की (अदधात्) धारण कराता है। वैसा ही तुम करो।"

—'संस्कारविधि' गृहस्थसंस्कार प्रकरण

"चतुर्भिरपि चैवैतै र्नित्यमाश्रमिभि र्द्विजैः।
दशलाक्षणिकोधर्मः सेवितव्यः प्रयत्नतः॥" मनु. ६. ९१
धृतिः क्षमादमोऽस्तेयं शौचयिन्द्रियनिग्रहः।
धीर्विद्या सत्यमक्रोधो दशकं धर्मलक्षणम्॥ मनु. ६. ९२

"ब्रह्मचारी, गृहस्थी, वानप्रस्थ और संन्यासियों को योग्य है कि प्रयत्न से दस लक्षणयुक्त निम्नलिखित धर्म का सेवन करें—

"पहला (धृतिः) सदा धैर्य रखना, दूसरा (क्षमा) जो कि निन्दा, स्तुति, मान, अपमान, हानि, लाभ, आदि दुःखों में सहनशील रहना; तीसरा (दम) मन को सदा धर्म में प्रवृत्त कर अधर्म से रोक देना अर्थात् अधर्म करने की इच्छा भी न उठे; चौथा (अस्तेय) चोरी त्याग, अर्थात् बिना आज्ञा वा छल-कपट, विश्वासघात वा किसी व्यवहार तथा वेदविरुद्ध उपदेश से पर-पदार्थ को ग्रहण करना चोरी और उसको छोड़ देना

साहूकारी कहाती है; पाँचवाँ (शौच) रागद्वेष पक्षपात छोड़ के भीतर और जल मृत्तिका मार्जन आदि से बाहर की पवित्रता रखनी; छठा (इन्द्रियनिग्रह) अधर्माचरणों से रोक के इन्द्रियों को धर्म ही में सदा चलाना; सातवां (धीः) मादक द्रव्य, बुद्धि नाशक अन्य पदार्थों, दुष्टों का सङ्ग, आलस्य, प्रमाद आदि को छोड़कर श्रेष्ठ पदार्थों का सेवन, सत्पुरुषों का सङ्ग, योगाभ्यास से बुद्धि को बढ़ाना; आठवां (विद्या) पृथिवी से लेके परमेश्वर पर्यन्त यथार्थ ज्ञान और उनसे यथायोग्य उपकार लेना विद्या, इसके विपरीत अविद्या है, नौवां (सत्य) जैसे आत्मा में वैसे मन में, जैसा मन में वैसा वाणी में, जैसा वाणी में वैसा कर्म में वर्तना सत्य, तथा जो पदार्थ जैसा हो उसको वैसा ही समझना, वैसा ही बोलना और वैसा ही करना भी, तथा दसवाँ (अक्रोध) क्रोधादि दोषों को छोड़ के शान्त्यादि गुणों का ग्रहण करना धर्म का लक्षण युक्त पक्षपात रहित न्यायाचरणधर्म का सेवन चारों आश्रम वाले करें।"

—'सत्यार्थप्रकाश' पंचम समुल्लास

"कामात्मता न प्रशस्ता न चैवाहास्त्यकामता।
काम्यो हि वेदाधिगमः कर्मयोगश्च वैदिकः ॥" मनु. २. २

"क्योंकि संसार में अत्यन्त कामातमता और निष्कामता श्रेष्ठ नहीं है। वेदार्थ ज्ञान और वेदोक्त कर्म ये सब कामना से ही सिद्ध होते है।"

—'सत्यार्थप्रकाश' दशम समुल्लास

इन्द्रियाणां विचरतां विषयेष्वपहारिषु।
संयमे यत्नमातिष्ठेत विद्वान् यन्तेव वाजिनाम् ॥ मनु. २. ८८

मनुष्य का यही मुख्य आचार है कि जो इन्द्रियां चित्त को हरण करने वाले विषयों में प्रवृत्त कराती हैं उनको रोकने में प्रयत्न करे। जैसे घोड़े को सारथी रोक कर शुद्ध मार्ग में चलाता

है इस प्रकार इनको अपने वश में करके अधर्म मार्ग से हटाके धर्म मार्ग में सदा चलाया करे।"

"अहिंसयैव भूतानां कार्यं श्रेयोऽनुशासनम्।
वाक्चैव मधुरा श्लक्ष्णा प्रयोज्याधर्ममिच्छता॥" मनु. २. १५६

"विद्या पढ़ विद्वान् धर्मात्मा होकर निर्वैरता से सब प्राणियों के कल्याण का उपदेश करे। उपदेश में वाणी मधुर और कोमल बोले। जो सत्योपदेश से धर्म की वृद्धि और अधर्म का नाश करते हैं वे पुरुष धन्य हैं।

—'सत्यार्थप्रकाश' दशम समुल्लास

महर्षि दयानन्द के समय हिन्दू धर्म में आर्यावर्त देशवासियों का आर्यावर्त देश से बाहर दूसरे देशों में जाना धर्म-विरुद्ध समझा जाता था। इस विषय में वे प्रश्नोत्तर के रूप में अपना मन्तव्य इस प्रकार बतलाते हैं—

"प्रश्न—आर्यावर्त देशवासियों का आर्यावर्त देश से भिन्न-भिन्न देशों में जाने से आचार नष्ट हो जाता है वा नहीं?

उत्तर—यह बात मिथ्या है। क्योंकि जो बाहर भीतर की पवित्रता करनी सत्य भाषणादि आचरण करना है वह जहां कहीं करेगा आचार और धर्मभ्रष्ट कभी न होगा। जो आर्यावर्त में रहकर भी दुष्टाचार करेगा वही धर्म और आचार भ्रष्ट कहलायेगा।"

"प्रथम आर्यावर्तदेशीय लोग व्यापार, राजकार्य और भ्रमण के लिए सब भूगोल में घूमते थे और जो आजकल छूताछूत और धर्म नष्ट होने की शंका है वह केवल मूर्खों के बहकाने और अज्ञान बढ़ने से है। जो मनुष्य देश-देशान्तर और द्वीप द्वीपान्तर में आने जाने में शंका नहीं करते वे देश-देशान्तर के अनेक विध मनुष्यों के समागम, रीति भाँति देखने, अपना राज्य और व्यवहार बढ़ाने से निर्भय शूरवीर होने लगते और

अच्छे व्यवहार का ग्रहण, बुरी बातों के छोड़ने में तत्पर होके बड़े ऐश्वर्य को प्राप्त होते हैं।"

—'सत्यार्थप्रकाश' दशम समुल्लास

महर्षि दयानन्द के समय ब्राह्मण गृहस्थियों के घर सखरी नहीं खाते थे निखरी ही खाते थे। इसी प्रकार शूद्रों के हाथ की पकी हुई रसोई नहीं खाते थे। इस विषय में महर्षि अपना मत इस प्रकार लिखते हैं—

"सखरी जो जल आदि में अन्न पकाये जाते है और जो घी दूध में पकाते हैं वह निखरी अर्थात् चोखी। यह भी इन धूर्तों का चलाया हुआ पाखण्ड है क्योंकि जिसमें घी दूध अधिक लगे उसको खाने में स्वाद और उदर में चिकना पदार्थ अधिक जावे इसलिए यह प्रपञ्च रचा है।"

'शूद्र के हाथ की बनाई रसोई खावें क्योंकि ब्राह्मण, क्षत्रिय और वैश्य वर्णस्थ स्त्री पुरुष पढ़ाने, राज्यपालन, खेती और पशुपालन व्यापार के काम में तत्पर रहें। शूद्र के पात्र तथा उनके घर का पका हुआ अन्न आपत्काल के बिना न खावें।"

—'सत्यार्थप्रकाश' दशम समुल्लास

भक्ष्याभक्ष्य के विषय में महर्षि दयानन्द ने अपना मन्तव्य इस प्रकार लिखा है।

"भक्ष्याभक्ष्य दो प्रकार के हैं—एक धर्मशास्त्रोक्त, दूसरा वैद्यक शास्त्रोक्त। धर्मशास्त्र में—

"अभक्ष्याणि द्विजातीनाममेध्यप्रभवाणि च।" मनु. ५. ५.

"द्विज अर्थात् ब्राह्मण क्षत्रिय वैश्य और शूद्रों को भी मलीन विष्ठा मूत्रादि के संसर्ग से उत्पन्न हुए शाक, फल मूलादि न खाना चाहिए।"

"वर्जयेन्मधुमांसं च" मनु. २. १७७

अनेक प्रकार के मद्य, गाँजा, भाँग, अफीम आदि (यहाँ मधु

शब्द का अर्थ मदकारी पदार्थ है)

बुद्धि लुम्पति यद् द्रव्यं मदकारी तदुच्यते। शार्ङ्गधर ४. २१

जो बुद्धि का नाश करने वाले पदार्थ हैं उनका सेवन कभी न करे। और जितने अन्न सड़े, बिगड़े दुर्गन्धादि से दूषित, अच्छे प्रकार न बने हुए और मद्य माँसाहारी म्लेच्छ कि जिनका शरीर मद्य माँस के परमाणुओं से पूरित है उनके हाथ का न खावे।"

—'सत्यार्थप्रकाश' दशम समुल्लास

महर्षि दयानन्द ने इसी प्रकरण में गाय, बैल, बकरी हाथी, घोड़े, ऊंट, भेड़, गदहे आदि उपकारक जन्तुओं की हत्या का पूर्ण निषेध किया है वे कहते हैं कि "इन पशुओं को मारनेवालों को सब मनुष्यों की हत्या करने वाला जानियेगा।"

जहाँतक हिंसक पशु व्याघ्र आदि की समस्या है वे लिखते हैं—

"यह राजपुरुषों का काम है कि जो हानिकारक पशु वा मनुष्य हैं उन को दण्ड देवें अथवा प्राण से भी वियुक्त कर दें।"

—'सत्यार्थप्रकाश' दशम समुल्लास

अब प्रश्न उठता है कि हिंसक पशुओं को मारने के बाद उनके मांस का क्या उपयोग किया जाये? इसका महर्षि उत्तर देते हैं—

"चाहे फेंक दें, चाहे कुत्ते आदि माँसाहारियों को खिला दें अथवा कोई मांसाहारी खावे तो भी संसार की कोई हानि नहीं होती, किन्तु उस मनुष्य का स्वभाव मांसाहारी होकर हिंसक हो सकता है। जितना हिंसा और चोरी विश्वासघात छल कपट आदि से पदार्थों को प्राप्त होकर भोग करना है वह 'अभक्ष्य' और अहिंसा धर्मादि कर्मों से प्राप्त होकर भोजनादि

करना 'भक्ष्य' है। जिन पदार्थों से स्वास्थ्य, रोगनाश, बुद्धि बल पराक्रम-वृद्धि और आयु-वृद्धि होवे उन उन तण्डुलादि, गोधूम, फलमूल कन्द, दूध, घी, मिष्टादि पदार्थों का सेवन यथायोग्य पाक, मेल करके यथोचित समय पर मिताहार भोजन करना सब 'भक्ष्य' कहाता है। जितने पदार्थ अपनी प्रकृति से विरुद्ध विकार करने वाले हैं उनका सर्वथा त्याग करना और जो जो जिस जिसके लिए विहित है उन उन पदार्थों का ग्रहण करना यह भी भक्ष्य है।"

—'सत्यार्थप्रकाश' दशम समुल्लास

अन्य कुछ भोजन सम्बन्धी नियमों का महर्षि दयानन्द प्रश्नोत्तर के रूप में इस प्रकार वर्णन करते हैं—

प्रश्न—"एक साथ खाने में कुछ दोष है वा नहीं ?

उत्तर—दोष है। क्योंकि एक के साथ दूसरे का स्वभाव और प्रकृति नहीं मिलती। जैसे कुष्ठी आदि के साथ खाने से अच्छे मनुष्य का भी रुधिर बिगड़ जाता है। वैसे दूसरे के साथ खाने में भी कुछ बिगाड़ ही होता है। सुधार नहीं इसलिए—

"नोच्छिष्टं कस्यचिद्दद्यात् नाद्याच्चैव तथान्तरा।
न चैवात्यशनं कुर्यात् न चोच्छिष्टः क्वचिद् व्रजेत् ॥" मनु. २.५६

"न किसी को अपना झूठा पदार्थ दे और न किसी केभोजन के बीच आप खावे, न अधिक भोजन किये पश्चात् हाथ मुंह धोए बिना कहीं इधर उधर जावे।"

"प्रश्न—चौके में बैठ के भोजन करना अच्छा वा बाहर बैठ के ?"

"उत्तर—जहां पर अच्छा रमणीय सुन्दर स्थान दीखे वहाँ पर भोजन करना चाहिये। परन्तु आवश्यक युद्धादिकों में तो घोड़े आदि यानों पर बैठ के वा खड़े खड़े भी खाना पीना अत्यंत उचित है।"

प्रश्न—क्या अपने ही हाथ का खाना और दूसरे के हाथ का नहीं ?

उत्तर—जो आर्यों में शुद्ध रीति से बनावे तो बराबर सब आर्यों के साथ खाने में कुछ भी हानि नहीं। क्योंकि जो ब्राह्मणादि वर्णस्थ स्त्री पुरुष रसोई बनाने और चौका देने, वर्तन भाण्डे माँजने आदि बखेड़ में पड़े रहें तो विद्यादि शुभ गुणों की वृद्धि न हो सके।"

"देखो ! महाराज युधिष्ठिर के राजसूय यज्ञ में भूगोल के राजा ऋषि, महर्षि आए थे। एक ही पाकशाला में भोजन किया करते थे। जब से ईसाई मुसलमान आदि के मतमतान्तर चले, आपस में बैर विरोध हुआ, उन्होंने मद्यपान, गोमाँस आदि का खाना पीना स्वीकार किया, उसी समय से भोजन आदि में बखेड़ा हो गया।"

"देखो ! काबुल, कंधार, ईरान, अमेरिका, यूरोप आदि देशों के राजाओं की कन्या गाँधारी, माद्री, उलोपी आदि के साथ आर्यावर्तीय राजा लोग विवाह आदि व्यवहार करते थे। शकुनि आदि कौरव पाण्डवों के साथ खाते पीते थे, कुछ विरोध नहीं करते थे। क्योंकि उस समय सर्व भूगोल में वेदोक्त एक मत था। उसी में सबकी निष्ठा थी और एक दूसरे का सुख दुःख, हानि लाभ आपस में अपने समान समझते थे। तभी भूगोल में सुख था। अब तो बहुत से मतवाले होने से बहुत सा दुःख और विरोध बढ़ गया है। इसका निवारण करना बुद्धिमानों का काम है।"

"परमात्मा सबके मन में सत्य मत का ऐसा अंकुर डाले कि जिससे मिथ्या मत शीघ्र ही प्रलय को प्राप्त हों। इसमें सब विद्वान् लोग विचार कर विरोध भाव को छोड़ के आनन्द को बढ़ावें।"

—'सत्यार्थप्रकाश' दशम समुल्लास

यह संक्षेप से महर्षि दयानन्द के आचार व्यवस्था (जिसमें भक्ष्याभक्ष्य विषय भी सम्मिलित है) के विषय में विचारों का प्रदर्शन किया है।

वैदिक साहित्य के उद्‌भट विद्वान्
महान् दार्शनिक जगद्‌गुरु शंकराचाय के
जीवन और दार्शनिक सिद्धान्तों का
परिचयात्मक ग्रंथ

"शंकराचार्य : जीवन और दर्शन"

(लेखक : श्री नारायणदत्त सिद्धान्तालंकार)

इस ग्रन्थ के प्रथम खंड में शंकराचार्य के जन्म काल से उनके समाधिलय तक का पूरा जीवन परिचय दिया गया है। विशेष रूप से शकराचार्य के मंडन मिश्र और उनकी पत्नी भारती से हुए शास्त्रार्थ का रोचक विवरण तथा तत्कालीन विभिन्न अवैदिक सम्प्रदायों—चार्वाक, शाक्त, कापालिक, तान्त्रिक, शैव, पंचराच, द्वैतवाद, जैन, बौद्ध मतों—के खंडन और अद्वैत-वाद की स्थापना का इतिहास दिया गया है।

ग्रन्थ के दूसरे खंड में शंकराचार्य के सुप्रसिद्ध सिद्धान्त अद्वैतवाद का मूल उद्धरणों सहित परिचय दिया गया है। इस प्रकरण में अध्यास, ज्ञान और कर्म, ब्रह्म-जिज्ञासा, ब्रह्म, अविद्या-माया-जगत्, मोक्ष आदि को पृथक्-पृथक् शीर्षकों के अन्त-र्गत सरल भाषा में समझाया गया है।

यह पुस्तक न केवल शंकराचार्य के दार्शनिक सिद्धान्तों में रुचि रखने वाले लोगों के लिए उपयोगी है, बल्कि स्नातक-परीक्षा में भारतीय दर्शन का अध्ययन करने वालों के लिए भी बहुत उपयोगी है।

सजिल्द मूल्य २·५० रुपये

अन्य प्रकाशन

राजनीतिक इतिहास

१. कच्छ	लोक संस्करण	१·२५
	सजिल्द	२·२५
२. विस्तारवादी चीन	लोक संस्करण	१·२५
३. अफ्रीका के राष्ट्रीय नेता	लोक संस्करण	२·००
	सजिल्द	२·५०
४. समाजवादी बर्मा	सजिल्द	४·००

आर्थिक

रुपये का अवमूल्यन और उसका प्रभाव		८·००

यात्रा और साहस

एवरेस्ट अभियान	लोक संस्करण	१·२५
	सजिल्द	२·२५

उपन्यास

सुधा (मलयालयम से अनूदित)	सजिल्द	३·५०

कहानी-संग्रह

अप्सरा का सम्मोहन और अन्य कहानियाँ		४·००